Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

# कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति

डा. एस. एन. प्रसाद

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

235

Digitization by Hindu-Heritage Foundation of America. HHFA(USA)

# विवरण पत्र

१. पुस्तक का नाम - कथा सरित्सागर
भारतीय संस्

२. क का नाम - डा० एस. एन.

३. पुस्तक विषय - इतिहास एवं संस्
(आचार्य नरेन्द्रदेव पुर

४. प्रकाशक का व पता
चौखम्भा ओरियंटालिया
चौ० बा० 32
वाराणसी

५. लेखक का प्रमाण पत्र— संलग्न है

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

॥ श्रीः ॥

जड़ावकुँवर राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

८

# कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति

रचयिता

डॉ० एस० एन० प्रसाद

एम० ए०, डी० फिल०

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं विक्रेता

वाराणसी दिल्ली

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्रकाशक

**चौखम्भा ओरियन्टालिया**

पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२

गोकुल भवन, के० ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ ( भारत )

टेलीफोन : ६३०२२ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर

दिल्ली–११०००७

© चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्रथम संस्करण १९७८

मूल्य रु० ५५–००

अन्य प्राप्तिस्थान

**चौखम्भा विश्वभारती**

चौक ( चित्रा सिनेमा के सामने )

वाराणसी

फोन : ६५४४४

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

JADAUKUNWAR RASTRABHASHA GRANTHAMALA
NO. 8

# KATHĀSARITSĀGARA TATHĀ BHĀRATĪYA SANSKṚTI

( Kathāsaritsāgara of Somadeva and Indian Culture )

State Museum Library Lucknow
7126

by

Dr. S. N. PRASAD
*M. A., D. Phil.*

**CHAUKHAMBHA ORIENTALIA**
**A House of Oriental and Antiquarian Books**
VARANASI DELHI

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

*Publisher*

**CHAUKHAMBHA ORIENTALIA**

P. O. Chaukhambha, Post Box No. 32

Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane

VARANASI-221001 ( India )

**Telephone** : 63022 Telegram : Gokulotsav

**Branch**—Bungalow Road, 9 U. B. Jawahar Nagar

DELHI-110007

© *Chaukhambha Orientalia*

First Edition 1978

Price : Rs. 55-00

*Printers*—Srigokul Mudranalaya, Varanasi.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पूज्य

पितामह

को

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन् न निर्दोषं न निर्गुणम् ।
आवृणुध्वमतो दोषान् विवृणुध्वं गुणान् बुधाः ॥

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

# आरम्भिकी

सुरम्य काश्मीर के विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न महान पृथिवीपुत्र सोमदेव भट्ट-प्रणीत कथा-सरित्सागर संस्कृत-कथा-साहित्य के ग्रन्थों में अन्यतम् ही नहीं, सर्वोत्तम भी है। कहानी-साहित्य का यह शिरोमणि ग्रन्थ नाना कथाओं के अमृत की खान 'बृहत्कथा' का सार है। लेखक ने मङ्गलाचरण में इङ्गित किया है कि उसने समस्त पदार्थों को आलोकित करने के निमित्त दीपशिखा (लौ) की भाँति बृहत्कथा के तत्त्वों को संग्रहीत किया है।[1] परन्तु उल्लेखनीय है कि संग्रह-प्रयास की क्रिया में उसने यथासम्भव मूल ग्रन्थ की औचित्य-परम्परा की रक्षा का निर्वाह किया है। उसने नवीन काव्यांशों की स्वकीय योजनाओं को कार्यान्वित करते हुए भी मूल कथा के वास्तविक रस का विधान नहीं होने दिया है। इस ग्रन्थ की रचना पाण्डित्य-प्रसिद्धि के लोभ से नहीं, प्रत्युत अनेक लम्बी कथाओं के जाल को स्मरण रखने की सुविधा की दृष्टि से की गई है। गुणाढ्य ने अपनी प्रीतिकारी रचना का प्रणयन सातवाहन-नरेशों के काल में किया था।[2] भारतीय वाङ्मय का यह दुर्भाग्य है कि उनकी अनूठी कृति नाम शेष रह गई है। परिणामतः इसके विषय में इसकी उत्तरकालीन वाचनाओं एवं रूपान्तरों के आधार पर ही अनुमान की कतिपय कड़ियाँ जोड़ी जा सकती हैं। संस्कृत भाषा के

---

१. प्रणम्य वाचं निःशेषपदार्थोद्योतदीपिकाम्।
बृहत्कथायाः सारस्यं संग्रहं रचयाम्हम्॥ १.३
यथामूलं तथैवैतन्न मनागप्यतिक्रमः।
ग्रन्थविस्तरसंक्षेपमात्रं भाषा च भिद्यते॥ १.१०
औचित्यान्वयरक्षा च यथाशक्ति विधीयते।
कथारसाविघातेन काव्यांशस्य च योजना॥ १.११
वैदग्ध्यख्यातिलोभाय मम नैवायमुद्यमः।
किन्तु नानाकथा-जाल-स्मृति-सौकर्म-सिद्धये॥ १.१२

२. द्रष्टव्य :—अध्याय ३, परिच्छेद "क"।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



साहित्यानुशीलन से ऐसा आभास होता है कि बृहत्कथा सोमदेव के उपरान्त ही सम्भवतः लुप्त हो गई होगी।[1] गुणाढ्य की अमूल्य रचना किसी भी सन्दर्भ में वाल्मीकि के रामायण तथा व्यास-प्रणीत महाभारत से कम जनप्रिय न रही होगी।[2]

कथा रूपी नदियों की १२४ तरङ्गों में समस्त प्रारम्भिक मध्ययुगीन भारत का नयनाभिराम चित्र सोमदेव की कुशल लेखनी द्वारा उभर उठा है।[3] कथासरित्सागर में उपलब्ध सामग्री समसामयिक समाज एवं संस्कृति के बहुत पक्षों के परिचयार्थ उपयोगी है। शोणित खड्ग का लोमहर्षक वृतान्त अथवा किसी नरेश की भयावह आक्रामक विस्तारवादी नीतियों का वर्णन ही समस्त इतिहास नहीं है। कथासरित्सागर की देहली पर टिमटिमाती दीपशिखाओं से उद्भूत स्निग्ध प्रकाश द्वारा समकालीन संस्कृति जिज्ञासुओं के समक्ष आभासित होने लगती है। अध्येता को निसर्गतः अनुभव होने लगता है कि सोमदेव ने अपने समय के भारत का समृद्ध रूप अपनी इस रचना में प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से आलोच्य ग्रन्थ भारतीय जीवन का चलचित्र है। लेखक की दृष्टि में समाज का अर्द्ध चित्र ही नहीं, प्रत्युत संपूर्ण चित्र समाया हुआ था। भले-बुरे, ऊँच-नीच, धनी-कङ्गाल, धर्मात्मा-गुण्डे सभी के जीवित चित्र उनके ग्रन्थ में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त चोर, जुआरी, धूर्त, वेश्यागामी, चालबाज, कपटी, बदमाश, ठग, लुच्चे, रँगीले, भिक्षु आदि की तह जमाने में सोमदेव को अद्भुत सफलता मिली है।

ग्यारहवीं शदी ( ईसवी ) के भारत के सांस्कृतिक जीवन के नाना महत्त्वपूर्ण पक्षों पर अपेक्षित अनुसंधान की आवश्यकता है। इस ग्रन्थ द्वारा समाज के अन्य कम देखे अथवा लगभग अनदेखे बहुल पक्षों पर मधुमय प्रकाश पड़ता है। सौभाग्यवश पूर्ववर्ती कालों की तुलना में इस समय के ऐतिहासिक परिशीलन के निमित्त पर्याप्त साहित्यिक, अभिलेखीय तथा

---

१. एस० एन० प्रसाद, स्टडीज इन गुणाढ्य, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी, १९७७, पृ० ५१–५२।

२. गोवर्धन, सप्तशती ३३

३. रूसी पुराविद् डॉ० आइगर डी सेरीब्रेकोव ने अपने एक पत्र में लेखक के इस मत का समर्थन किया है। द्रष्टव्य डॉ० अपर्णा चट्टोपाध्याय, ज० इ० हि०, जि० ५४, भाग ३, दिसम्बर १९६६, क्रम सं० १३२।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



विदेशी पर्यटकों के विवरण प्राप्य हैं। इन साधनों के आलोक में कथासरित्सागर का सांस्कृतिक अनुशीलन सर्वथा रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक है।

खेद है कि कथासरित्सागर तथा इसके मूल स्रोत ( बृहत्कथा ) पर जिज्ञासु की यथेष्ट दृष्टि आज भी पड़ने से वञ्चित रह गई है। इसके कथा-विषयों पर समय-समय पर विद्वानों ने स्वतन्त्र रूप से अनुसन्धान-पत्रिकाओं में अपने विचार व्यक्त किए हैं। इस प्रकार १८०७ ई० में एफ० विलफोर्ड ने 'विक्रमादित्य एण्ड शालिवाहन-देयर रिस्पेक्टिव एराज विथ ऐन एकाउण्ट आफ बाला रॉयज आर बलहर एम्परर्स' शीर्षक लेख प्रकाशित किया था।[1] एच० एच० विल्सन ने १८१९ ई० में अपने संस्कृत-कोष की भूमिका में आलोच्य ग्रन्थ पर स्वल्प प्रकाश डाला है। जर्मनी के विद्वान् एच० ब्राकहेस ने लीपजिग से क्रमशः १८३४, ३५, ३९, ४३ तथा ६० ई० में महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान-विषयक सामग्री प्रकाशित की है। फ्रांस से एफ० लाकोत ने १९०८ में 'एसई स्यू गुणाढ्य एट ला बृहत्कथा' नामक पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ की रचना की थी। उक्त विद्वान ने गुणाढ्य, उनकी बृहत्कथा तथा इस ग्रन्थ की उत्तरकालीन वाचनाओं पर प्रकाश विकीर्ण किया है। एतद् विषयक अनुसन्धानकर्ता के लिए उनकी उक्त कृति की उपादेयता आज भी निर्विवाद है। इसी वर्ष एमेस्टर्डम से जे० एस० स्पेयर ने 'स्टडीज एबाउट दी कथा-सरित्सागर' नामक उपयोगी ग्रन्थ का प्रणयन किया था। स्पेयर ने कथासरित्सागर के मूल स्रोत एवं उसके साहित्यिक पक्ष का परिशीलन प्रस्तुत किया है। उस समय प्राचीन भारतीय इतिहास के स्वल्प ज्ञान के कारण स्पेयर की अनेक मान्यताओं में संशोधन की आवश्यकता प्रतीत होती है। १९०८ के उपरान्त भी अनेक विद्वानों के स्फुट विचार, अनुसंधान-पत्रिकाओं द्वारा समय समय पर प्रकाश में लाए गए हैं। कथासरित्सागर की मंजूषा में संग्रहीत बृहद् भारतीय संस्कृति के अनुशीलन का एकत्र प्रयास सर्वप्रथम डॉ० ए० चट्टोपाध्याय ने किया है। प्रयाग एवं सागर विश्वविद्यालयों में भी इस सुरुचिपूर्ण ग्रन्थ पर गवेषणा कार्य हुए हैं, परन्तु उनका दोष मात्र साहित्यिक पक्ष तक ही सीमित है। उपर्युक्त प्रयासों के होते हुए भी इस रचना का सांगोपांग समीक्षात्मक सामाजिक एवं सांस्कृतिक निरूपण अपूर्ण रह जाता है। इस उद्देश्य की सम्पूर्ति प्रस्तुत गवेषणा का लक्ष्य है।

अपने पूज्य गुरुवर्य डॉ० उदय नारायण राय ( प्रो० इलाहाबाद युनिवर्सिटी ) के प्रति हार्दिक कृतज्ञता-ज्ञापित करना मैं अपना धर्म समझता हूँ जिनसे हिन्दी में भारतीय संस्कृति पर

---

१. एशियाटिक रिसर्च, जि० ९, १८०६, कलकत्ता, पृ० ११७–२४१।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



गम्भीर कार्य करने की प्रेरणा मुझे उपलब्ध हुई। उनके सहज स्नेह, अमूल्य मार्ग दर्शन तथा सक्रिय सहायता के निमित्त मैं उनका चिर ऋणी हूँ।

अपने पूर्व सूरियों के प्रति आभार-प्रदर्शन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ जिनकी रचनायें इस ग्रन्थ के प्रणयन में किसी भी रूप में उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध अपने पवित्र उद्देश्य की सम्पूर्ति में सर्वथा सफल हो, यही मेरी कामना है और यही है ईश्वर से अभ्यर्थना भी।

इतिहास विभाग
बिड़ला इन्स्टीट्यूट ऑव टेक्नॉलाजी
एंड साइन्स, पिलानी
३० भाद्र, १८९९ श० सं०

एस० एन० प्रसाद

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

# आभार

पूज्यनीया माता जी तथा पूज्य पिताजी को :

जिनका आर्शीवाद लेकर ग्रन्थ-प्रणयन का श्री गणेश हुआ था।

उन अनाम कथाकारों के प्रति :

जिन्होंने तिल-तिल जोड़कर भारतीय कथा-शिल्प का ताना-बाना बुना। जिनके उर्वर मस्तिष्क ने संस्कृति के निर्माण में अभूतपूर्व योग-दान दिया किन्तु वे आज अन्तराल के गह्वर में इतने आत्मसात हो गए हैं कि इतिहासकार के लिए उनको सनाम खोजना टेढ़ी-खीर हो गई है।

गुणाढ्य के प्रति :

जिन्होने तिल-तिल जोड़कर भारतीय कथाओं का सुमेरु खड़ा किया था। किन्तु उनकी पैशाची में लिखी 'बृहत्कथा' स्यात् विश्व का प्रथम 'बृहत-कथाओं' का संस्करण था। जो आज न मालूम कहाँ विलीन है। ऐसे महापुरुष के प्रति मेरा आभार अनल्प है।

फिलिक्स लाकोत. स्पेयर, टॉनी और पेञ्जर को :

कथासरित्सागर पर प्राथमिक शोध-कार्य करने तथा उन्हे प्रकाश में लाने के लिए।

प्रो० बेशम्, डॉ० लुडविक स्टर्नबाख, प्रो० जीन फिलिजोरेट तथा डॉ० अइगर डी सेरी-ब्रेकोव को :

निष्ठापूर्वक मौलिक अनुसन्धान के लिए सदैव उत्साहित करने के लिए। अनेक दुर्लभ ग्रन्थों के संदर्भ के लिए।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल :

भारतीय संस्कृति पर गम्भीर शोध कार्य करने के लिए छात्र जीवन से ही उत्प्रेरित किया

डॉ० मोती चन्द्र जी :

जिन्होंने सदैव मेरे कार्यों में रुचि ली तथा इस कृति के इति श्री पर आर्शीवाद के लिए।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



डॉ० गोविन्द चन्द पाण्डे एवं डॉ० भगवत शरण उपाध्याय :

बहुशः सत्परामर्शों के लिए।

आचार्य पं० कैलाश नाथ जी को :

जिनसे संस्कृत भाषा का ज्ञान मिला।

डॉ० रामकुमार राय जी :

प्रकाशन की व्यवस्था के लिए। एक वरिष्ठ शुभचिंतक के नाते।

डॉ० सी० आर मित्रा :

( निदेशक, बिड़ला इन्स्टीट्यूट ऑव टेक्नॉलाजी एण्ड साइन्स, पिलानी )

नैसर्गिक अनुकम्पा एवं शुभ कामना के लिए।

डॉ० आर० सी० शर्मा :

निरन्तर शोध के लिए प्रेरित करने तथा अनेक महत्वपूर्ण गम्भीर सुझावों के लिए।

डॉ० एस० एल० श्रीवास्तव :

जीवन की दिशा मोड़ने के लिए।

श्रीमती उषा, श्री विजय कुमार, श्रीमती शिखा, श्री सुधीर, श्रीमती मधु, श्री बृजेश तथा सुश्री किरन जी को :

उनकी शुभ कामनाओं तथा निरन्तर मेरे कार्यों में सदा सहयोग के लिए तत्पर रहने के लिए।

चि० मनोज, मोना, मिनी, शैली, विशाल, अमित, अमिताभ एवं अजिताभ ( बाबू ) :

को ढ़ेर सारे स्नेह के लिए।

श्री उमेश कुमार भार्गव को :

प्रकाशन-तंत्र की अनेक जिम्मेदारियों को सम्हालने के लिए।

डॉ० वेद प्रकाश गौड़, डॉ० श्रीकृष्ण परवाल, डॉ० सुरेशचन्द्र शर्मा एवं डॉ० रवीन्द्र राय को :

उनकी शुभ-कामनाओं के लिए।

पत्नी किरन प्रसाद को :

जिन्होंने समय दिया ग्रन्थ की इति श्री के लिए। जिन्होंने रुचि ली ग्रन्थ के प्रकाशन में। उन्हे कहाँ तक धन्यवाद दूँ।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

# संकेत-शब्द-सूची

| | |
|---|---|
| अ० | : अध्याय |
| आ० स० इ० | : आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया |
| अ० हि० इ० | : अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया |
| इ० हि० क्वा० | : इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली |
| इ० क० | : इण्डियन कल्चर |
| इ० ए० | : इण्डियन ऐन्टीक्वेरी |
| इ० ऐन्टी० | : इण्डियन ऐन्टीक्यूटी |
| उ० | : उच्छ्वास |
| ऐ० टा० सि० गु० का० | : ऐशेण्ट टाउन्स एण्ड सिटीज इन गुजरात एण्ड काठियावाड़ |
| ऐ० जि० इ० | : ऐशेण्ट जिओग्रेफी ऑव इण्डिया |
| ए० इ० | : एपीग्रेफिया इण्डिया |
| ए० रि० आ० स० इ० | : एनुअल रिपोर्ट ऑव दी आर्क्योलाजिकल सर्वे आव इण्डिया |
| एम० ओ० रि० इ० | : एनल्स ऑव भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट |
| क० स० सा०, क० | : कथासरित्सागर |
| का० इ० इ० | : कारपस इंस्क्रिप्शनम् इण्डीकेरम |
| कुमार | : कुमारसम्भव |
| गा० ओ० सि० सं० | : गायकवाड ओरियण्टल सिरीज संख्या |
| जि० | : जिल्द |
| ज० उ० हि० सो० | : जरनल ऑव उत्तर प्रदेश हिस्टारिकल सोसायटी |
| ज० प्रो० ए० सो० बं० | : जरनल प्रोसीडिङ्ग ऑव एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल |
| ज० ग० ना० रि० इ० | : जरनल ऑव गङ्गा नाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट |
| ज० ओ० इ० | : जरनल ऑव ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट |
| ज० एशियाटिकी | : जरनल एशियाटिकी |

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



| | |
|---|---|
| ज० ए० | : जरनल एशियाटिकी |
| ज० बा० रा० ए० सो० | : जरनल ऑव बाम्बे ब्रान्च ऑव रायल एशियाटिक सोसायटी |
| ज० बि० उ० रि० सी० | : जरनल ऑव बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी |
| ज० रा० ए० सो०, जराएसा | : जरनल ऑव रायल एशियाटिक सोसायटी |
| डा० हि० ना० इ० | : डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑव नार्दन इण्डिया |
| प्रो० फि० सो० | : प्रोसीडिंग्स ऑव फिलासफिकल सोसायटी |
| प्रो० आ० ओ० का० | : प्रोसीडिंग्स ऑव दी ओरियण्टल कान्फ्रेस |
| पा० टि० | : पाद टिप्पणी |
| प्रा० म० भा० | : प्रारम्भिक मध्ययुगीन भारत |
| बृ० क० म० | : बृहत्कथामञ्जरी |
| बृ० सं० | : बृहत संहिता |
| बु० स्कू० आ० ओ० स्ट० | : बुलेटिन ऑव दी स्कूल आव ओरियन्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज |
| मनु० | : मनुस्मृति |
| माल० | : मालविकाग्निमित्रम् |
| म० आ० स० ह० | : मेम्वायर्स ऑव दी आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया |
| श्लो० | : श्लोक |
| हि० जि० ए० ह० / हि० ज्यो स० ह० | : हिस्टारिकल जिओग्रेफी ( ज्योग्रेफी ) ऑव एंशेण्ट इण्डिया |
| हि० इ० लि० | : हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर |
| हि० ध० शा० | : हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र |
| रघु० | : रघुवंश |
| रा० त० | : राजतरङ्गिणी |
| सो० इ० हि० ना० इ० | : सोशियो-इकामिक हिस्ट्री ऑव नार्थ इण्डिया |
| सं० | : संस्करण |
| से० बु० ई० | : सेक्रेड बुक ऑव दी ईस्ट |
| ऋतु० | : ऋतुसंहार |

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

# विषय-सूची


आरम्भिकी ... ... ... ७

आभार ... ... ... ११

संकेत-शब्द-सूची ... ... ... १३

अध्याय १ : संस्कृत का ऐतिहासिक वाङ्मय ... ... ३

अध्याय २ : कथा के उद्भव का इतिहास ... ... ... २१

अध्याय ३ : गुणाढ्य और उनकी बृहत्कथा ... ... ... २७

अध्याय ४ : धर्म ... ... ... ५३

अध्याय ५ : जाति एवं व्यवसाय ... ... ... ६३

अध्याय ६ : शिक्षा ... ... ... १००

अध्याय ७ : नैतिक स्तर ... ... ... १०६

अध्याय ८ : शृङ्गार प्रसाधन ... ... ... १२४

अध्याय ९ : मनोविनोद ... ... ... १३२

अध्याय १० : अन्न-पान ... ... ... १४२

अध्याय ११ : भूगोल ... ... ... १५१

परिशिष्ट १ प्राचीन तथा प्रारम्भिक मध्ययुगीन भारत में देवदासी परम्परा के कतिपय अभिलेख-उद्धरण ... ... ... १८४

परिशिष्ट २ कायस्थ ... ... ... १९४

परिशिष्ट ३ ग्रन्थ परिचय ... ... ... २०५

ग्रन्थ-सूची ... ... ... २१७

अनुक्रमणिका ... ... ... २२५

शुद्धिपत्र ... ... ... २३६

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

# कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अध्याय १

# संस्कृत का ऐतिहासिक वाङ्मय

पाश्चात्य विद्वानों में बहुधा यह धारणा पायी जाती है कि भारतीय वाङ्मय में कोई महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है जिसमें इतिहास का आस्वादन किया जा सके[1]। किन्तु विण्टरनित्स, पाश्चात्य विद्वानों के उपर्युक्त पूर्वाग्रही निष्कर्ष को स्वीकार करने में असमर्थता व्यक्त करते हैं[2]। भारतीयों में इतिहास के प्रति अभिरुचि थी इसका बोध जाति के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद[3] से लेकर अद्यतन ग्रंथों के अनुशीलन से होता है। वैदिक साहित्य में आचार्यों के नामों की तालिका तथा महाभारत एवं पुराणों में उल्लिखित वंश-वृक्षों से यह प्रायः स्पष्ट हो जाता है कि भारतीयों की अभिरुचि इतिहासपरक थी। पौराणिक कथाओं की विशाल मंजूषा में इतिहास की अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ सुरक्षित मिलती हैं[4]।

यदि सातवीं शताब्दी ईसवी के चीनी पर्यटक य्वान च्वाङ्ग के विवरणों पर विश्वास किया जाय तब यह मानना पड़ेगा कि भारत के प्रत्येक नगर अपना इतिहास सुरक्षित रखते थे। इतिहास भाटों एवं चारणों द्वारा भी मौखिक रूप में सदा से ही सुरक्षित रहा है[5]। पाश्चात्य देशों में पुराणों के तुल्य वंश-तालिका के वर्णन की प्रथा नहीं थी[6]। आज भी मानवीय व्यक्ति, गाँव का मुखिया, यहाँ तक कि कभी-कभी साधारण कृषक भी अपने परिवार की वंशावली सुरक्षित रखने का भरसक प्रयास करता है। मठ अपने पूर्व महन्तों की यथासम्भव विस्तृत तालिका सुरक्षित रखने का प्रयास करते हैं। इससे उन्हें उत्तराधिकार-सम्बन्धी विवादग्रस्त एवं जटिल प्रश्नों को प्रामाणिक रीति से सुलझाने का सुयोग मिलता है। बौद्ध एवं जैन साहित्य के विवेचनात्मक अनुशीलन से उनके महान् भिक्षुओं एवं मुनियों की जीवनी, इतिहास तथा धर्म के स्वरूप का बृहद् रूप प्रस्तुत होता है।

भारतीयों की इतिहासपरक रुचि का सम्यक् ज्ञान अनेक अभिलेखों से भी उपलब्ध होता है। वास्तव में भारत में अभिलेख उत्कीर्ण कराने की परम्परा की प्राचीनता निर्विवाद रूप से सैन्धव सभ्यता तक निर्दिष्ट की जा सकती है किंतु दुर्भाग्य-

---

१. विण्टरनित्स, हि० इ० लि०, जि० ३, भा० १, पृ० ८९.

२. वही, पृ० ८९.

३. विश्वम्भर शरण पाठक, ऐंशेण्ट हिस्टोरियन्स ऑफ इण्डिया, पृ० १.

४. विण्टरनित्स, वही, पृ० ८९.

५. चि० वि० वैद्य, दी महाभारत, पृ० ७६.

६. विण्टरनित्स, वही, पृ० ८९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



वश तत्कालीन अभिलेख आज भी इतिहासकारों के लिए मूक है। अनेक भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने उनको पढ़ने की चेष्टा की है परन्तु उन्हें अभी तक सफलता नहीं मिली है। अशोक मौर्य के अभिलेखों में इतिहास की पर्याप्त सामग्री वर्तमान है। भारतीयों की इतिहास-लेखन की अपनी विशिष्ट परंपरा रही है। वे अतीत को निहार कर, वर्तमान को समझ कर, भविष्य के प्रति आशान्वित होते थे। अभिलेखों में राजवंशों की तालिका एवं सम्राटों के जीवनचरित एवं उपलब्धियों का उल्लेख रहता है। अभिलेख पत्थर की शिलाओं, स्तम्भ, मंदिर एवं गुहाओं में तथा ताम्र-पत्रों पर उत्कीर्ण मिलते हैं। इनका प्रयोजन ही संभवतः अतीत का स्मरण, वर्त्तमान का अवलोकन तथा भविष्य को चेतावनी देना रहा होगा।

विण्टरनित्स के अनुसार भारत में हेरोडोटस जैसे इतिहासकार नहीं उत्पन्न हुये हैं[1]। इनका कथन पाश्चात्य दृष्टिकोण से अक्षरशः सत्य है किन्तु आलोच्य विषय तो यह है कि क्या किसी देश का सिद्धान्त दूसरे देश के लिये भी उसी रूप में लागू हो सकता है। भारत में हेरोडोटस-तुल्य इतिहासकार का न होना यह नहीं प्रमाणित करता कि भारतीयों की दृष्टि इतिहासपरक नहीं थी। यह कहा जा सकता है कि आलोचनात्मक वर्णन एवं ऐतिहासिक सत्य के प्रति वे कुछ सीमा तक उदासीन थे। इसका कारण यह भी है कि भारतीय इतिहास के लेखक या तो राजकवि होते थे या धर्मभीरु व्यक्ति[2] जिनका प्रमुख कार्य आश्रित नरेशों की कृतियों का अतिरञ्जित वर्णन करना या धर्म के स्वरूप का विशद विवेचन करना था[3]। ऐसी स्थिति में हेरो-डोटस तो नहीं; परन्तु व्यास और वाल्मीकि अवश्य प्रादुर्भूत हुए थे, जिनकी तुलना विश्व में स्यात् ही कोई कवि एवं लेखक कर सके। भारतीयों की विशिष्ट मनःस्थिति तथा उसी प्रकार के वातावरण का वर्त्तमान होना और उन्हीं क्रम में घटनाओं का निरूपण भी कुछ सीमा तक प्रश्न को सुलझाने में सहायक प्रमाणित होते हैं[4]। राष्ट्रीय भावना का उद्गम एवं विकास सम्यक् रूप से उन्हीं देशों में हुआ है जहाँ उन्हें राजनीतिक स्वतन्त्रता थी। एथेन्स राष्ट्रीय भावना में अग्रणी था। यह भावना जो इतिहास-लेखन के लिए महत्त्वपूर्ण आधार है, वह भारत में उस प्रकार से नहीं पनप सकी जैसे कि पाश्चात्य देशों में[5]।

भारत पर विदेशी आक्रमण—पारसीक, यवन, बाख्त्री यवन, शक और कुषाण विशाल-हृदया भारतीय राष्ट्रीय भावना को किसी प्रकार भी कुण्ठित करने में समर्थ नहीं सिद्ध हो सके। उन्हें भारतीय संस्कृति ने ही आत्मसात् कर लिया[6]। भारत में

---

१. विन्टरनित्स, पृ० ९०. २. वही, पृ० ९०. ३. वही, पृ० ९०.

४. कीथ, ए० बी०, 'ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर'।

५. कीथ, वही, पृ० १४५, राजतरंगिणी, १, २८.

६. कीथ, वही, पृ० १४५.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



हर्षोत्तर-काल से बारहवीं शताब्दी ई० तक के युद्ध मूलतः राजवंशों के व्यक्तिगत झगड़े थे, जो राष्ट्रीयता के क्षेत्र में घातक सिद्ध हुए थे। मुसलमान आक्रमणकारियों ने भारत को एकत्व-भावना से रहित पाया।

भारतीय-प्रवृत्ति में इतिहास के वर्त्तमान स्वरूप-सदृश महत्त्व अप्राप्य है। कर्मवाद के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य पूर्वजन्म के कर्मों का प्रतिफल है। उसके कर्म पूर्वजन्म के कर्मों पर आधारित हैं। ऐसी अवधारणा की पृष्ठभूमि में ही भारतीय इतिहास को भौतिक दृष्टिकोण अपेक्षित रूप में नहीं प्राप्त हो सका। अधिकांश के मन में भाग्यवाद में ध्रुव विश्वास था। इसके अतिरिक्त भारतीय दर्शन भी आध्यात्म की ओर ही उन्मुख है। ऐहिक प्रगति उन्हें अश्रद्धेय थी[1]।

भारतीय मस्तिष्क ने सदैव व्यष्टि के संदर्भ में समष्टि को स्वीकार किया है इसीलिए निश्चित तिथि-क्रम के प्रति उदासीनता यहाँ के लेखकों और कवियों में पायी जाती है[2]। उन्हें व्यक्ति के कृतित्व से संबंध था, उनके व्यक्तित्व से नहीं।

भारतीय इतिहास के ग्रन्थ भी काव्य पहले हैं इतिहास बाद में[3]। यहाँ के इतिहास-लेखन का परिप्रेक्ष्य ग्रीक अथवा रोम के इतिहास के आदर्शों से सर्वथा विपरीत था। भारतीय इतिहास-लेखक घटनाओं के मूल में जाने का प्रयास नहीं करता। वह ऐतिहासिक सत्य की आलोचना कर उसका मनोवैज्ञानिक ढंग से विस्तार के साथ समझाने का प्रयास करता है। वह एक कुशल कवि की भाँति मनोरंजन करता है और अन्ततोगत्वा वह नीति-धर्मशास्त्र तथा ज्ञान देने का उसका सर्वोपरि उद्देश्य रहता है[4]। कवि की रचना में उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के कारण अतिशयोक्ति का होना स्वाभाविक है। भारतीय इतिहास, इतिहास के उद्भव से आरंभ होता है। पुराणकार अपनी रचना में विश्व के उद्भव से आरंभ कर अपने काल की घटना पर प्रकाश डालता था। बौद्ध भिक्षु बुद्ध पर लिखने के लिए प्रथम बुद्ध से लिखना आरंभ करता था, जो कि उनके विश्वास के अनुसार करोड़ों वर्ष पहले हुए थे। महाकाव्यों के लेखक अपने आश्रयदाता राजाओं के उद्भव को महाभारत आदि के धीरोदात्त नायकों तथा अन्य पौराणिक देवी-देवताओं आदि से जोड़ते थे[5]।

उत्कीर्ण प्रशस्तियों का भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रशस्तियाँ इतिहास का प्रमुख स्रोत होने के साथ ही साथ काव्यात्मक भी हैं।

---

१. कीथ, वही, पृ० १४६.
२. कीथ, वही, पृ० १४७.
३. विण्टरनित्स, पृ० ९०.
४. वही, पृ० ९०. राजतरंगिणी ( ऑरेल स्टाइन, जि० १, पृ० ३५ )
५. विण्टरनित्स, पृ० ९०.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



इस प्रकार की महत्त्वपूर्ण प्रशस्तियों में महाक्षत्रप रुद्रदामन का गिरनार-अभिलेख[1], श्री पुलमावी की नासिक-प्रशस्ति[2], समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति[3], स्कन्दगुप्त की भितरी-प्रशस्ति[4], वत्सभट्टि-रचित मन्दसौर-प्रशस्ति[5] इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये प्रशस्तियाँ राजाओं अथवा श्रीमानों की इच्छा पर उनके जीवन-काल में अथवा उनकी मृत्यु की स्मृति में काव्य अथवा चम्पू शैली में कवियों द्वारा संजोई जाती थीं, जिन्हें उनके आश्रयदाता प्रशस्ति पदों के रूप में उत्कीर्ण करवाते थे। ऐसी प्रशस्तियों के वर्ण्य-विषय सामान्यतया आश्रयदाताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण उपलब्धियों के स्वरूप में हुआ करते थे। प्रशस्तियों के नायक की वंशावली भी प्रायः इन लेखों के प्रारंभ अथवा अन्त में मिल जाया करती है। उनमें कभी-कभी घटना का तिथिक्रम के अनुसार उल्लेख होता है[6]। गुप्त-नृपों के काल की प्रशस्तियों में श्रेष्ठ काव्य के सुन्दर दृष्टान्त द्रष्टव्य हैं[7]। गुप्तोत्तर काल की प्रशस्तियों की भी गणना उत्तम साहित्य के रूप में की जा सकती है। हरिषेण, वीरसेन, वत्सभट्टि, रविशान्ति एवं रविकीर्ति जैसे समर्थ कवियों की गणना की जा सकती है जो महानता का दावा न करते हुए भी अपनी रचनाओं से महान् लगते हैं। इन कवियों के अभिलेखों के संपादक बूलर ने इनके काव्य-कौशल की मुक्तकण्ठ से सराहना की है। इस प्रकार दूसरा पूर्ण विकसित काव्यात्मक अभिलेख ९ वीं शताब्दी ई० का ललितसुर देव का है[8]। इस प्रकार अभिलेखों में ऐतिहासिक और काव्यात्मक तथ्यों का अद्भुत समन्वय दृष्टिगत होता है।

सोमदेव के कथासरित्सागर के ऐतिहासिक तथ्यों का उचित निरूपण करने के लिए संस्कृत साहित्य के ऐतिहासिक वाङ्मय पर विहंगम दृष्टि डालना अनिवार्य हो जाता है। ऐतिहासिक साहित्य को समझे बिना कथासरित्सागर के अध्ययन के प्रति न्याय कर पाना यदि असम्भव नहीं, तो दुष्कर अवश्य है।

पुराणों में साधारणतया राजवंशों की वंशावलियों तथा तिथियाँ मिलती है परन्तु इन तिथियों और वंशावलियों को यदि ऐतिहासिक घटनाओं के साथ मिलाया जाय तो निराशा और आक्रोश के अतिरिक्त स्यात् और कुछ पाने की कल्पना ही निराधार होगी[9]।

बौद्धों ने बुद्ध-कथानक को ऐतिहासिक रूप देने के लिए कुछ गम्भीर दृष्टिकोण अवश्य अपनाया था[10]। अशोक ने इतिहास की घटनाओं को शिला-स्तम्भों और पर्वत-

---

१. ए० इ०, ८, ३६. स्मिथ, अ० हि० इ०, पृ० १३९.
२. सरकार, से० इ०, पृ० १९६.
३. वही, पृ० १९६.
४. वही, पृ० १९६.
५. विन्टरनित्स, वही, पृ० ९१.
६. वही, पृ० ९१
७. सरकार, से० इ०
८. इं० ऐ०, २५, १७७
९. कीथ, वही, पृ० १४८.
१०. विश्वंभर शरण पाठक, ऐन्शेण्ट हिस्टोरियन्स ऑफ़ इण्डिया, पृ० १९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



चट्टानों पर जनहित के लिये अंकित करवाथा था[1]। परन्तु अपने अभिलेखों में अशोक के प्रशासकीय आदेश कम पर धम्म-विजय के उद्घोष अधिक उत्कीर्ण दिखाई पड़ते हैं। कलिंग-युद्ध के उपरान्त राजनीतिक घटनाओं को अङ्कित कराने के प्रति उसको कोई विशेष मोह नहीं रह गया था। प्राचीन भारत के नृपों की प्रशस्तियों में अधिकांशतः नीति और धर्म की बहुलता है। परन्तु वास्तविक गम्भीर ऐतिहासिक ग्रन्थ के अभाव की कमी खटकती हैं।[2]

अशोक के अभिलेखों के पश्चात् भी प्राचीन भारत में इतिहास-लेखन की परम्परा का परिचय मिलता है। इस क्षेत्र में जैन एवं कतिपय बौद्ध लेखकों के विचार विचारणीय है किन्तु यहाँ उन परम्पराओं पर विचार करना अभीष्ट नहीं है।

कालान्तर में सातवीं शती ई० में बाणभट्ट के हर्षचरित[3] में उसका ऐतिहासिक दृष्टिकोण व्यक्त होता है। इसमें ऐतिहासिक तत्त्वों का उल्लेख अलंकारिक रूप में एवं अतिरंजना के साथ किया गया है[4]। राधाकुमुद मुकर्जी ने हर्षचरित के लिये ठीक ही लिखा है कि यह अतिशयोक्तियों की मंजूषा हैं[5] तथापि इसकी ऐतिहासिकता श्रद्धेय है। इस दृष्टिकोण से ध्यान देने योग्य है कि बाण समकालीन थे। आशा की जाती है कि सामयिक एवं दरबारी होने के कारण उन्होंने आँखों देखा वर्णन किया होगा। वाक्-पतिराज का गौडवहो इतिहास की श्रेणी का ग्रन्थ है[6]। वाक्पतिराज, कन्नौज के यशोवर्मन् का आश्रित कवि था। इसने इस ग्रन्थ की रचना अपने शासक यशोवर्मन् के गौड़ राजकुमार पर विजयश्री के महोत्सव के अवसर पर की थी। कन्नौज के यशोवर्मन् को कुछ समय बाद ही काश्मीर के ललितादित्य ने अनुमानतः ७४० ई० में पराजित कर मार डाला[7]। प्रस्तुत ग्रन्थ में इतिहास तो नाम मात्र का है परन्तु वाक-पतिराज की काव्यात्मक अभिरुचि एवं काव्यत्व की झलक समग्र ग्रन्थ में बिखरी हुई है। लगता है कि कवि दृश्य इतिहास के शुष्क पुलिनों–पल्लवों पर विहार न कर स्वछन्द-हृदयी कवि ने प्रकृति के रम्य स्थलों, ऋतुओं के वर्णन, राजाओं के आमोद-प्रमोद एवं मनोरंजन के साधनों का विस्तृत उल्लेख किया है। ऐसा आभास होता है कि बाण का कवि राज दरबार के तड़क-भड़क में ही रम गया था। ग्रंथकार ने आश्रयदाता यशोवर्मन् की मृत्यु के उपरान्त ग्रन्थ को अधूरा ही छोड़ दिया है और उन्हीं विषयों पर चर्चा उठाई है जिनमें पण्डितों की अभिरुचि थी। इतिहास जैसे कठिन दुर्वह कार्य को

---

१. बराबर गुहा लेख, अशोक, स्मिथ, पृ० १५३. देहली तोपरा, पंक्ति, ३२ परः—
धंम–लिबि अत अथि सिला-थंभानि वा सिलाफलकानि वा तत कटविया एन एस चिलठितिके सिया।

२. कीथ, वही, पृ० १४८.

३. विश्वम्भर शरण पाठक, ऐंश्येण्ट हिस्टोरियन्स ऑफ़ इण्डिया, पृ० ३२.

४. कीथ, वही, पृ० १५०.

५. राधामुकुद मुकर्जी, हर्ष, प्रिफेस, पृ० ६.

६. स्मिथ, जराएसो, १९०८, पृ० ७६५-९३.

७. कीथ, वही, १५०.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



आगे बढ़ाने का साहस सम्भवतः नहीं संजो पाया[1]। ग्रन्थ की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है। गौड़ीय शैली जो कि लम्बे-लम्बे जटिल वाक्यविन्यासों के लिए प्रसिद्ध हैं, में ग्रन्थ की रचना हुई है। वाक्पतिराज ने ग्रामजीवन और दक्षिण के काली-मन्दिरों की परम्पराओं का सजीव और भव्य वर्णन किया है। ग्रन्थ के रचना-काल के विषय में कोई भी तिथि निश्चय के साथ नहीं दी जा सकती है तथापि यदि ग्रन्थ यशोवर्मन् की मृत्यु के आस-पास लिखा गया होगा तो ७५० ई० के लगभग ग्रन्थ की तिथि अवश्य निर्धारित की जा सकती है[2]।

पद्मगुप्त अथवा परिमल के नवसाहसांकचरित[3] की रचना संभवतः १००५ ई०[4] में हुई थी। ग्रन्थ में ऐतिहासिक नामों और घटनाओं का उल्लेख हुआ है। इस कारण इसे सही अर्थों में ऐतिहासिक काव्य की संज्ञा प्रदान की जा सकती है[5]। पद्मगुप्त ने अपने संरक्षक महाराज एवं मालव-नरेश सिन्धुराज नवसाहसांक के कार्यों की प्रशंसा के लिये ग्रन्थ की रचना की थी। भारतीय राजकवियों में नूतन ऐतिहासिक घटनाओं को भी पौराणिक संदर्भ में रखने की प्रवृत्ति पाई जाती है। इस प्रवृत्ति के कारणों की विवेचना के संदर्भ में कुछ श्रेय विशाल पौराणिक वाङ्मय की प्रवृत्ति को है। इस प्रकार इस ग्रंथ में भी ऐतिहासिक तथ्यों को कल्पित कथा की तरह वर्णन किया गया है[6]। समग्र ग्रंथ अठारह भागों में विभाजित है। कल्पना तथा अतिरंजना के मध्य इतिहास की कड़ियाँ पिरोई हुई दृष्टिगत होती हैं।

बिल्हण का विक्रमांकदेवचरित, चालुक्य राजकुमारों का इतिहास है[7]। काश्मीर की सुरम्य घाटी का भारत के मौलिक इतिहास लेखन में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। बिल्हण के नाम से स्पष्ट है कि वह काश्मीर की किसी मनोहारिणी उपत्यका में उत्पन्न हुआ था और सम्भवतः कलश के राज्यकाल में उसने काश्मीर को छोड़कर पर्यटन करना आरम्भ किया जिसमें उसने मथुरा, कान्यकुब्ज, प्रयाग, काशी आदि सुप्रसिद्ध नगरों का भ्रमण किया। पर्यटन के दौरान कुछ दिन ढाला के राजकुमार कर्ण[8] के दरबार में रहा। विक्रमादित्य षष्ठ ने इसे विद्यापति (सब शास्त्रों के मर्मज्ञ) की उपाधि से अलंकृत किया, संभवतः इसके पूर्व वह चालुक्य शासक कर्णदेव त्रैलोक्य-मल्ल (१०६४-९४ ई०) के यहाँ भी रहा। चालुक्य-नरेश कल्याण ने (१०७६-११२७)

---

१. वही, पृ० १५०
२. वही, पृ० १५१.
३. वी० यस० इस्लामपुरकर संस्करण। बीयसयस, ५३, १८९५, बूलर और जारिए उबेर दास दी नवसाहसांकदेवचरित आफ़ पद्मगुप्त अथवा परिमल, एस० डब्ल्यू०, १८८८.
४. बूलर, ए० इ०, जिल्द १, पृ० २२२-२३२.
५. विन्टरनित्स, वही, पृ० ९२.
६. विन्टरनित्स, वही, पृ० ९३.
७. विन्टरनित्स, वही, पृ० ९३.
८. कोनो, "दस इण्डिसे ड्रामा", पृ० ११२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



नील-छत्र और एक हाथी उपहार में दिया तथा इसे अपना राजकवि बना दिया[1]। उसने अपने संरक्षक के सम्मान में विक्रमांकदेवचरित नामक अठारह खण्डों के काव्य की रचना की। काव्य की रचना १०८८ से पूर्व हुई होगी क्योंकि काव्य में महाराज हर्षदेव के दक्षिण के प्रसिद्ध अभियान का उल्लेख नहीं हुआ है। इसने काश्मीर के राजा हर्षदेव को राजकुमार के रूप में चित्रित किया है। कल्हण के अनुसार बिल्हण केवल हर्षदेव के सिंहासनारोहण की घटना को देखने के लिए ही जीवित था[2]।

ग्रन्थ के आरम्भ में चालुक्य-वंश की उत्पत्ति की पौराणिक गाथा है[3]। यहाँ विद्याधरी को अपनी परिणीता वधू के रूप में दर्शाया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ इतिहास की परिधि में घूमते हुए भी पौराणिक सन्दर्भों से बच न सका[4]। ग्रंथ में चालुक्य वंश के राजकुमार कल्याण सोमेश्वर १, सोमेश्वर २ और मुख्य रूप से विक्रमादित्य षष्ठ के उपलब्धियों एवं साहसिक कार्यों का वर्णन हुआ है जिसने कि १०७६ से ११२७ ई० तक शासन किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि बिल्हण का मुख्य उद्देश्य अपने काव्य-पाण्डित्य का परिचय देना था क्योंकि उसने काव्य-शास्त्र के जटिल नियमों का सुगमता से कौशल के साथ निर्वाह किया है। चालुक्य-नरेशों की घटनाएँ इतिहास के माध्यम से खरी उतरती हैं। चालुक्य-अभिलेखों द्वारा उन तथ्यों की ऐतिहासिकता प्रमाणित हो जाती है। विक्रमांकदेवचरित में चालुक्य राज्यवंश का झलमलाता चित्र मिलता है क्योंकि बिल्हण ने उन घटनाओं का अतिरंजित वर्णन किया है[5]। बिल्हण के अनुसार चालुक्य—चोल युद्ध में चालुक्य लोग चोलों का उन्मूलन कर देते थे। आगे बिल्हण वर्णन करता है कि पुनः चोल लोग भयंकर संगठन के साथ आक्रमण करते हैं। एक आक्रमण से दूसरे आक्रमण के अन्तर का समय यद्यपि ठीक-ठीक नहीं वर्णित है किन्तु वह कहता है कि कुछ समय बाद अथवा कुछ दिनों उपरान्त दूसरा आक्रमण हुआ। इतिहासकारों ने कवि की ऐतिहासिकता स्वीकार की है[6]। बिल्हण लिखता है कि जब महाराज उत्पन्न हुए थे तो स्वर्ग से प्रसूनों की वर्षा हुई थी, इन्द्र के भेरी के उद्घोष से सारा वातावरण प्रकम्पित हो गया था, स्वर्ग के देवता प्रसन्न हुए थे[7]। इतने विशद् वर्णन के उपरान्त भी महाराज की जन्म-तिथि के विषय में कोई उल्लेख

---

१. कीथ, वही, पृ० १५३.

२. प्रसर्पतः करटिभिः कर्णाटकटकान्तरे। राज्ञोऽग्रे ददृशे तुङ्गं यस्यैवातपवारणम् ॥
त्यागिनं हर्षदेवं स श्रुत्वा सुकविबान्धवम्। बिल्हणो वञ्जनां मेने विभूतिं तावतीमपि ॥
सौवर्णमलसाराद्या राजधान्यो धरापतेः। सुबह्वचोऽभ्रलिहगृहा भ्रेजिरे भुवनाद्भुताः ॥
—राजतरंगिणी, ७, ९३६-३८.

३. कीथ, वही, १५३.

४. विन्टरनित्स, वही, पृ० ९३.

५. विन्टरनित्स, वही, पृ० ९३.

६. वही,

७. विश्वम्भर शरण पाठक, ऐंशेण्ट हिस्टोरियन्स ऑफ़ इण्डिया, पृ० ५९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



नहीं है इसके पीछे सहस्रों वर्षों की संस्कृत साहित्य की धनी परम्परा का संस्कार छिपा हुआ है। इस पृष्ठभूमि के पीछे राजा के देवत्व की भावना का स्वरूप छिपा हुआ प्रतीत होता है।

बिल्हण में श्रेष्ठ कवि के सभी गुण वर्तमान थे। उसकी काव्य-प्रतिभा मार्मिक स्थलों को सँवारने में बन पड़ी है। इसका ज्वलन्त उदाहरण यह है कि उसने पूरे के पूरे ३ सर्गों को विक्रम और चन्द्रलेखा के परिणय में ही खपाया है। स्वयम्वर के दृश्यावलोकन में कवि-कुल-गुरु महाकवि कालिदास के रघुवंश को अपना आधार माना है[१]। समग्र काव्य का सब से मार्मिक स्थल विक्रम चतुर्थ के पिता आहोमल्ल की मृत्यु के वर्णन का है[२]। कवि के उत्कृष्ट कवित्वशक्ति का आभास पाठक को इसके अध्ययन से सहज ही हो जाता है।

कवि ने अठारहवें सर्ग में अपनी आत्मकथा लिखी है। यहाँ उसने अपने प्रदेश काश्मीर मुख्य रूप से अपने ग्राम खोनमुख का इतना वास्तविक चित्रण किया है कि सात-आठ शताब्दी बाद बूलर ने उस ग्राम की यात्रा की थी तथा वह बिल्हण के वर्णन की सटीकता एवं वास्तविकता की भूरि-भूरि प्रशंसा का मोह-संवरण न कर पाया है[३]। ग्राम, हिमालय की उत्तुंग शृङ्खलाओं से इतना सन्नद्ध है कि इसका सूक्ष्म वर्णन केवल कवि के ही शब्दों में किया जा सकता है। उसके अनुसार यह ग्राम हिमालय रूपी विलासिनी ललना का प्रिय आभूषण है[४]। हिमालय से निकटता के सादृश्य का इतना सजीव सुन्दर वर्णन भारतेतर साहित्य में भी दुर्लभ ही होगा। उसके अनुसार उसके पिता ज्येष्ठकलश ने महाभाष्य पर टीका लिखी थी। इसके दोनों भाई विद्वान् और लेखक थे तथा स्वयम् इसने अथक परिश्रम और लगन के साथ वेद, वेदांग, महाभाष्य, व्याकरण और काव्यशास्त्र का गहन अध्ययन किया था। उसकी कविता की ख्याति विश्व भर में व्याप्त थी[५]। वह स्वयम् कहता है कि ग्राम, प्रदेश, राजधानी, जंगल, उद्यान या वह स्थान जिसे सरस्वती ने पवित्र किया है, जहाँ बुद्धिमान और मूर्ख, वृद्ध और युवक, स्त्री एवं पुरुष, सभी स्फुरण के साथ उसकी कविताओं का पाठ करते हैं[६]।

काश्मीर—कवि कल्हण-प्रणीत राजतरंगिणी संस्कृत साहित्य की अनूठी निधि है[७]। संस्कृत के ऐतिहासिक ग्रन्थों में इसका स्थान सर्वोपरि है[८]। राजतरंगिणी में काश्मीर के राजाओं का इतिहास संग्रहीत है। विद्वानों में इस संदर्भ में मतैक्य है कि

---

१. इ० ऐ० ५, १८७६, पृ० ३२८.
२. आ० स० रि०, ५.
३. विक्रमाङ्कदेवचरित, १८, ७-८.
४. वही, १८, ९७.
५. वही, १८, ८९.
६. कीथ, वही, पृ० १५८.
७. विन्टरनित्स, वही, पृ० ९५.
८. बूलर, रिपोर्ट ५२, पृ० ६६.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



कल्हण ने केवल राजतरंगिणी का ही प्रणयन किया है किन्तु पेटरसन ने जयसिंहाभुदय नामक काव्य का रचयिता भी उसे ही माना है[1]। यह महाकाव्य काश्मीर के राजाओं का अगाध रत्नाकर है जिसमें अनेक राजाओं के समय की घटनाएँ तरंगों के रूप में उठती रहती हैं। नाम की सार्थकता विषयवस्तु की अर्थता में सन्निहित है। कल्हण के विषय में प्रत्यक्ष साधनों से कुछ भी ज्ञात नहीं है। उसके ग्रन्थ के आन्तरिक साक्ष्य के आधार पर उसके सम्बन्ध में कुछ कहा जा सकता है। संस्कृत–साहित्य में कल्हण का स्थान निस्सन्देह बहुत ऊँचा है। इसके पिता कर्णप, काश्मीर के राजा हर्ष के (१०८९-११०१) मंत्रिमण्डल में महत्त्वपूर्ण मंत्रि-पद पर शोभित थे। उन्होंने एक सामान्य काश्मीरी की भाँति अपने स्वामी हर्ष की सेवा की तथा उसी लगन और तत्परता के साथ उसके दुर्दिन में भी साथ दिया था। हर्ष की हत्या के समय वह उसी के आदेश पर बाहर किसी कार्यवश गया था। इस नरेश की मृत्यु की घटना का ज्ञान कल्हण को विस्तार के साथ था क्योंकि उस समय तक उसका सेवक मुक्त उसके साथ था। ऐसा प्रतीत होता है कि कर्णप हर्ष की हत्या के उपरान्त दीर्घ समय तक जीवित रहा परन्तु इस घटना के उपरान्त उसने राजनीति से वैराग्य ले लिया[2]। कल्हण का जन्म सम्भवतः ग्यारहवीं शती के आस-पास हुआ होगा। पिता की राजनीति से वैराग्य लेने पर बालक कल्हण के लिए मंत्रिपद और राजनीति के द्वार बन्द हो गये थे। कल्हण के चाचा कनक का भी हर्ष से बहुत अच्छा सम्बन्ध था। कनक ने हर्ष को परिहासपुर[3] की बुद्ध-मूर्ति को भंजित करने से रोका था। हर्ष की हत्या के उपरान्त कनक वाराणसी चला आया। अपने पिता की भाँति कल्हण भी शैव धर्म का उपासक था जिसके लिए काश्मीर प्रसिद्ध है। इस मत का उसे सम्यक् प्रकार से ज्ञान था और वह उसे सम्मान की दृष्टि से देखता था। काश्मीरी शैव धर्म अपने गूढ़ रहस्यों के लिए प्रसिद्ध है तथापि तन्त्रयान के कर्मकाण्डों में विश्वास रखनेवाले शैव धर्म के उपासकों के प्रति कल्हण के विचार अच्छे नहीं थे[4]। वह यद्यपि शैव धर्म का उपासक था तथापि उसमें धर्मसहिष्णुता पर्याप्त मात्रा में थी। वह बौद्ध धर्म के प्रति आदर का दृष्टिकोण रखता था तथा अहिंसा में विश्वास करता था। कल्हण के अनुसार बौद्ध धर्म काफी समय पूर्व हिन्दू धर्म के साथ तादात्म्य स्थापित कर चुका था[5]। क्षेमेन्द्र ने बुद्ध को विष्णु के अवतार के रूप में वर्णन किया है। कल्हण के पूर्व विवाहित भिक्षुओं के उल्लेख पाये जाते हैं[6]।

---

१. पेटरसन, ओरियण्ट लिस्टेन कांग्रेसी, जि० ६, लीडन, तृतीय, २,३६१.

२. कीथ, वही, पृ० १५८.

३. संभवतः कल्हण-परिवार का मूल निवासस्थान, कीथ, वही, पृ० १५८.

४. आरेल स्ताइन, कल्हणन्स क्रानिकिल आफ़ काश्मीर ( १९०० )

५. कीथ, वही, पृ० १५९.

६. कीथ, वही, पृ० १५९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



कल्हण ने अपने इस विशाल ग्रन्थ की इतिश्री ११४८ ई० में की होगी[1]। ब्राह्मण जाति में उत्पन्न होने के कारण उसमें संस्कृत वाङ्मय के प्रति सहज अनुराग था। राजतरंगिणी से पता चलता है कि कल्हण ने संस्कृत वाङ्मय, शिलालेखों तथा पुरातत्वीय अन्य स्रोतों का गम्भीर अध्ययन किया था[2]। वह अत्यन्त प्रतिभाशाली, विद्वान् लेखक था। उसने मुख्य रूप से महाभारत अध्ययन के साथ-साथ बाणभट्ट के हर्षचरित, बिल्हण के विक्रमाङ्कदेवचरित तथा वराहमिहिर-प्रणीत बृहत्संहिता का विशेष रूप से अध्ययन किया था। वह शैव धर्म का अनुयायी था। जिस प्रकार अंग्रेज क्रिश्चियन शब्द प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार कल्हण ने शैव शब्द का प्रयोग किया है[3]। बौद्ध धर्म के प्रति वह श्रद्धावान था। उसने अशोक तथा अन्य बौद्ध शासकों की प्रशंसा, उनके द्वारा मठ, स्तूप आदि के निर्माण के प्रसंग में की है। जैन और बोधिसत्वों को भी वह आदर की दृष्टि से देखता था तथापि बौद्ध भिक्षुओं की कट्टरता के प्रति व्यंगात्मक स्वर कहने से अपने को रोक नहीं सका है[4]। वास्तव में कल्हण अपने युग का मौलिक विचारक था[5]। उसकी चिन्तनधारा भौतिक रोड़ों से बाधित नहीं हो सकी थी। यद्यपि कल्हण दरबार के वातावरण में उत्पन्न हुआ था परन्तु न तो वह दरबारी ही था और न तो वहाँ का कवि। तत्कालीन समाज तथा सामाजिक पात्रों के विषय में उसकी स्वयम् की मौलिक विचारधारा थी। वह जाति और धर्म के संकीर्ण बन्धनों से सर्वथा मुक्तप्राय था। उसने ब्राह्मण और कायस्थों के आचार-विचार और चरित्र पर बड़े कड़े व्यंग कसे हैं[6]। डामरों का वर्णन बहुत हेय दृष्टि से किया है। कल्हण के अनुसार वे किसी 'दस्यु' से कम नहीं हैं।

कल्हण ने स्वयम् ही अपने ग्रन्थ राजतरंगिणी को ऐतिहासिक ग्रन्थ बताने की चेष्टा की है। उसके अनुसार उसने इस ग्रन्थ में इतिहास लिखने का प्रयास किया है[7]। कल्हण का इतिहासकार के प्रति अपना अलग दृष्टिकोण है जो सहस्र वर्ष बाद भी उसी अनुपात में आज भी लागू है। इसके अनुसार वही इतिहासकार सफल है जो बिना पूर्वाग्रह के न्यायमूर्ति की भाँति सत्यासत्य का उद्घाटन करता हो[8] यद्यपि कल्हण द्वारा निर्दिष्ट उदात्त इतिहासकार के लक्षण ग्रहणीय है किन्तु किन्हीं सन्दर्भों में कल्हण ने स्वयम् ही अपने नियमों का उल्लंघन किया है क्योंकि कवि लौकिक नीतिशास्त्र के मतों से बहुत अधिक प्रभावित जान पड़ता है। उसके इतिहास में धर्म और नैतिकता की शिक्षा सन्निहित है[9]। एक भारतीय की भाँति कल्हण पूर्वकर्मों के

१. विन्टरनित्स, वही, पृ० ९५.
२. राजतरंगिणी, १, ९-२४.
३. विन्टरनित्स, वही, पृ० ९५.
४. राजतरंगिणी, १, १८४.
५. विन्टरनित्स, वही, पृ० ९६.
६. राजतरंगिणी, ४, ६२१ ; ७, ११०६ ; ७, १३१९ ; ८, ५६० ; ८, २३८३.
७. वही, १, ४.
८. राजतरंगिणी १, ७.
९. विन्टरनित्स, वही, पृ० ९६.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



परिणामों में अटूट श्रद्धा रखता था। अलौकिक शक्तियाँ, विद्याधर यक्ष, किन्नर तथा गन्धर्वों के अस्तित्व में कल्हण का विश्वास था। किसी राजा के अधःपतन के उल्लेख में सबसे महत्त्वपूर्ण हाथ इन्द्रजाल अथवा ब्राह्मण के शाप का रहा है। उनकी मृत्यु या तो असिधार से हुई है या विष के माध्यम से। पाश्चात्य विद्वानों को कल्हण के इन विवरणों में दोष दिखाई पड़ता है किन्तु वे इस तथ्य की आलोचना करने से पूर्व यह भूल जाते हैं कि कल्हण एक भारतीय इतिहासकार है उसकी अपनी इतिहास के प्रति विशिष्ट मान्यतायें, दृष्टिकोण तथा सीमाएँ हैं। हर प्रकार से कल्हण का दृष्टिकोण पूर्णरूपेण भारतीय रहा है। जहाँ तक तिथियों का विषय है वह सर्वथा माननीय नहीं हो सकता है। उदाहरणस्वरूप, रणादित्य ने तीन सौ वर्षों तक राज्य किया। इस प्रकार का कथन नितान्त अश्रद्धेय है और इस बात का परिचायक है कि यह कवि तिथि के शुद्ध उल्लेख के प्रति कितना उदासीन था। कल्हण के आधार पर यदि अशोक मौर्य की तिथि का मूल्यांकन किया जाय तो उसकी तिथि १२६० ई० पू०[1] निर्धारित होती है। उसने कश्मीर से संबंधित सभी पौराणिक कथाओं को एक सहज भारतीय की भाँति राजतरंगिणी में रक्खा है। एक कुशल इतिहासकार तथा विद्वान् अनुभवी प्राच्यवेत्ता की भाँति उसने इतिहास के सभी स्रोतों का सिंहावलोकन किया था। वह सच्चे अर्थों में सुविज्ञ पुराविद था[2]। कल्हण का साक्ष्य समकालीन तथा पूर्वकालीन इतिहास के लिए विश्वसनीय है[3]।

कल्हण-कालीन कश्मीर का इतिहास रक्त और युद्धों का समन्वयात्मक वीभत्स महाकाव्य है। हर्ष की मृत्यु के उपरान्त उसके शत्रु उच्चल और सुसल ने कश्मीर के राज्य का विभाजन किया। सुसल को लोहर का राज्य मिला। १११११ ई० में उच्चल अपने कर्मचारियों के षड़यन्त्र से मार डाला गया। उनमें से रड्ड को एक दिन के लिये राज्य-भार सम्हालने का कार्य मिला। इसके उपरान्त गर्गचन्द्र ने चार माह तक शासन किया। सुसल ने गर्गचन्द्र से मित्रता रक्खी थी और वह शासक हो गया। इसका शासन-काल कष्ट और दुःखों की एक विशाल गाथा है। गर्गचन्द्र की हत्या के उपरान्त डामरलोग भिक्षाचार के नेतृत्व में पुनः संगठित हुए। हर्ष के पौत्र ने ११२० से ११२१ तक शासन किया किन्तु वास्तविक सम्प्रभुता सुसल के हाथ में थी। उसने कालान्तर में एक विद्रोह खड़ा कर दिया। दुर्भाग्यवश वह अपने द्वारा रचित हत्या के षड़यन्त्र का स्वयम् ही शिकार हो गया। तत्पश्चात् इसके पुत्र जयसिंह ने राज्यभार ग्रहण किया। यद्यपि इसमें पिता की भाँति अदम्य उत्साह और शौर्य नहीं था तथापि मैक्यावेलीय राजनीति के आधार पर सामन्तों को उच्च पद एवं पुरस्कार देकर अपने पक्ष में मिला लिया[4]। भिक्षाचार की दो वर्ष बाद हत्या कर दी गयी।

---

१. आरेल स्ताइन, राजतरंगिणी, पृ० ६.
२. विन्टरनित्स, वही, पृ० ९७.
३. विन्टरनित्स, वही, पृ० ९७.
४. कीथ, वही, पृ० १६०.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



११३५ ई० के उपरान्त कश्मीर का इतिहास शान्तिपूर्ण था किन्तु ११४८ में पुनः अशान्ति के घने मेघों से उसकी सुरम्य घाटी आच्छादित हो गई। राजकुमार भोज ने दरद कबीलों को सहायता से आन्दोलन प्रारंभ किया। अन्ततोगत्वा कूटनीति कुचल दी गई। कल्हण ने ११४९ ई० में अपने इस महान् ऐतिहासिक काव्य की इतिश्री इसी घटना से की है।

कालिदासोत्तर संस्कृत कवियों में कल्हण की समता का चरित्र-चित्रण स्यात् ही किसी कवि ने किया हो। इसने अपने पूर्व कवियों को वर्णन-पद्धति को ग्रहण नहीं किया है। परम्परित वर्णन को नया स्वरूप देने में उसने अभूतपूर्व सफलता अर्जित की है। इस प्रकार कवि भारतीय परम्परा से सामान्य स्थापित करते हुए भी अपना एक अलग विशिष्ट व्यक्तित्व रखता है[1]।

कल्हण की अमर लेखनी से चित्रित कुछ चरित्रों के नामों का उल्लेख करना अनिवार्य प्रतीत होता है। दिद्दा का चरित्र-चित्रण देश और काल के अनुकूल है। वह मक्कार, चतुर किन्तु महत्त्वाकांक्षिणी नारी थी[2]। इसी कोटि का दूसरा मार्मिक हृदय-ग्राही चित्रण महाराज अनन्त का है। वे सच्चरित होते हुए भी भीरु थे[3]। कल्हण ने अपने कटीले व्यंग-बाणों-सी चुभती हुई शैली में समाज के उन पात्रों का उल्लेख किया है जो अयोग्य होते हुए भी राज्य की सेवाओं में उच्चपदों पर आरुढ़ है[4] जिनमें न तो कार्य-दक्षता ही थी और न ही उनके चरित्र उदात्त थे[5]।

अनेक स्थलों पर कल्हण ने अपने को अग्रणी कवि के रूप में उद्घोषित किया है। महाराज युधिष्ठिर प्रथम के अन्त का वर्णन मार्मिक शब्दों में किया है। जिस प्रकार से मृतक-शरीर पर गिद्ध टूट पड़ते हैं उसी भाँति उत्तेजित शत्रु-सेना दुर्बल साम्राज्य पर टूट पड़ी थी। अतः उसे स्वदेश छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। उसकी बहुत-सी पत्नियों तथा समग्र कोष को शत्रु ले गये[6]। घने हिमपात के बाद के दुर्भिक्ष का वर्णन कम मार्मिक नहीं है। उसकी तुलना वह मृत्यु के भयंकर अट्टहास से करता है[7]।

राजतरंगिणी के सप्तम और अष्टम तरंगों में कल्हण की काव्य-प्रतिभा अपने चरम उत्कर्ष पर है। कल्हण की कुशल लेखनी से सूर्यमती की दर्दनाक मृत्यु का वर्णन अत्यन्त सफलता के साथ हुआ[8]। सूर्यमती महाराज अनन्त की पत्नी थी। भीरु महाराज अनन्त को उसने नूरजहाँ की भाँति अपने अधिकार में कर लिया था। इस

---

१. विन्टरनित्स, वही, पृ० ९७.
२. राजतरंगिणी, ६, १७६.
३. वही, ७, १४२.
४. वही, ७, १४२.
५. वही, ७, ३८ और १०६.
६. वही, १, ३६८.
७. वही, २, १९.
८. राजतरंगिणी, ७, ४७२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



प्रकार वह स्वयं राज्यभार वहन करती थी। अपने पुत्र कलश के सिंहासनारोहण के लिए उसने महाराजा को राज्यभार-त्यागने के लिए बाध्य किया था[१]। वास्तव में प्रारंभिक मध्ययुगीन कश्मीर के इतिहास में यह एक अहितकारी घटना थी। इससे पिता और पुत्र के मध्य विद्रोह एवं आन्दोलन हुये। सैकड़ों बार सूर्यमती क्षणिक शक्ति लाने में सफल भी हुई किन्तु अल्प शान्ति के पश्चात् कलश ने खुलकर विद्रोह प्रारंभ कर दिया। एक बार अनन्त और उसकी पत्नी सूर्यमती के मध्य उत्तेजनात्मक दृश्य उपस्थित हुआ। अनन्त ने सूर्यमती को कठोर शब्दों के साथ बुरा-भला कहा तथा कलश की वास्तविकता पर उसने सन्देह प्रकट किया। इस प्रकार अपमानित नारी सूर्यमती ने अनन्त के प्रति भयंकर क्रोध प्रकट किया। हतोत्साहित अनन्त ने अन्त में आत्म-हत्या का प्रश्रय लिया। सूर्यमती परम्परित प्रथा के अनुसार उसके शव के साथ स्वयम् भी सती हो गई। अन्त में शपथ के माध्यम से अपने चरित्र की शुचिता एवं पतिपरायणता को प्रमाणित कर मुस्कराते हुए नेत्रों के साथ चिता की दहदहाती अग्नि का सहर्ष आलिंगन स्वीकार किया[२]।

हर्ष और सुशल[३] के चरित्र-चित्रण में कल्हण की लेखनी ने महाकवि का परिचय दिया है। सप्तम तरंग में महाकवि ने आदि कवि वाल्मीकि और महर्षि व्यास की शैली को अपनाया है। महाराज का व्यक्तित्व आकर्षक है। उसकी तुलना कल्हण ने सन्तुष्ट सिंह से की है। उसकी लम्बी अस्त-व्यस्त दाढ़ी, चेहरे पर लटकती हुई मूछें, वृषभ स्कन्ध, विशाल वक्ष तथा मेघतुल्य गर्जन करनेवाली वाणी को उसने चित्रित किया है। उसके व्यक्तित्व के सम्मुख भगवान् भी अपना संतुलन खो सकते हैं किंतु इतना होते हुए भी इसका चरित्र विरोधभासों का समूह है। उसकी न्याय-प्रियता का बोध उसके राजमहल के चारों कोनों पर लटके घण्टों से होता है। उसे कोई भी न्याययाचक बजा सकता था[४]। वह सदैव सेवकों को मुक्त हृदय से दान तथा परितोषिक देता था। कल्हण के विवरण के अनुसार भिक्षुओं के घर की व्यवस्था उसके दान के प्रकरण से ही हो जाती थी। इतना ही नहीं अपितु उनके पास पर्याप्त धन भी हो जाता था जिससे वे दूसरों की भी सहायता करते थे।

हर्ष और उसकी राजमहिषी मठों एवं मन्दिरों के दर्शनार्थ जाया करते थे। उसका दरबार विद्वानों और कवियों से अलंकृत रहता था। बिल्हण उसके दरबार का प्रमुख रत्न था। स्वयं हर्ष प्रतिभाशाली, बहुभाषाविद्, उत्कृष्ट कोटि का गायक तथा कवि था।[५]

---

१. वही, ७, ४७९. २. वही, ७, ८६९.

३. वही, ७, ४८२.

४. राजतरंगिणी, ७, ८७९. बी० आर० आर० दीक्षितार, एम० ओ० रि० इ०, १५, पृ० २१८.

५. राजतरंगिणी, ७, ८७७, ८७८, ८७९, ९३२, ९४२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



उसी हर्ष के मुखर व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष अन्यायी और निर्दयी का है। इसका बहुत कुछ उत्तरदायित्व उसके मंत्रियों की कुत्सित मंत्रणा को है। उसने अपने संबंधियों को मृत्यु के विकराल गाल में झोंक दिया था। इसी प्रकार प्रजा को सताना उसकी नित्य क्रिया का एक विधान था[1]। जिस क्रूरता का भीषण ताण्डव-नृत्य उसने किया था वही निर्दयता अब स्वयम् उसके ऊपर नर्तन करने आई। फलतः उसकी सेना ने स्वयम् उसका ही उन्मूलन कर दिया। हर्ष ने अपने दुर्दिन में मंत्रियों के यहाँ रहने की शरण माँगी परंतु किसी ने भी उसे प्रश्रय नहीं दिया। अन्त में वह एक भिखारी की झोपड़ी में रहने गया। वहीं उसके सैनिकों ने घेर कर उसकी हत्या कर दी। कल्हण के अनुसार किसी भी राजा ने उसके तुल्य शक्ति का आनन्द नहीं उठाया और न हीं किसी की इतनी अपमान-जनक मृत्यु ही हुई[2]। अन्त में कल्हण ने सुस्सल की मृत्यु का वर्णन अत्यन्त क्रूर व्यंगात्मक शैली में किया है[3]।

राजनीतिक इतिहास में राजतरंगिणी का इतना महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं है जितना कि सांस्कृतिक अध्ययन के क्षेत्र में[4]। पूर्व मध्यकालीन भारत ( मुख्यतः काश्मीर ) की यदि संस्कृति, समाज, धर्म आदि का दिग्दर्शन करना हो तो राजतरंगिणी का अध्ययन अनिवार्य हो जायेगा। इस महाग्रन्थ का सांस्कृतिक अनुशीलन निश्चय ही श्रेयस्कर होगा। ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी की धार्मिमक दशा, उनके सम्प्रदायों का स्वरूप, काश्मीरी लोकप्रिय धारणाएँ सर्प की कल्पना, सती-प्रथा इत्यादि का सम्यक् विवेचन कल्हण ने किया है। राज्य-विधान, शासन-प्रणाली, सामन्तवादी प्रथा, राजपुरुषों के कर्त्तव्य आदि का भी उल्लेख उसके ग्रन्थ में पाया जाता है[5]।

कल्हण की इतिहास-परम्परा का निर्वाह पन्दरहवीं-सोलहवीं शताब्दी तक के इतिहास लेखकों ने किया है। जोन राज की राजतरंगिणी में सुल्तान जैनुल आब्दीन ( १४१७-६७ ) तक के काश्मीर के इतिहास का वर्णन प्राप्य है[6]। इसकी मृत्यु १४५९ ई० में हुई थी। दुर्भाग्य से वह ग्रन्थ को पूर्ण न कर सका। उसके शिष्य शीवर ने एक जैन राजतरंगिणी की रचना की। उसके चार अध्यायों में १४५९ से १४८६ तक का वर्णन प्राप्य है। इसने कल्हण की वर्णन-पद्धति का अन्धानुकरण किया है[7]। 'राजावलि-पताका' के लेखक प्राज्यभट्ट की मृत्यु दुर्भाग्यवश ग्रन्थ के संपूर्ण होने से पूर्व ही हो गई किन्तु इसके योग्य शिष्य शुक ने ग्रन्थ को पूर्ण किया। यह घटना उस समय की है जब कि काश्मीर की सुरम्य घाटी पर पूर्णरूपेण मुगल-सम्राट् अकबर महान् का अधिकार हो गया था।

---

१. वही, ७, १२०४.
२. राजतरंगिणी, ७, १७१३.
३. वही, ८, १३३१.
४. विन्टरनित्स, वही, पृ० १०१.
५. डे०, एस० के०, 'हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर', पृ० ३५५.
६. विन्टरनित्स, वही, पृ० १०१.
७. वही, पृ० १०१.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



भारत में राजतरंगिणी के टक्कर का कोई ग्रन्थ नहीं है[1]। कुछ लघु ऐतिहासिक महाकाव्यों का उल्लेख प्रसंगवश कर देना समीचीन प्रतीत होता है। कल्हण बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। इसका उल्लेख मानख ने किया है[2]। इसने अपने ग्रन्थ सोमपालविलास में काश्मीर के निकट राजपुरी के राजा सोमपाल के चरित्र का वर्णन किया है। इसने सुस्सल के विरुद्ध युद्ध किया था[3]। बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरणों में 'पृथ्वीराजविजय' नामक ऐतिहासिक काव्य[4] की रचना हुई है। बेलवेलकर के अनुसार पृथ्वीराजविजय का लेखक जयांकजयरथ है। ग्रन्थ में उसका उल्लेख हुआ है[5]। दुर्भाग्यवश पृथ्वीराजविजय[6] जो कि एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ था, उसे भी नियति-नटी ने केवल एक खण्डित हस्तलिखित ग्रन्थ के रूप में ही शेष रक्खा है। इसमें अजमेर और दिल्ली के चाहमान राजाओं की विजयों का उल्लेख है। दिल्ली के पृथ्वीराज की सुल्तान मुहम्मद गोरी पर विजय की चर्चा मार्मिक रीति से लिखी गयी है (११९१)। संभवतः ग्रन्थ की रचना पृथ्वीराज के जीवन-काल में ही की गयी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थ की रचना पृथ्वीराज की गोरी पर विजय के शीघ्र बाद ही हुई होगी[7]। विन्टरनित्स ने इस ग्रन्थ का समय ११७८ से १२०० ई० निर्धारित किया है[8]। इसकी लोकप्रियता चौदहवीं, पन्द्रहवीं शताब्दी में बढ़ी[9]। धार्मिक किंतु गम्भीर जैन संत हेमचन्द्र ( १०८८-११७२ ) ने चालुक्य-नरेश कुमारपाल की प्रतिष्ठा में 'कुमारपाल-चरित' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। इसका दूसरा नाम 'द्वासरकाव्य' है क्योंकि

---

१. प्रिन्सेप की कल्हण राजतरंगिणी, कलकत्ता, १८६५.
आरेलस्ताइन, जिल्द, २, पृ० ३७३.
डे०, यस० के०, 'हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर', पृ० ३५९.

२. कीथ, वही, पृ० १७२.

३. मानख, श्रीकण्ठचरित, २५, ७५.
बूलर, जबांराएसो, बम्बई, १८७७. पृ० ५०-५२
याँकोबी, ज० रा० ए० सो०, १८९७, पृ० २९३.
डे०, एस० के०, संस्कृति पोइटिक्स, जि० १, पृ० १९१.
वही, हि० स० लि०, पृ० ३२२ ( पाद-टिप्पणी ).

४. राजतरंगिणी, ८, ६२१.

५. एस० के० वेलवलकर का संस्करण, कलकत्ता, १९१४-२२.
गौरीशंकर हीराचंद्र ओझा और गुलेरी का संस्करण ( १९४१ )

६. पृथ्वीराजविजय, ५, ५०.

७. हर बिलास सरद, ज० रा० ए० सो०, १९१३. पृ० २५९.

८. कीथ, वही, पृ० १७३.

९. बूलर, रिपोर्ट, ६२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



ग्रन्थ के दो भाग हैं। प्रथम खण्ड के बीस अध्याय संस्कृत भाषा में हैं तथा द्वितीय खण्ड के आठ अध्याय प्राकृत भाषा में हैं। इसमें इतिहास के अतिरिक्त व्याकरण के नियमों का प्रतिपादन है। संस्कृत तथा प्राकृत व्याकरण के विषय में इसका प्रणयन हुआ है। यह चालुक्यों के इतिहास की महत्त्वपूर्ण निधि है। कुमारपाल के चरित्र का उद्घाटन सोलहवें अध्याय से बीसवें अध्याय में प्राप्य है। इस ग्रंथ में वह जैन मतावलम्बी के रूप में उल्लिखित हुआ है। उक्त नरेश ने मत्स्य-व्यापार तथा बलिदान की परम्परा को बन्द करा दिया। लेखक ने अनेक जैन मंदिरों के निर्माण का श्रेय इसे दिया है। अन्तिम दो अध्यायों में नीति तथा धर्म की चर्चा हुई है। ग्रन्थ के उपसंहार से पता चलता है कि रचना उस समय हुई थी जब कुमारपाल का जीवन अपने चरमोत्कर्ष की सीमा को लांघ चुका था। अतः ग्रन्थ की रचना ११६३ ई० के पूर्व नहीं हुई होगी।[1]

कृतकौमुदी[2] में सोमेश्वरदेव ने बघेल राजाओं लवण प्रसाद और वीरधवल के मंत्री वस्तुपाल की जीवनी लिखी है। साथ ही इससे गुजरात के बघेल वंश के इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है। सोमेश्वरदेव का काल ११७९ से १२६२ ई० का है। कवि स्वयम् को गुजरात के बघेल राजाओं का मुख्य पुरोहित बताता है। इसने अनेक प्रशस्तियाँ १२४१ से १२५५ ई० के मध्य निबद्ध की हैं। उनमें से कृतकौमुदी का एक पद उसी रूप में उद्धृत पाया जाता है। ग्रन्थ में बघेल राज्य के मन्त्री वस्तुपाल की उदारता एवं साहित्यिक अभिरुचि का वर्णन प्राप्य है। इसकी समीक्षा यदि काव्य-सिद्धांत के मूल्यों पर की जाय तो भी उसमें कहीं से आँच नहीं लगती। इससे चालुक्यों के इतिहास पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है[3]। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से भारत के तेरहवीं शताब्दी के कुछ प्रदेशों की राजनीतिक और सामाजिक दशा के विषय में सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं[4]। सोमेश्वरदेव ने सुरतोत्सव[5] नामक एक शृङ्गारिक काव्य की भी रचना की है। इस ग्रन्थ में पन्द्रह अध्याय है। यद्यपि कथा का आधार कल्पना

---

१. बरजेस, इ० ए०, ४ ( १८५७ ) पृ० ७१, ११०, २३२, २६५.
बूलर, हेमचन्द्र, पृ० १८, ४३.
डे०, एस० के०, "हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर", पृ० ३६२.

२. बम्बई संस्कृत सीरीज नं० २५ ( १८८३ ) में ए० वी० कठवते द्वारा प्रकाशित ए० हैक का जर्मन अनुवाद जो कि आर० मुन्जवर्ग द्वारा प्रकाशित रतिबोर, १८९२, प्रस्तुत अनुवाद दुर्लभ ग्रन्थ है।

३. बूलर, इ० ए०, ६, १८७७, पृ० १८६.
ए० इ०, जिल्द १, पृ० २०.

४. विन्टरनित्स, वही, पृ० १०३.

५. काव्यमाला (बम्बई), ७३,१९०२ से प्रकाशित।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



ही है किंतु इतिहास की नींव पर ग्रन्थ का विस्तार हुआ है[1]। बाण के हर्ष-चरित तथा बिल्हण के विक्रमांकदेवचरित की भाँति सोमेश्वरदत्त ने अन्तिम अध्याय के पद में वस्तुपाल की प्रशंसा में छन्द लिखा है।

अरिसिंह ने तेरहवीं शताब्दी में ग्यारह खण्डों की सुकृतस्मृतिकथा[2] की रचना की थी। यह मध्यम श्रेणी का काव्य-ग्रन्थ है[3]। यह गुजरात के इतिहास के सिंहावलोकन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। सन्ध्याकरनन्दिनी के "रामचरित"[4] में इतिहास के तथ्यों का छिट-पुट उल्लेख है। इसमें बंगाल के राजा रामपाल (११वीं शती) का इतिहास वर्णित है[5]। शंभु कृत "राजेन्द्रकर्णपूर" काश्मीर के राजा हर्षदेव का प्रशस्ति-काव्य है। यह नरेश का राजकवि भी था। इसने अन्योक्ति मुक्तालशतक नामक एक अन्य काव्य ग्रन्थ की रचना भी की है। काव्य का कोई भी पक्ष महत्त्वपूर्ण नहीं है[6]।

संस्कृत वाङ्मय के ऐतिहासिक ग्रन्थों का सिंहावलोकन करने के उपरान्त विदेशी विद्वानों द्वारा प्रतिपादित उस विचार का खण्डन स्वतः हो जाता है जिसके अनुसार प्राचीन भारत में किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ का प्रणयन नहीं हुआ था। भारतीय प्राचीन इतिहास के प्रणेताओं का स्वरूप आधुनिक इतिहास-लेखन की धारणा से भिन्न था। आधुनिक इतिहास के प्रचलित स्वरूप का जन्म योरोप की जलवायु में हुआ है[7]। प्रत्येक संस्कृति और सभ्यता का उसके इतिहास-लेखन पर प्रभाव पड़ता है। आधुनिक प्रचलित ऐतिहासिक दृष्टिकोण में उत्पन्न और विकसित होने के कारण इसने अपनी विशेषताओं का इतिहास के स्वरूप पर प्रभाव डाला है[8]। योरोपीय इतिहास के दृष्टिकोण को भारत में सर्वप्रथम लाने का उचित श्रेय सर विलियम जोन्स को दिया जाना चाहिये[9]।

प्रारंभिक मध्ययुगीन भारतीय इतिहासकार इतिहास के स्वरूप से अभिज्ञ थे[10]।

---

१. कीथ, वही, पृ० १७३.

२. जैन आत्मानन्द सभा सिरीज, भावनगर, १९१७ संस्करण: डे०, एस० के०, संस्कृत पोइटिक्स, जिल्द १, पृ० २१०.

३. विन्टरनित्स, वही, पृ० १०४.

४. हरप्रसाद शास्त्री का संस्करण। ए० एस० बी० मेम्बायर्स, ३, (१९१०) ए० इ०, जि०, ९, पृ० ३२१. स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ४१६.

५. कीथ, वही, पृ० १७४.

६. वही, पृ० १७४.

७. कालिंगवुड, दि आइडिया आफ हिस्ट्री, भाग १ और ३.

८. विश्वम्भर शरण पाठक, ऐंश्येण्ट हिस्टोरियन्स आफ इण्डिया, पृ० १३७.

९. ऐशियाटिक रिसर्चेज, जि० ४ (१७९७), पृ० १–१७.
वही, जि० ५ (१७९७), पृ० २४१–२९६.

१०. विश्वम्भर शरण पाठक, वही पृ० १४३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



इस संबंध में हर्षचरित, विक्रमाङ्कदेवचरित, राजतरंगिणी इत्यादि ग्रन्थों का विशेष रूप से उल्लेख आवश्यक है। यद्यपि आधुनिक इतिहास के स्वरूप के चौखट में समुचित रूप से प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत के ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं बैठ पाते हैं तथापि उनकी उपादेयता विविध दृष्टियों से उपादेय है। तत्कालीन इतिहास के लेखन के विशाल ऐतिहासिक घटनाओं के समसामयिक मानचित्र में सम्बन्धित घटनाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक समसामयिक घटनाओं के सन्दर्भों का भी उल्लेख इनमें सुलभ है। इस प्रकार के प्रारंभिक मध्ययुगीन भारतीय इतिहास में केवल घटनाओं की क्रमिक तालिका का ही उल्लेख नहीं हुआ है प्रत्युत उसमें उन विवरणों का तत्कालीन सांस्कृतिक दृष्टिकोण से आलोचनात्मक व्याख्या भी चलती है[1]। भले ही प्राचीन भारतीय पौराणिक आख्यानों से सने हुए ऐतिहासिक तथ्य आधुनिक इतिहासकारों को विचित्र लगते हैं किन्तु इनमें निहित इतिहास के तथ्यों के उद्घाटन का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है और इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता है[2]।

---

१. विश्वम्भर शरण पाठक, ऐंशेण्ट हिस्टोरियन्स आफ इण्डिया, पृ० १४८.

२. वही, पृ० १४९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अध्याय २

# कथा के उद्भव का इतिहास

कथा के उद्भव का संबन्ध मनुष्य की उत्पत्ति से है। आरंभिक कहानियाँ परियों की कथाओं, काल्पनिक गाथाओं आदि पौराणिक कहानियों के रूप में प्रारम्भ होती हैं। वैदिक युग की गाथाओं में मानवेतर तत्त्व एवं कल्पना की सुखद उड़ान का दिग्दर्शन सहज में ही हो जाता है। प्रारंभ में संभवतः कथा का उद्देश्य केवल कथा ही रहा होगा। कालान्तर में कथा, कहानी के अभिप्राय से हटकर ज्ञान के क्षेत्र से संबंधित होने लगी। यह निस्संदेह कहानी-लेखन के इतिहास में महत्त्वपूर्ण सोपान था[1]। ऋग्वेद में कथा के मूल तत्त्व सुप्तावस्था में अवश्य पाये जाते हैं। कथा में आदि-काल से ही मानव और पशु का अन्योन्याश्रित संबंध दिखाया गया है। ऋग्वेद[2] के इस मंत्र का जो कुछ अर्थ हो परन्तु इतना तो अवश्य ही स्पष्ट है कि ब्राह्मणों के वेद-पाठ के स्वर की तुलना यहाँ मण्डूकों के टर्र-टर्र स्वर से की गई है। इस स्थान पर मनुष्य और पशु का संबंध प्रदर्शित किया गया है। इसी संबंध का और स्पष्ट उदाहरण उपनिषदों[3] में मिलता है[4]। इस प्रकार कल्पित कथा का क्रमशः विकसित रूप महाकाव्यों में दृष्टिगत होता है[5]।

लोक-प्रचलित मान्यताओं तथा धारणाओं का चित्रीकरण भरहुत की बौद्ध कला में हुआ है[6]। बौद्ध धर्म ने पशुओं को प्रमुख स्थान दिया। पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार मानव को पशु-योनि में जन्म लेना बताया गया है। हिन्दू, बौद्ध तथा जैन सभी धर्मों में पशुओं को उचित स्थान प्रदान किया गया। स्वयम् तथागत को पूर्व जन्म का सिंह बताया गया है। इसीलिए भगवान् बुद्ध को शाक्यसिंह भी कहा गया है।

कथाएँ भारत के उत्कृष्ट बौद्धिक मस्तिष्क की उपज हैं[7]। इन कथाओं का केवल धार्मिक[8] साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं अपितु काव्य-जगत् में भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रायः लोग गाथा और इतिहास में मिथ्या और सत्य का व्यवधान मानते हैं किंतु सत्य मिथ्या से अधिक विचित्र होता है। आदिमयुग के मनुष्यों के प्रत्येक दल ने ज्ञानो-

---

१. कीथ, हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० २४२.
२. क० स० सा०, ७, १०३.
३. छान्दोग्योपनिषद्, १, १२; ४, १; ५,७.
४. कीथ, वही, पृ० २४२.
५. हुल्समन, दि महाभारत, ४।८८.
६. म० आ० स० इ०, जिल्द १ ( १९१९ ), १५.
तिथि के लिए रमेश चन्द्र मजूमदार, ज० प्रो० ए० सो० बं०, १९२२, पृ० २२५.
७. विन्टरनित्स, पृ० ३०१.
८. वही, पृ० ३०१, पा० टि०, ४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



न्मेष के अरुणोदय में जो भावपूर्ण इतिवृत्त संगृहीत किये थे, उन्हें आज गाथा या पौराणिक उपाख्यान कहकर अलग कर दिया जाता है, क्योंकि उन चरित्रों के साथ भावनाओं का भी बीच-बीच में संबंध लगा हुआ सा दीखता है। घटनाएँ कहीं-कहीं अतिरंजित-सी भी जान पड़ती हैं तथा संग्रहकारिणी तर्कबुद्धि से ऐसी घटनाओं में रूपक का आरोप कर लेने की सुविधा हो जाती है किन्तु उनमें भी कुछ सत्यांश घटना से सम्बद्ध है ऐसा तो मानकर ही चलना पड़ेगा।

महाभारत एवं पतञ्जलि के महाभाष्य[1] के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पशुओं की कथाएँ उस समय लोकप्रिय थीं परन्तु प्रमाण के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि कल्पित कथाओं ने साहित्य में उचित स्थान प्राप्त कर लिया था अथवा नहीं[2]। निस्सन्देह पंचतंत्र में कल्पित कथाओं का विस्तार मिलता है किन्तु उसमें कलात्मक एवं साहित्यिक तत्त्वों का सर्वथा अभाव पाया जाता है। पंचतन्त्र पूर्णरूपेण कल्पित कथाओं का बृहद् संकलन है। कथाओं का विभाजन भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र के रूप में हो सकता है।[3] अर्थशास्त्र का अर्थ है जो धर्मशास्त्र के विपरीत हो। इसमें राजनीति, दैनिक क्रियाकलाप तथा जीवन के भौतिक मूल्यों का विवेचन होता है। नीति-शास्त्रों तथा धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित जीवन के उदात्त विचारों के संकलन का उद्देश्य अर्थशास्त्र का रहा है।

साधारणतः कथा के ग्रन्थ गद्य में पाये जाते हैं। इस प्रकार कथा का गद्य के साथ संबंध प्रारंभ से ही पाया जाता है। इस प्रवृत्ति का प्रारंभिक स्वरूप ऐतरेय ब्राह्मण[4] के कथात्मक पदों में देखा जा सकता है। कथाग्रन्थों की रचना के लिए कथा-संग्रहश्लोक की पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ। उनमें कथा के स्वरूप के ग्रहण करने की पूर्ण क्षमता है[5]। बाद में कथा ग्रन्थ इसी श्लोक के आधार पर काव्य की शैली में लिखे जाने लगे[6]।

कथानक के असाधारण विस्तार के लिये कवियों ने मूल कथा के अन्तर्गत अनेक लघुकथाओं को इस प्रकार पिरो दिया है कि कथा के विस्तार के साथ-साथ उनमें तादात्म्य स्थापित हो जाता है। अनेक कथाओं के सायुज्य का ताना-बाना बुनना सरल कार्य नहीं है[7]। यह निश्चय ही किसी अज्ञात पुरुष अथवा वर्ग की कल्पना होगी[8]। सीधे वचन के प्रति मोह महाकाव्य और कथा प्रधान काव्यों में पाया जाता है। इस मोह के प्रति आग्रह होमर के महाकाव्यों में भी वर्तमान है। कथा की इस प्रवृत्ति से

---

१. महाभाष्य, २, १, ३; ५, ३, १०६;
२. कीथ, वही, पृ० २४३.
३. वही, पृ० २४३.
४. ८, १३.
५. कीथ, वही, पृ० २४४.
६. जैसे कथासरित्सागर, बृहत्कथामञ्जरी, राजतरंगिणी, विक्रमांकदेवचरित इत्यादि।
७. कीथ, वही, पृ० २४४.
८. वही, पृ० २४४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



निस्सन्देह अनेकों नई कथाओं का सम्मिश्रण हुआ होगा।[1] यद्यपि ऐसी कथाओं का मूल प्रचलित कहानी ही रही होगी परन्तु कथा साहित्य में लाने के लिए कथा में अनेकों मूलभूत परिवर्तन किये होंगे। इस मत की पुष्टि का सब से सुन्दर उदाहरण बौद्ध जातक ग्रंथ है[2]।

विशाल जातक-कथा-साहित्य के संदर्भ में पंचतन्त्र को अग्रदूत कहना उचित नहीं है[3]। पंचतन्त्र के समानान्तर कोई रचना कभी रही होगी इसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। इसकी कथाएँ अधिकांशतः स्वतन्त्र प्रकृति[4] की हैं।

साहित्य का स्पष्ट वर्गीकरण, कि इसके पूर्वार्द्ध को अमुक और उत्तरार्द्ध को अमुक कहेंगे, नहीं किया जा सकता है। यह तथ्य संस्कृत साहित्य के साथ भी उतने ही सत्य के साथ लागू होता है। कथा और कहानी के भेद तथा इनके अर्थ-बोध की उचित संज्ञा आज भी नहीं बन पाई है। यद्यपि कथा के वंशजों की जातियों के विभाजन किये गये हैं परन्तु उनमें भी वे असफल ही रहे हैं[5]। आख्यायिका का अर्थ वर्णनात्मक कथा से है। कथा का प्रयोजन वार्त्तालाप, कहानी आदि से किया जा सकता है परन्तु कथा और आख्यायिका के मध्य विभाजन-रेखा सुगमता से नहीं खींची जा सकती है[6]।

संस्कृत के वर्णनात्मक साहित्य का धर्म अथवा मनोरंजन के अतिरिक्त काव्य के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत साहित्य की अन्य विधाओं में सब से अधिक कथाओं पर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया है[7]।

राज्य से संबंधित महाकाव्यों के अध्येता को किंचित् काल के लिए आभास हो सकता है कि भारतीयों में रचनात्मक बुद्धि का ह्रास है[8] परन्तु वर्णनात्मक साहित्य के तुलनात्मक अनुशीलन से इस अवधारणा का स्वतः आभास हो जाता है। कथा-साहित्य में कल्पनाओं का विशाल संग्रह रहता है। संस्कृत भाषा का कथा-साहित्य अक्षय कुबेर की निधि के समान अगाध भण्डार है जिसमें से अनेक आश्चर्यजनक कथाओं में से और कथायें निकलती जाती हैं[9]। अन्य काव्यात्मक विधाओं की भाँति संस्कृत का वर्णनात्मक साहित्य किसी परम्परित-धारणा की लीक को पीटता हुआ नहीं चलता है। इसमें विषयवस्तु, कथानक तथा छन्द आदि की मौलिकता होती है। धीरोदात्त राजा, सामन्तकुलीन पुरुष, धीर-वीर, सुन्दरी राजकुमारियाँ, पूजनीय सन्त, जादूगर, बदमाश, स्वार्थी ब्राह्मण, पाखण्डी

---

१. वही, पृ० २४५.
२. कीथ, वही, पृ० २४५.
३. कीथ, वही, पृ० २४५.
४. वही, पृ० २४५.
५. डे०, एस० के०, बु० स्कू० आ० ओ० स्ट०, लन्दन, जि० ३, पृ० ५०७.
६. कीथ, वही, पृ० २४५.
७. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३०२.
८. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३०२.
९. वही, पृ० ३०२

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



भिक्षु, देवदासी, वेश्यायें, तथा गणिकाओं से संबंधित कथायें संग्रहीत रहती हैं। संक्षेप में साहित्य किसी भी देशकाल की सांस्कृतिक पक्ष का दर्पण होता है। संस्कृत-साहित्य की किसी भी विधा का विश्व-साहित्य में इतना महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं है जितना कि उसके वर्णनात्मक साहित्य का[1]। भारत की कथायें एक देश से दूसरे देश में पर्यटकों द्वारा अनुवाद के माध्यम से व्यापारियों के साथ योरोप, एशिया और अफ्रीका आदि देशों में पहुँची हैं। इन स्थानों में प्रचलित अनेक कथाओं का मूल भारत में ही पाया जाता है। पहले विद्वानों की यह धारणा थी कि सभी कथाओं का उद्गम स्थान भारत है परंतु लोक-कथा के अध्ययन की प्रगति ने इस धारणा को पूर्ण मान्यता नहीं प्रदान की। किन्तु योरप, एशिया और अफ्रीका में प्रचलित अनेक कथाओं का उद्गम स्थान भारत है।[2]

संस्कृति और सभ्यता का महत्त्वपूर्ण अध्ययन कथात्मक साहित्य के माध्यम से हो सकता है। यद्यपि मूलरूप में ऐसे साहित्य का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन था परंतु इनमें तत्कालीन प्रचलित-अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र के मन्तव्य भी अंकित पाये जाते हैं।[3] उपाख्यान, ऐतिहासिक-कथा, कल्पित कथा तथा कथाएँ आदि-काल से मानव समाज में प्रचलित हैं। आंशिक रूप से कल्पित कथाओं, जिनकी जड़ आकाश बेल की भाँति प्राचीनता के पाताल में पायी जाती हैं; ने साहित्यालोचन में आधार का कार्य किया है। भारत की भाँति अन्यत्र भी प्राचीन काल से ही कथा-साहित्य को गम्भीर साहित्यिक कृति के रूप में विद्वानों ने नहीं माना है[4]। कथा और पौराणिक कहानियों में अन्तर है। पौराणिक कथाएँ कुछ समझाने के लिए अथवा धार्मिक आवश्यकता की पूर्ति के उद्देश्य से लिखी जाती थीं। स्वरूप की दृष्टि से ये कल्पित कथाओं की भाँति होती हैं। इस प्रकार कल्पित लोक कथाएँ जो जनमानस के मध्य मनोरंजन करती थीं, सर्वप्रथम प्राकृत भाषा[5] ने उन्हें अपने साहित्य में स्थान दिया। कहानियाँ बहुत पहले संस्कृत साहित्य में स्वतः उत्पन्न हुई थीं[6]। यह भी सम्भव है कि प्राकृत की जंतु-कथाएँ पूर्व प्रचलित जन्तु-कथाओं पर आधारित रही हैं। कल्पित कथाओं के प्रारंभ में कोई कहावत लिखी रहती है जिसकी सार्थकता कथा का वर्ण्य-विषय होता है। पाश्चात्य वर्णनात्मक साहित्य भारतीय साहित्य से अधिक मिलता है। अनेकों जर्मनी की कल्पित कथाओं का आरंभ भारत की कथाओं की भाँति किसी कहावत को लेकर हुआ है; उदाहरणार्थः—सागर पानी को दोषी ठहराता है क्योंकि यह तैर नहीं पाता है, यदि चूहा आकण्ठ भोजन किये हुये है तो उसे भोजन कड़वा

---

१. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३०२.
२. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३०३.
३. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३०३.
४. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३०३.
५. याकोबी जेडडीयमजी, ४८, ४१६.
६. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३०३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



लगता है[1]। भारतीय पौराणिक कल्पित गाथाओं की भाँति भारतीय पौराणिक काव्य की उत्पत्ति की प्राचीनता बहुत अधिक है।

पौराणिक साहित्य में गद्य और पद्य का सम्मिश्रण है। पद्य में छन्द-बद्ध कल्पित कथायें तथा कुछ मुहावरें रहते हैं। परवर्ती संस्कृत का वर्णनात्मक साहित्य पूर्णरूप से पद्य में लिखा जाने लगा। ऐसे कथा-ग्रंथों का सर्वथा अभाव है जो पूर्णरूप से गद्य में लिखे गये हों।

प्राचीनतम ऐतिहासिक कथाओं का साहित्य किसी विधा से संबंधित नहीं था। वैदिक वाङ्मय में कुछ कथात्मक साहित्य अवश्य मिलता है परंतु वह काल्पनिक है। ये वास्तविक कथाओं की कोटि में नहीं रक्खे जा सकते हैं[2]। उपनिषद् की कुछ जन्तु-कथाएँ भी इसी कोटि की हैं[3]। प्राचीनतम कल्पित कथाएँ महाभारत में पाई जाती हैं[4]। द्वितीय शताब्दी ई० पू० में कल्पित कथाओं के प्रचलन का ज्ञान भरहुत के स्तूप पर अंकित मूर्तिकला से हो जाता है[5]।

भारतीय साहित्य की वर्णनात्मक विधा को निम्नलिखित भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

(१) लेखक भारी संख्या में लोकप्रिय कथाओं तथा ऐतिहासिक कथाओं के विषय में ज्ञान रखता है जो कि नैतिक अथवा धार्मिक उद्देश्य से अनुप्राणित हैं। ये मौखिक रूप से प्रचलित थीं। केवल संस्कृत भाषा में ही नहीं वरन् सभी लोकप्रिय भाषाओं में ये पाई जाती हैं।

(२) वे कथाएँ जो कि धार्मिक उत्थान एवं प्रसार के लिए लिखी गई हैं अथवा संग्रहीत की गई हैं। इस श्रेणी की कथाओं में जातक तथा अन्य बौद्ध और जैनों के कथा-साहित्य के ग्रन्थ आते हैं। मुख्यतः जनता की संतुष्टि के निमित्त इनकी रचना की जाती थी।

(३) संस्कृत के वे कथा-ग्रन्थ जिनका उद्देश्य राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना था। इस कोटि में पञ्चतन्त्र तथा उससे निश्रित अन्य ग्रन्थ आते हैं।

---

१. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३०३ पा० टि० ३. २. वही, पृ० ३०४.
३. छान्दोग्योपनिषद्, ४,१;५;७;८. ४. महाभारत, ८,३९ और ४१.
संभवतः महाभारत १२, १–१३० में पंचतंत्र का प्रारंभिक स्वरूप वर्तमान है,
विन्टरनित्स, वही, पृ० ३०५ पा० टि० २.
५. अग्रवाल, वासुदेव शरण, 'स्टडीज़ इन इण्डियन आर्ट', जिल्द १, पृ० ७६–९४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



(४) वे कथाएँ जिनका उद्देश्य मनोरंजन होता था। इस प्रकार की कथाएँ पहले प्राकृत भाषा में लिखी जाती थीं तथा कालान्तर में संस्कृत भाषा में; उदाहरण स्वरूप–बृहत्कथा, वैताल-पंचविशंति, बृहत्कथा-मञ्जरी, कथा-सरित्सागर इत्यादि।

(५) संस्कृत साहित्य के उपन्यासों में वासवदत्ता, दशकुमारचरित एवं कादम्बरी का प्रमुख स्थान है।

अन्तिम तीन विभेद संकलित नहीं वरन् रचित हैं।

वर्णनात्मक साहित्य में कथाएँ, कल्पित कथाएँ, ऐतिहासिक कथाएँ, पौराणिक कथाएँ, उपाख्यान आदि का समन्वय रहता है। कुछ मानवेतर शक्तियों की भी कथाएँ रहती हैं—जिनमें परी, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर प्रमुख हैं। मानव-सम दैवी जन्तुओं का भी उल्लेख प्राप्य है। वर्णनात्मक साहित्य में कल्पित कथाओं की प्रधानता रहती है।

संस्कृत में आख्यायिका, अंग्रेजी के 'एनेकडोट' को कहते हैं। हिन्दी में इसे लघु-कथा की संज्ञा प्रदान की जाती है। कथाओं को अंग्रेजी में 'टेल' कहते हैं जिसका उद्देश्य मूलतः मनोरंजन होता है। ये वर्णनात्मक वार्तालाप की शैली में लिखी होती हैं। संस्कृत के काव्य-शास्त्र में इन दो पदों के विभेद की चर्चा की गई है। इनका संस्कृत साहित्य में अलग अर्थों के साथ प्रयोग होता है। इस प्रश्न पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है[1]।

---

१. काव्यादर्श, १,२३–२८.

ध्वन्यालोक, ३–७.

पतञ्जलि ( पाणिनि पर ४,३,८७ वृत १ )। आख्यायिका में उन ग्रन्थों के उदाहरण प्राप्य हैं जो उपन्यास हैं जैसे सुमनोत्तरा, भैमरथी। बाण, अपने ग्रन्थ कादम्बरी को कथा कहता है और हर्षचरित को आख्यायिका, पंचतंत्र में छोटी-छोटी कहानियों को भी कथा कहा गया है। कथासरित्सागर में कहानियों को कथा ही कहा गया है परन्तु आख्यायिका शब्द से भी अभिहित किया गया है। क्षेमेन्द्र के अनुसार लम्बी कहानी को कथा और लघु को आख्यायिका कहते हैं ( द्रष्टव्य एस० के० डे०, बुलेटिन आफ दि स्कूल आफ ओरियण्टल स्टडीज, लन्दन, इन्स्टीट्यूशन, पृ० ३०७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अध्याय ३

# गुणाढ्य और उनकी बृहत्कथा

## परिच्छेद (क) : बृहत्कथा का काल-निर्धारण

बृहत्कथा का काल-निर्धारण वास्तव में भारतीय इतिहास का विचारणीय प्रश्न है—आज भी विद्वानों के मध्य यह जटिल समस्या के रूप में विद्यमान है। बृहत्कथा के लुप्त हो जाने के कारण इसके समय के निर्धारण में व्यावहारिक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। अधिकारी विद्वानों ने इस प्रश्न के अलग-अलग उत्तर दिये हैं। बेवर ने दुविधा के साथ इस ग्रंथ की रचना-तिथि द्वितीय शताब्दी ईसवी निर्धारित की है[1]। बूलर ने अपने काश्मीर के बृहत् विवरण में बृहत्कथा का समय ईसा की प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी निर्दिष्ट किया है[2]। प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान् सिलवां लेवी ने अपने ग्रंथ थियेटर इंडियेन ( १८९१ ) में इसे ईसा के प्रथम और द्वितीय शताब्दी के निकट की रचना माना है[3]। १९०५ ई० में इन्होंने अपने मत का संशोधन करते हुए इसको द्वितीय शताब्दी का ग्रंथ निर्दिष्ट किया है[4]। विन्सेन्ट स्मिथ ने आन्ध्र के इतिहास और मुद्राओं विषयक अपने लेख में यह मत प्रतिपादित किया है कि पैशाची बोली में लिखी हुई मूल बृहत्कथा सप्तशतक तथा व्याकरण ग्रंथ कातन्त्र की रचना ६० अथवा ७० ई० के बीच हुई होगी[5]।

गुणाढ्य को जिस महाग्रन्थ की रचना का श्रेय प्राप्त हुआ है उसकी तिथि के निर्धारण के विषय में विद्वानों की परिकल्पनाएँ पाँच शतकों के अन्तर्गत ( प्रथम से लेकर पांचवीं शताब्दी तक ) रेंगती हुई प्रतीत होती हैं।

बृहत्कथा की तिथि की अपर सीमा का निर्धारण उतना जटिल नहीं है जितना कि उसकी पूर्ववर्ती सीमा का। बाण ने अपने ग्रन्थ हर्षचरित्र में बृहत्कथा का उल्लेख किया है[6]। उसका समय ईसा की सातवीं शती का प्रारंभिक चरण है। सुबन्धु ने अपने

---

१. इण्डिसे लिटरातुरगेशिख्ते ( १८७६ ), पृ० २२९, पा० टि०, २२४.

२. इ० ए०, जि० १.

३. पृ० ३१७ तथा डा० पुशाल्कर, 'विक्रमादित्य इन दि बृहत्कथा', पृ० २६२.
डा० कुनहन राजा प्रेजन्टेशन वाल्यूम, ( १९४६ ); डा० सरकार, ए० भ० ओ० रि० इ०, जि० १२, पृ० ३१०–११.

४. ली नेपाल, २, ६३.

५. जेड० डी० एम० जी०, ५६, ६६०.

६. समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना। हरलीलेव लोकस्य विस्मयाय बृहत्कथा ॥
कादम्बरी ( पेटरसन ), पृ० ५१–२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



ग्रन्थ वासवदत्ता में बृहत्कथा का उल्लेख किया है[1]। सुबन्धु बाण का पूर्ववर्ती था। इसका समय छठी शताब्दी ई० है। स्पेयर के अनुसार बृहत्कथा रोमक-सम्राट् जस्टीनियन ( ५२७–५६५ ई० ) की समकालीन रचना है[2]। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बृहत्कथा छठी शताब्दी ईसवी में अवश्य विद्यमान थी। इसे ही बृहत्कथा के रचना-काल की उत्तरवर्ती तिथि स्वीकार की जानी चाहिए।

बृहत्कथा के रचनाकाल की पूर्ववर्ती सीमा के निर्धारण का प्रश्न कठिन है। ख्रीष्टाब्द के प्रारंभिक चरणों के आस-पास इसकी आद्य तिथि निर्धारित की जा सकती है। पाणिनि और वररुचि ( कात्यायन ) से मूल बृहत्कथा निस्सन्देह शताब्दियों बाद की कृति है और बृहत्कथामञ्जरी में इन दोनों व्याकरणों का उल्लेख है[3]। कथा के प्रारम्भ में ही इनसे संबन्धित कथाओं के संकलन से यह सम्भावना अवश्य की जा सकती है कि पाणिनी और वररुचि ( कात्यायन ) गुणाढ्य से शतियों पूर्व रहे होंगे। शिव के गण पुष्पदन्त ने योग द्वारा अलक्षित रूप से अन्दर जाकर सात विद्याधरों का अद्भुत चरित्र सुना[4]। पुष्पदन्त की पत्नी तथा पार्वती की सखी जया ने पति (पुष्पदन्त) से सुने हुए सात विद्याधरों के चरित्र को पार्वती को जा सुनाया। यह सुनकर पार्वती ने क्रुद्ध होकर पुष्पदन्त को शाप दिया कि वह मनुष्य-योनि में उत्पन्न हो। बृहत्कथा की उत्तरकालीन वाचनाओं के कथापीठ के आधार पर यह निष्कर्ष सम्पादित किया जा सकता है कि गुणाढ्य के समय तक वररुचि के वास्तविक व्यक्तित्व का अस्तित्व अनुश्रुत हो गया था। इन परिप्रेक्ष्यों में गुणाढ्य के काल को ख्रीष्ट की प्रथम शती से पूर्व नहीं कहा जा सकता। विन्सेन्ट स्मिथ ने गुणाढ्य की तिथि को प्रथम शती ईसवी के तृतीय चरण में परिसीमित किया है[5]। स्मिथ ने इस तिथि के निर्धारण में कलिंग के महाराज खारवेल के उदयगिरि ( हाथीगुम्फा ) के शिलालेख की सहायता ली है[6]। अपने शासन के द्वितीय वर्ष ( दुतिये च वसे ) में उसने अपनी चतुरंगिणी सेना के माध्यम से पश्चिम दिशा में शातकर्णि को पराजित किया था ( अचितायिता सातकंनि पछिम दिसं )। सुलभ अभिलेखों तथा साहित्यिक साक्ष्यों के विवरणों के आधार पर यह उल्लेख किया जा सकता है कि आन्ध्र नरेश सिमुक, शिसुक अथवा सिन्धुक ने सुशर्मा काण्वायन को पराजित कर रंगमंच से शुङ्ग राजवंश का उन्मूलन कर दिया।

---

१. बृहत्कथालम्बैरिव शालभञ्जिकानिवहे।—वासवदत्ता।

२. जे० एस० स्पेयर, स्टडीज एबाउट दि कथासरित्सागर, पृ० ५०.

३. क० स० सा०, १, ४९-५७; २, २५-६; १, २५; ६,८७.
बृ० क० म०, १,७०; २,११; २,८. ४. वही, १,५७.

५. जेड० डी० एम० जी०, ५६, ६६०.

६. ए० इ०, २०, ( १९३० )। ज० बि० उ० रि० सो०, १९१८ और १९२८.

७. बृ० क० म०, ३,१; ३,१९, ३३, ३४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



प्रकार यह कहा जा सकता है कि शातकर्णि राजवंश का अभ्युदय प्रथम शती ई० पू० के निकट हुआ होगा और इसका राज्य तृतीय शताब्दी के मध्य तक अवश्य रहा होगा। आन्ध्र वंश के संस्थापन की तिथि भारतीय राजनीतिक इतिहास की विवाद-ग्रस्त समस्या है। उनके शासकीय अभिलेखों तथा तत्कालीन साहित्य से पता चलता है कि सातवाहन-नरेश प्राकृत-भाषा के महान् संरक्षक थे। परम्परा के अनुसार एक सातवाहन नरेश हाल प्राकृत काव्य सतसई (शप्तशतक) का संकलन-कर्ता था। गुणाढ्य के महाग्रन्थ बृहत्कथा की रचना का श्रेय भी प्राकृत संरक्षक सातवाहन नृपों के काल को है। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि आन्ध्र-सातवाहन नृपों ने ब्राह्मण होते हुए भी अपने शासकीय अभिलेखों को प्राकृत भाषा में ही उत्कीर्ण करवाया है। ऐसा संभवतः उन्होंने इस भाषा की लोकप्रियता को ध्यान में रखकर किया होगा। संस्कृत भाषा पर प्राकृत का पर्याप्त प्रभाव इस युग में परिलक्षित होता है। इसी समय शर्ववर्मा ने कातन्त्र की रचना आन्ध्र-नृपों के हित के लिए की थी क्योंकि आन्ध्र-नृपों को संस्कृत का ज्ञान न था[1], इस प्रकार विन्सेण्ट स्मिथ हाल की सतसई, गुणाढ्य की बृहत्कथा तथा शर्ववर्मा के कातन्त्र को समकालीन रचना मानते हैं और इनकी रचना के काल को ६० ई० से ७० ई० के मध्य निर्धारित करते हैं[2]।

यद्यपि विन्सेण्ट स्मिथ ने बृहत्कथा को सातवाहन युग की रचना के रूप में स्वीकार किया है तथापि उनके उपर्युक्त मत से पूर्णतः सहमत होना दुरूह हो जाता है। यह निस्सन्देह सत्य है कि हाल की सतसई बाण से (७०० ई०) पूर्व की रचना है क्योंकि बाण ने हर्षचरित के आमुख में इस काव्य-संकलन की प्रशस्ति का गान किया है[3]।

गुणाढ्य की बृहत्कथा प्राकृत भाषा की पैशाची बोली में लिखी गई थी[4]। प्रसिद्ध भाषाविद् ग्रियर्सन के अनुसार पैशाची भाषा विन्ध्य क्षेत्र तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं में प्रचलित थी[5]। प्राप्त विवरणों के आधार पर बृहत्कथा पैशाची भाषा की शिरोमणि कृति मानी जा सकती है। इस ग्रन्थ की विशिष्टताओं की पृष्ठभूमि में यह संभावना व्यक्त की जा सकती है कि संस्कृत भाषा के साहित्य की भाँति पैशाची भाषा का भी समृद्ध साहित्य रहा होगा। वासिलज्यू ने अपनी बौद्ध धर्म-संबंधी कृति में वैभाषिकों और स्थविरों को पैशाची से सुपरिचित बताया है[6]।

बृहत्कथा की उत्तरकालीन वाचनाओं के कथापीठ लम्बक से आन्ध्र-नृपों के समय के विषय में कुछ प्रकाश पड़ता है। हाल सम्भवतः रोम के शासक

१. क० स० सा०, ६, १६४.
२. जेड० डी० एम० जी०, ५६, ६६०.
३. हर्षचरित, प्रस्तावना, ६.
४. क० स० सा०, १, १०; ७, २६–७, २६, ३३, ३५; ८१–२, १५, ३०.
५. बृ० क० म०, ३, ५१, ५५.
६. वासिलज्यू, बुद्धिज्म, पृ० २९५.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



नीरी ( ५४-६८ ई० ) का समकालीन था। गुणाढ्य की बृहत्कथा में उल्लिखित नरेश सातवाहन प्रतिष्ठान का शासक था। स्मिथ ने काल्पनिक सातवाहन जो सिंहनी के गर्भ से उत्पन्न माना जाता है तथा ऐतिहासिक सातवाहन में विभेद किया है[1]। सातवाहन की काल्पनिक और ऐतिहासिक वंशपरम्परा में स्वयं यह विषमता पायी जाती है[2]। इस तथ्य के आलोक में सिलवालेवी ने गुणाढ्य की तिथि तृतीय शती ईसवी निर्धारित की है[3]। कथासरित्सागर के कथापीठ से गुणाढ्य और सातवाहन के संबंध के विषय में प्रकाश पड़ता है[4]। इसके अतिरिक्त कतिपय ऐसे अन्य साक्ष्य भी हैं जिनको विद्वानों ने लगभग अनदेखा ही छोड़ दिया है। उनके निरीक्षण से बृहत्कथा के निर्माण-काल के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं जिनके आधार पर बूलर के मत से सहमत नहीं हुआ जा सकता।

बृहत्कथा की उत्तर-कालीन वाचनाओं में प्रसिद्ध बौद्ध चिन्तक नागार्जुन के विषय में एक चमत्कारी कथा का संकलन है[5]। उसमें इन्हें बोधिसत्त्व के अंश से उत्पन्न परम दयालु, दानी और विज्ञानवेत्ता बताया गया है। कथासरित्सागर में उसका उल्लेख परम बौद्ध के रूप किया गया है। नागार्जुन कुषाण-काल का बौद्ध दार्शनिक था। अतः कथासरित्सागर तथा बृहत्कथामञ्जरी का नागार्जुन-संबंधी उल्लेख गुणाढ्य की बृहत्कथा को सातवाहन से बाद की रचना होने की ओर इंगित करता है[6]। प्रसिद्ध तिब्बती बौद्ध इतिहासकार तारानाथ नागार्जुन को कुषाण कनिष्क का समकालीन बताता है क्योंकि चतुर्थ बौद्ध संगीति में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान था। इस प्रकार बृहत्कथा की तिथि प्रथम शताब्दी ई० के उपरान्त की निर्धारित की जा सकती है।

स्पेयर ने ताम्बूल सेवन की परम्परा के विवरण के आधार पर बृहत्कथा की तिथि को निश्चित करने की चेष्टा की है। आलोच्य ग्रन्थ में ताम्बूल सेवन का उल्लेख प्राप्य है[7]। कर्न के अनुसार ताम्बूल सेवन की प्रथा चरक और सुश्रुत के समय अवश्य रही होगी। चरक कनिष्क का शल्यचिकित्सक भी था। ताम्बूल का उल्लेख छठी शती ईसवी के लेखकों ने किया है। चाइल्डर्स ने महावंश में ताम्बूल-संबंधी

---

१. जेड० डी० एम० जी०, ५६, ६६०. २. मत्स्यपुराण, अ० २७३-९.

३. ली नेपाल, २, ६३.

४. क० स० सा०, ६, ९, ८८-१०६; बृ० क० म०, १४; क० स० सा०; ४१, १०.
डा० सरकार, ए० भ० ओ० रि० इ०, जि० १२, पृ० ३१०-११.

५. तस्य नागार्जुनो नाम बोधिसत्त्वांशसम्भवः। दयालुर्दानशीलश्च मन्त्री विज्ञानवानभूत्॥
क० स० सा०, ४१, १०-६०. ६. मैनुअल आफ इण्डियन बुद्धिज्म, पृ० ११८.

७. क० स० सा०, जि० १, पृ० १००, जि० ६, पृ० २३, जि० ६, पृ० १७४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। उसके अनुसार 'ताम्बूल' वस्तुतः पाली शब्द है। भोजनोपरान्त ताम्बूल के सेवन की परम्परा अवदानशतक और अवदानमाला के समय अवश्य लोकप्रिय थी। इन उल्लेखों के आधार पर स्पेयर के अनुसार बृहत्कथा किसी भी संदर्भ में पाँचवी शताब्दी के पूर्व की रचना नहीं है[1]। इस मत की संपुष्टि बाण के उल्लेख से भी होती है। बाण ने संस्कृत और प्राकृत भाषा के ग्रन्थों की प्रशंसा की है। बाण का यह स्वर कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' की प्रस्तावना का स्मरण दिलाता है जिसमें किशोर कालिदास ने साहित्यिक क्षेत्र में श्रीगणेश की दुहाई देते हुए अपनी कृति के पाठकों से सम्यक् दृष्टि से ग्रन्थ के मूल्यांकन की याचना की है[2]। बाण ने यहाँ संभवतः प्राचीन उद्भट साहित्यकारों की प्रशस्ति नहीं गाई है। उसके इस विवरण से ऐसा आभास होता है कि उसने दो शतक पूर्व के अधिकारी साहित्यकारों की चर्चा की है। उसने न तो वाल्मीकि और न व्यास का ही उल्लेख किया है। बाण की उल्लेख-पद्धति से यह कहा जा सकता है कि यह कृति उसके समय से बहुत अधिक पूर्व की न रही होगी। इस प्रकार स्पेयर ने बृहत्कथा के निर्माणकाल को पाँच शताब्दी ईसवी में निर्धारित करने की चेष्टा की है। संभवतः मुद्राराक्षस के भरत वाक्य का पार्थिव गुप्तवंशीय नरेश चन्द्रगुप्त था। मुद्राराक्षस में उसका उल्लेख करते हुए इसे म्लेच्छों के भयानक आक्रमण से पीड़ित वसुधा का संरक्षक कहा गया है[3]। यह वर्णन संभवतः चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के लिए आया है। त्रिष्टुभ् छन्द का प्रयोग मुद्राराक्षस तथा तंत्राख्यायिका में हुआ है। नाट्य-शिल्प की दृष्टि से ये अपने कोटि के खरे ग्रन्थ हैं। शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से इनमें प्राचीनता परिलक्षित होती है, यथा चतुर्थ अंक के जालसाजी वाले पत्र में 'आश्रय' शब्द का प्रयोग शरीर के लिए हुआ है। 'स्वाश्रयविनाशेन' शब्द का प्रयोग केवल संस्कृत में प्रथम शती ईसवी के बौद्ध ग्रन्थों में हुआ है। 'कलत्र' शब्द का प्रयोग प्रथम अंक में हुआ है[4]। यह दारा, जाया तथा भार्या के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। यहाँ इसका प्रयोग परिवार के रूप में हुआ है। संभवतः इस शब्द का प्रयोग प्राचीन समय में परिवार के रूप में होता था। इस ग्रन्थ की प्राचीनता में एक नवीन प्रमाण-प्रस्तुत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस के कथाशिल्प को बृहत्कथा से लिया होगा[5]। बृहत्कथा की उत्तरकालीन काश्मीरी वाचनाओं, बृहत्कथामञ्जरी एवं कथासरित्सागर में

---

१ स्पेयर, वही, पृ० ५०.

२. सी० कैपलर, आब्जरवेशन्स उन्दकालिदासे मालविकाग्निमित्रम्, १८५८,
द्रष्टव्य : एस० एन० दास गुप्त, ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ७५०.

३. मुद्राराक्षस, अंक ४. ४. अंक ३, १०.

५. सिलवाँलेवी, ल त्रियात इण्डिया, पृ० २२६, स्पेयर, वही, पृ० ५४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



चन्द्रगुप्त के द्वारा नन्दों के उन्मूलन की कथा आती है। विशाखदत्त के मुद्राराक्षस में यह कथा सविस्तार वर्णित है[१]।

पाटलिपुत्र की स्थापना-संबंधी प्राचीन ऐतिहासिक कथा को संभवतः गुणाढ्य के समय में विस्तृत कर दिया गया था। पुत्रक अपनी उत्कंठिता वधू पाटली, जो आकर्षिका नामक नगरी के राजा की पुत्री थी; के साथ एक बार स्त्रैण संबंध के समय पकड़ा गया था परंतु मायावी खड़ाऊँ के बल से पुत्रक पाटली को गोद में उठाकर आकाश-मार्ग से निकल गया। तदनन्तर गंगातट के समीप आकाश-मार्ग से उतर कर पुत्रक ने थकी हुई पाटली को मायावी पात्र के प्रभाव से मिलने वाले विविध भोजन से प्रसन्न किया। पाटली पुत्रक के प्रभाव को देखकर प्रार्थना की और उसके प्रार्थनानुसार पुत्रक ने चामत्कारिक यष्टि से चतुरंगिणी सेना-सहित भूमि पर एक नगर का मानचित्र बनाया। इसकी योजना के अनुसार सुमापित रम्य नगर में वह पुत्रक राजा के रूप में आसीन हुआ और अपने प्रभाव से श्वसुर ( पाटली के पिता ) को वश में करके समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी का शासक बन गया। इस प्रकार यह दिव्य नगर पुरवासियों-सहित माया से रचा गया, जो पाटलिपुत्र नाम से लक्ष्मी और सरस्वती का क्षेत्र हुआ[२]। पाटलिपुत्र के निर्माण की यही कथा क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी के भी संग्रहीत है[३]। आख्यानात्मक वर्णन ( यथा—कालिदास ) के अनुसार यह नगरी रघु और अज के समय में भी थी।

गुणाढ्य की बृहत्कथा की उत्तरकालीन वाचना कथासरित्सागर में दीनार शब्द का प्रयोग निस्सन्देह कथा की प्राचीनता को प्रमाणित करने में सहायक है[४]। दीनार शब्द का उल्लेख पाँचवी सदी ई० के अभिलेखों में हुआ है[५]। कथासरित्सागर में वीरवर का दैनिक वेतन पाँच सौ दीनार थी। क्षेमेन्द्र ने इसकी दैनिक आय का धन ( रुपयों ) में वर्णन किया है[६]। इस विवरण-विभेद से अनुमान लगाया जा सकता है कि गुणाढ्य की मूल बृहत्कथा में दीनार शब्द में ही उल्लेख होंगे। इसी कारण क्षेमेन्द्र ने अपने समय की प्रचलित मुद्रा में उसके दैनिक वेतन का उल्लेख किया है अन्यथा दीनार को रुपयों में परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं थी। अनेक उपलब्ध विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गुणाढ्य की मूल पैशाची बृहत्कथा की संस्कृत की सच्ची वाचना सोमदेव का कथासरित्सागर है[७]। सोमदेव

---

१. मुद्राराक्षस, वही.

२. क० स० सा०, १७, २५, ५७, ६४.

३. बृ० क० म०, पृ० ७९,१३६, पृ० ५४१,१२.

४. क० स० सा०, १७, ६४.

५. अ० रा० ए० सी०, १९०६, ८९१.

६. बृ० क० म०, १५, १८९.

७. डा० पुशाल्कर, वही, पृ० २६२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



ने मूल बृहत्कथा के तत्त्वों को अपने समय की परिस्थिति के अनुसार तोड़ा-मरोड़ा नहीं है। उसने मूल का निर्वाह सच्चाई के साथ किया है[1]।

कथासरित्सार में सोमदेव ने ताजिकों का उल्लेख किया है[2]। क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी इस विषय पर मौन है। कथासरित्सागर में तुरुष्क और चीनी रेशमी वस्त्र ( चीनांशुक ) का वर्णन प्राप्य है जिन्होंने निश्चयदत्त और उसके मित्रों को बन्दी बना लिया था। यहाँ भी सोमदेव अपने मूल से ही सान्निध्य स्थापित किये हुए प्रतीत होते हैं। तुरुष्क छठी शताब्दी ईसवी में भारतीय इतिहास के रंगमंच पर अवतरित हुये थे। भारत से ईरान के सम्बन्ध की प्राचीनता निर्विवाद रूप से बहुत अधिक है[3]। यह सम्भावना उपलब्ध विवरणों के आधार पर व्यक्त की जा सकती है कि चौथी और पाँचवीं शताब्दी ईसवी में फ़ारस की पूर्वी एवं उत्तरी सीमाओं तक वे पहुँच गये थे[4]। इस संदर्भ में यह आश्चर्यजनक नहीं है कि पाँच सौ ईसवी के भारतीय ग्रन्थों में तुरुष्कों का उल्लेख नहीं हैं। इस काल तक भारत का व्यापार सर्वत्र फैल गया था। जल और स्थल मार्ग के द्वारा हमारे देश का वाणिज्य संपर्क योरोप तथा मध्य एशिया के साथ था। रोम तथा सीरिया होकर दक्षिणी यूरोप तक अथवा आमदरिया और कैसपियन सागर होकर मध्य यूरोप तक भारतीय सार्थवाह आया करते थे। अरब, बेबीलोनिया, मध्य एशिया तक व्यापारी सामान लेकर आया-जाया करते थे। तत्कालीन साहित्य एवं मुद्राएँ उस काल के सामुद्रिक व्यापार और द्वीपान्तर गमन के विषय में महत्त्वपूर्ण सूचना प्रदान करते हैं। सार्थवाहों के शकट एवं प्रवहण सदा भूमि को अपने पैरों से खूँदते हुए लम्बी यात्राएँ करते थे तथा पूर्व एवं पश्चिम के समुद्रों में उनके पोत अहर्निश गतिशील थे। ऐसे सार्थवाहों के व्यापार हेतु देशान्तर-भ्रमण के व्यसन ने भारत को लक्ष्मीवान् ही नहीं बनाया प्रत्युत उससे हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का प्रसार भी सम्पन्न हुआ। इस प्रकार के संपर्क से कुछ विदेशी सांस्कृतिक तत्त्व भी यहाँ पर आये। ऐसी परिस्थिति में भारतीय विदेशी जातियों और उनकी रीति-प्रथाओं से यत्किञ्चित परिचित न हों यह सम्भव नहीं।

कथासरित्सागर की एक कथा के अनुसार नगरों, ग्रामों, जंगलों और नदियों को पारकर कोई वैश्य म्लेच्छाकीर्ण उत्तर दिशा की एक नगरी में पहुँचा। वहाँ पर

---

१. डा० एमीनियन, जर्नल ऑफ़ अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी, जि० ५३, पृ० १४१.
इ० ए०, जि० १, पृ० ३१९. इ० क०, जि० १, पृ० २१४.
लाकोत, ऐसई स्यू गुणाढ्य एट ला बृहत्कथा ( पेरिस, १९०८ ), पृ० ९१. और आगे।
पेन्जर, दी ओसन, ऑफ़ स्टोरी, जि० ९, पृ० ११५. इ० हि० क्वा०, १९३८.

२. क० स० सा०, ३४, ३७.

३. हेरीडोतुस, १, १५३, १७७. किरियोपेदिया, १, १, ४; ६, २, १–११.

४. वाकाटक-गुप्त ऐज, पृ० १९४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



वह अन्य सहयात्रियों के साथ ताजिक ( तुरुष्क ) लोगों से पकड़ा जाकर दूसरे ताजिक के हाथ दामों ( द्रम ) पर बेंच दिया गया। क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी में इस घटना का उल्लेख बहुत संक्षिप्त रूप में किया गया है। अतएव इस ग्रन्थ के आधार पर तुरुष्कों के विषय में विशेष धारणाएँ नहीं बनाई जा सकती हैं। कल्हण की राजतरंगिणी में कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव को तुरुष्क कहा गया है। इस ग्रन्थ में तुरुष्क को जम्बूद्वीप के उत्तर दिशा की ओर का निर्दिष्ट किया गया है। इन सभी विवरणों के द्वारा स्पेयर महोदय ने गुणाढ्य को चतुर्थ शती ईसवी से पूर्व का नहीं मानते हैं यद्यपि इनका मत प्रभावोत्पादक है तथापि इससे सहमत होने में कतिपय बाधाएँ उपस्थित होती हैं। सुबन्धु, दंडिन और बाण के पूर्व बृहत्कथा के विद्यमान होने की सम्भावना पर किंचित मात्र भी सन्देह नहीं है। अतः गुणाढ्य पाँच सौ ईसवी के उपरान्त का नहीं है।

आन्ध्रों ने प्रायः सभी अभिलेखों में अपने को "सातवाहन" की संज्ञा दी है। यही सातवाहन साहित्य में शालिवाहन के नाम से विख्यात है। इनके प्राचीनतम अभिलेखों में "कृष्ण" ( कन्ह ) सातवाहन-कुल के कहे गये हैं। अभिलेखों के आधार पर ज्ञात होता है कि प्रथम शती ई० पू० में उनका मूल निवास-स्थान महाराष्ट्र में था। यज्ञश्री शातकर्णि की कुछ मुद्राओं पर नौका का चित्र पाया जाता है। जिसमें एक मछली और एक पर्यङ्क चित्रित है। इससे प्रमाणित होता है कि यज्ञश्री शातकर्णि ने नौ सेना और समुद्री व्यापार की अभिवृद्धि की थी। बृहत्कथा की वाचनाओं में देशान्तर-भ्रमण, समुद्री व्यापार और द्वीपान्तर-गमन की सूचना मिलती है। इस प्रकार की सूचनाएँ यज्ञश्री शातकर्णि की मुद्राओं से भी प्राप्त होती हैं। सम्भवतः गुणाढ्य को आश्रय एवं प्रोत्साहन यज्ञश्री शातकर्णि ने प्रदान किया था। आन्ध्र-सातवाहन युग में स्थल-जल मार्गों पर अनेक सार्थवाह, पोताधिपति एवं सांयांत्रिक व्यापारी रात-दिन चहल-पहल रखते थे। टिमटिमाते तारों से सुशोभित हुई लम्बी रातों में उनके मनोविनोद के लिए अनेक कहानियों की रचना स्वाभाविक थी, जिनमें उन्हीं के देशान्तर-भ्रमण से उत्पन्न अनुभवों का अमृत निचोड़ा जाता था। पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक गाँवों और नगरों की तिल-तिल भूमि एवं पहाड़ी दर्रों, जंगलों एवं अन्य दुर्गम प्रदेशों की विकट यात्रा करते हुए उनके सार्थ सदा गतिशील रहते थे। इसी प्रकार उनके जलयान भी द्वीपान्तर-यात्रा किया करते थे। उन्हीं उद्यमी सार्थों और नाविकों के अनुभवों की बहुमुखी सामग्री को गुणाढ्य ने अपनी विलक्षण-प्रतिभा से बृहत्कथा के साँचे में ढाल दिया था। गुणाढ्य के विस्तृत भौगोलिक क्षितिज में पूर्व के महोदधि और पश्चिम के रत्नाकर दोनों पार के भूखण्डों की अनेक कथाएँ सम्मिलित थीं जिसकी सूचना बृहत्कथा की उत्तरकालीन वाचनाओं से प्राप्त होती है। बृहत्कथा के रूप में गुणाढ्य ने जो साहित्यिक सत्र ख्रीष्ट के प्रारंभिक चरणों के लगभग आरम्भ किया था, वह वाङ्मय का सहस्त्र संवत्सर सत्र बन गया और संस्कृत-प्राकृत के कई प्रतिभाशाली लेखकों ने इसमें भाग लिया। इन ग्रन्थकारों की रचनाओं में बुधस्वामी-कृत

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



बृहत्कथा श्लोक संग्रह ( प्राकृत-संस्करण जैन परम्परा में आने वाले ग्रन्थ ) संघदास-गणि-प्रणीत वसुदेव हिण्डी, धर्मदासगणि-कृत मध्यम वसुदेव हिण्डी, हेमचन्द्र के त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित्र, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी तथा सोमदेव का कथासरित्सागर उल्लेखनीय है।

**परिच्छेद (ख) : गुणाढ्य का मूल निवास स्थान**

भारतीय साहित्य में गुणाढ्य की बृहत्कथा की क्षतिपूर्ति स्यात् कभी नहीं की जा सकती। इस महान् कवि की प्रतिभा किसी भी संदर्भ में व्यास और वाल्मीकि से कम नहीं थी[1]। मूल-ग्रन्थ के अभाव में गुणाढ्य का पूर्ण परिचय अद्यावधि रूप में उभरने से रह गया है। पैशाची के इस महाकवि के मूल निवास-स्थान के प्रश्न का यथातथ्य निर्धारण आज भी विवादास्पद है[2]।

भारतीय वाङ्मय के प्रतिष्ठित कवियों ने गुणाढ्य का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है। गोवर्द्धन[3], सुबन्धु[4], बाण[5], हाल[6], उद्योतन सूरी[7], धनिक[8], भोज[9], सोमदेव सूरी[10], क्षेमेन्द्र[11], धनपाल[12], हेमचन्द्र[13], सोमदेव[14] और त्रिविक्रम भट्ट[15] ने गुणाढ्य तथा उसके ग्रन्थ बृहत्कथा का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है। महत्त्वपूर्ण साहित्यिक साक्ष्यों के अतिरिक्त कतिपय अभिलेखों में भी गुणाढ्य का उल्लेख हुआ है। कोलार[16] और कम्बुज[17] के अभिलेख में उसे 'प्राकृत-प्रिय' कहा गया है।

---

१. लाकोत, एसे स्युगुणाढ्य एटला बृहत्कथा ( पेरिस, १९०८ ), पृ० १०

२. विशेष विवरण के लिए देखें अध्याय तीन, अनुच्छेद "क"

३. गोवर्द्धन, सप्तशती ( काव्यमाला सिरीज़ ) ६९६

४. बृहत्कथालम्बेसरिव सालमञ्जिकानिवहैः वासवदत्ता। ( हाल का संस्करण, १८५९ )

५. समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना। हरलीलेव लोकस्य विस्मयाय बृहत्कथा॥
हर्षचरित्र, प्रस्तावना, ६, ; कावेल और थामस, दी हर्षचरित आफ बाण, ( १९६१ ) पृ० ३.
कादम्बरी, पृ० ४० ( बम्बई संस्करण ) ६. गाहा सतसई।

७. सयलकलागमणिलया सिक्खावियकइयणस्स मुहयंदा।
कमलासणो गुणड्ढो सरस्सई जस्स बड्डकहा॥ कुवलयमालकहा, पृ० ३, पंक्ति २२.

८. अवलोक, ४, ३४. ९. सरस्वती कण्ठाभरण, ५, १९.

१०. यशशतिलक चम्पू, ४, ७, २, पृ० ११३. ११. वृ० क० म०, २, २१६, ७.

१२. सत्यं बृहत्कथाम्भोधेर्बिन्दुमादाय संस्कृताः। तेनेतरकथाकन्थाः प्रतिभान्ति तदग्रतः॥
तिलकमञ्जरी,

१३. लम्भाङ्किताद्भुतार्थनरवाहनदत्तचरित्रवद् बृहत्कथा, काव्यानुशासन अ० ८, सू० ८.

१४. क० स० सा०, १–३ और प्रशस्ति. १५. नलचम्पू १, १४.

१६. ए० रि० आ० स० ई०, ( १९१२ ), पृ० ३५-६९.
इ० ए०, जि० ४२, पृ० २०४. ज० रा० ए० सो०, ( १९१३ ), पृ० ३८९.

१७. लेवी, ली नेपाल, १, ३२८, २०३-४, ३८७-८.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



प्रबल साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर गुणाढ्य के अस्तित्व पर संदेह नहीं किया जा सकता। बृहत्कथा के रहस्यमय ढंग से १२ वीं शती में खो जाने से गुणाढ्य के विषय में विस्तृत सूचनाओं की प्राप्ति दुरुह हो जाती है। सम्भवतः सोमदेव के कथासरित्सागर की अद्भुत सफलता के कारण गुणाढ्य की बृहत्कथा का नामशेष हो गया।

बृहत्कथा की वाचनाएँ गुणाढ्य के मूल निवास-स्थान पर कुछ अस्पष्ट रूप से प्रकाण डालती हैं। यहाँ पर बृहत्कथामञ्जरी तथा कथासरित्सागर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है[1]। इन वाचनाओं से ज्ञात होता है कि गुणाढ्य सुप्रतिष्ठित नामक किसी नगर का निवासी था। सुप्रतिष्ठित नगर का समीकरण विवादग्रस्त है। कथासरित्सागर से स्पष्ट है कि गुणाढ्य सुप्रतिष्ठित नामक किसी नगर में उत्पन्न हुआ था। कथा-सरित्सागर के वर्णन से प्रतीत होता है कि प्रतिष्ठान नगर में कोई सुप्रतिष्ठित नामक उपनगर था[2]। डॉ० मिराशी प्रतिष्ठान का भौगोलिक समीकरण वर्त्तमान पैठन ( बम्बई प्रान्त ) से करते हैं[3] परन्तु गुणाढ्य के संदर्भ में उनके मत को स्वीकार करने में अनेक बाधायें उपस्थित होती हैं[4]। यह कहना उचित नहीं है कि बृहत्कथा की वाचनाओं के समक्ष मूल बृहत्कथा नहीं थी[5]। बृहत्कथा की काश्मीरी वाचनाओं के आन्तरिक साक्ष्य स्वयं प्रमाणित करते हैं कि उन ग्रन्थों के समक्ष मूल बृहत्कथा की प्रति अवश्य विद्यमान थी[6]। अपने मत की संपुष्टि के लिए डॉ० मिराशी के कतिपय अग्रहार-दान—सम्बन्धी ताम्रपत्र-अभिलेखों का उल्लेख किया हैं। इनमें सुप्रतिष्ठित नामक स्थान का संदर्भ आता है। ध्यान देने योग्य विषय है कि इन दानपत्रों में सुप्र-

---

१. क० स० सा० ६, ८, २४, २५.

२. प्रतिष्ठानेऽस्ति नगरं सुप्रतिष्ठितसंज्ञकम्, क० स० स०, ६८।

३. ३. वा० वि० मिराशी, दी होम ऑफ गुणाढ्य, स्टडीज़ इन इण्डोलाजी, जि० १, पृ० ६५-६९।

४. एस० एन० प्रसाद, ज० ग० झा० रि० इ०, जि० २३, पृ० १४८.

५. क० स० सा०, १, १०-१२. ६. वही, १, १०-१२. इ० ए०, जि० ४३, १६.
कीथ, हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर, पृ० २७५.
विन्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन लिटरेचर, जि० ३, पृ० ३४८.
इ० ए० जि० पृ० ३१९. स्पेयर, स्टडीज़ एबाउट दी कथासरित्सागर, पृ० २७.
इ० क०, जि० १, भाग २, पृ० २१४. लाकोत, वही, पृ० ९१ और आगे
पेन्जर, दीओसन आफ़ स्टोरीज़। जि० ९, पृ० ११५; इ० हि० क्वा०, १९३८।

७. ए० इ०, जि० १५, पृ० ३९ और आगे.
वही, जि० २६, पृ० १५९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



तिष्ठित का वर्णन एक साधारण ग्राम के रूप में हुआ है[1]। किन्तु कथासरित्सागर में सुप्रतिष्ठित का उल्लेख एक नगर के रूप में हुआ है न कि एक ग्राम अथवा साधारण स्थान के रूप में[2]। यह तो सुविदित ही है कि प्रयाग में गंगा के पूर्वी तट पर प्रतिष्ठान नामक सुप्रसिद्ध पुर था जिसका उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्य में अनेकत्र हुआ है। यह तो सुविदित ही है कि उत्तरी भारतवर्ष के प्रयाग जनपद में कौशाम्बी एवं प्रतिष्ठानपुर नामक यशस्वी राजनीतिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र एक दूसरे के समीप स्थित थे।[3] सोमदेव के वरिष्ठ समकालीन क्षेमेन्द्र के विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि वह उत्तर और दक्षिण में स्थित दोनों प्रतिष्ठानों से भलीभाँति परिचित था।[4] बृहत्कथा की वाचनाओं से यह स्पष्ट पता चलता है कि गुणाढ्य दक्षिण भारत के भौगोलिक वातावरण से अधिक परिचित नहीं था। वाचनाओं में संकलित कथाएँ कौशाम्बी के आस-पास ही उसके नृपों से संबंधित है। संभवतः गुणाढ्य उत्तर भारत के प्रतिष्ठान के सुप्रतिष्ठित नामक उपनगर का निवासी था। महाभारत के वनपर्व में प्रयाग के उपतीर्थों का उल्लेख है।[5] इनमें सुप्रतिष्ठान भी एक है। प्राचीन प्रतिष्ठान संभवतः प्रयाग के वर्त्तमान झूँसी नगर में स्थित था।[6] मत्स्यपुराण के अनुसार यह प्रतिष्ठान गंगा नदी से पूर्व स्थित था, जिसकी भौगोलिक समता झूँसी से की जा सकती है। प्रतिष्ठान से उत्तर तथा गंगा से पूर्व दिशा की ओर हंस-प्रपत्तन नाम का एक तीर्थस्थल था।[7] प्रयाग के विस्तार का वर्णन मत्स्यपुराणकार ने बड़ी सूझ-बूझ के साथ किया है।[8] इसके विवरण के अनुसार प्रतिष्ठान नगर प्रयाग-मण्डल का पूर्वी सीमान्त था तथा यह गंगा के पूर्वी तट पर स्थित था। वर्त्तमान काल में उसे झूँसी कहा जाता है। इसका प्राचीन नाम समुद्रकूप भी था।[9] प्रयाग का महत्वपूर्ण उपतीर्थ था।[10] मत्स्यपुराण के इस हंस-प्रपत्तन की समता वर्त्तमान समय के गंगा के पूर्वी तट पर छूटे हुए विशाल रेतीले मैदान से की जा सकती है। यहाँ हिमालय से लौटते समय हंस विश्राम किया करते थे।[11] इसे उर्वशीरमण भी कहते थे। प्राचीन आख्यानों के अनुसार महाराज पुरूरवा ने अप्सरा उर्वशी के साथ यहां पर संभोग किया था।[12]

---

१. वही.
२. क० स० सा०, १, ६५; ६, ८.
३. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३४८.
४. बृ० क० म०, १४, ३३५.
५. महाभारत, अ, ८५-७६.
६. वासुदेव शरण अग्रवाल, मत्स्य पुराण ए स्टडी, पृ० १८३।
७. मत्स्यपुराण, १०६, ३–३२.
८. वासुदेव शरण अग्रवाल, वही, पृ० १८२.
९. मत्स्यपुराण, १०६, ३.
१०. वासुदेव शरण अग्रवाल, वही, पृ० १८२.
११. वही, पृ० १८२.
१२. उर्वशीरमणे पुण्ये विपुले हंसपाण्डुरे–मत्स्यपुराण, १०६, ३२.
ऋग्वेद, ५, २४ ; १०, ५७, १ ; १० ; ५८ ; १०, ५९ ; १०, ६०, ७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामन्जरी[1] तथा सोमदेव के कथासरित्सागर[2] से स्पष्ट हो जाता है कि सुप्रतिष्ठित प्रतिष्ठान नगर में स्थित एक उपनगर था। यह (प्रतिष्ठानपुर-वर्त्तमान झूँसी) कौशाम्बी नगर से ३३ मील की दूरी पर स्थित है। पालि-ग्रन्थ के अनुसार तथागत ने एक बार सुप्रतिष्ठित चैत्य में भिक्खुओं के साथ निवास किया था[3]।

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार प्रसेनजित् कौसल (अयोध्या) महाजनपद का राजा था[4]। इस समय काशी की गणना कौसल के सामन्त-राज्यों में थी क्योंकि काशी उसके पूर्ववर्ती राजाओं द्वारा जीत ली गई थी। कोसल ने मगध के सम्राट बिम्बसार को विवाह में अपनी पुत्री कौसलदेवी को देते समय काशी का एक गाँव दहेज के रूप में भेंट किया था। उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी प्रसेनजित् बुद्ध का समकालीन और उनका अनन्य प्रशंसक था। बुद्ध ने उसे प्रजा-सहित अपने धर्म में दीक्षित कर लिया था। संयुक्त निकाय में उसे पाँच राजाओं के मण्डल का प्रधान बताया गया है। इससे उत्तर-भारत में मगध के उदय के पूर्व कोसल की प्रधानता सिद्ध होती है। प्रसेनजित् के साम्राज्य के पूर्वी छोर पर सुप्रतिष्ठित स्थित रहा होगा। सम्भव है लेखक ने इसे भ्रमवश प्रसेनजित् की राजधानी के रूप में निर्दिष्ट कर दिया है। यह स्मरण रखना चाहिये कि लेखक उससे सोलह सौ वर्ष बाद उत्पन्न हुआ था। कौसल के शासक के राज्य विस्तार की कल्पना प्रयाग और वाराणसी तक की जानी तर्क संगत है न कि दक्षिण भारत के प्रतिष्ठान (बम्बई) तक।

कथासरित्सागर में गुणाढ्य ने स्वगत के रूप में कहा है कि मैं कुछ समय दक्षिण देश में समस्त विद्याओं को प्राप्त करके प्रसिद्ध विद्वान हुआ और अपने गुणों को दिखाने की इच्छा से स्वदेश आया। बहुत दिनों के अनन्तर शिष्यों के साथ उस सुप्रतिष्ठित नगर में प्रवेश करते हुए मैंने नगर की अपूर्व शोभा देखी[5]। इससे आभासित होता है कि गुणाढ्य ने सम्भवतः प्रतिष्ठान के सुप्रतिष्ठित नामक उपनगर

---

शतपथ ब्राह्मण, ११, ५, १. बृहदेवता, ७, ८२-८८. कठकम्, ८-१०, ३.
विष्णु पुराण, ४, ६. क० स० सा० १७–४.
कौशाम्बी, मिथ एण्ड रियेलिटी, पृ० ४२.

१. बृ० क० म०, १, १, ६०–७१ ; १, ३, २ ; १, ३, १९ ; १५, ५५।

२. क० स० सा०, ७३, ४१७ ; ११२, ८९ ; ५८, २ ; ५१, ११७, १, ६५ ; ६, ८. ६, २४, ८३, ७२.

३. विनय पिटक १, पृ० १३६ और आगे.
बिमल चरन लाहा, जिओग्राफ़ी आफ़ अर्ली बुद्धिज़्म, पृ० ७६.

४. प्राक्प्रसेनजितो राज्ञः सुप्रतिष्ठितसंज्ञके।
पुरे कुरङ्ग्री नाम्राभूदतिरूपवती सुता ॥ क० स० सा०, ११२, ८९।

५. क० स० सा०, ११२, ८९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



( प्रयाग के निकट ) में जन्म लिया था। उसकी उच्चस्तरीय शिक्षा-दीक्षा दक्षिण में हुई थी क्योंकि वह सातवाहन-युग का था। इस समय राजनीतिक रंगमंच के परिवर्तन के साथ-साथ सांस्कृतिक क्रिया-कलापों का दक्षिण में जाना स्वाभाविक था। उसका स्वदेश दक्षिण का नहीं प्रत्युत उत्तर भारत का सुप्रतिष्ठित रहा होगा। क्योंकि दक्षिण से चलता हुआ गुणाढ्य बहुत दिनों के बाद अपने नगर ( सुप्रतिष्ठित ) पहुँचा था। यहाँ बहुत दिन शब्द महत्वपूर्ण है। इससे गुणाढ्य द्वारा तय की गई दक्षिण से उत्तर की पर्याप्त लम्बी दूरी का बोध होता है।

ग्रियर्सन के अनुसार पैशाची भाषा विन्ध्यक्षेत्र तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं में प्रचलित थी[1]। यदि हम गुणाढ्य को प्रयाग के निकट के सुप्रतिष्ठित का मान कर चलें तो इस सम्भावना को बल मिलता है कि पैशाची भाषा-भाषी प्रदेश का वह पड़ौसी था। दक्षिण भारत का पैशाची भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं था। अतः पैशाची उसकी अपनी भाषा थी। कथासरित्सागर में गुणाढ्य को विन्ध्यारण्य में रहने वाला बताया गया है[2]। वररुचि के चले जाने पर उसका मित्र खिन्न हृदय माल्यवान् नामक गण मर्त्यशरीर में गुणाढ्य नाम से विख्यात होकर वन में घूमता हुआ संस्कृत आदि तीन भाषाओं को प्रतिज्ञापूर्वक छोड़कर और सातवाहन-राजा की सेवा करके विन्ध्यवासिनी भगवती के दर्शन के लिए आया। विन्ध्यवासिनी की आज्ञा से उसने विन्ध्यारण्य में काणभूति को देखा। काणभूति को देखते की गुणाढ्य को अपनी पूर्व जाति का स्मरण हो आया[3]। संस्कृत, प्राकृत एवं देशीय ( अपभ्रंश ) इन तीनों भाषाओं को छोड़कर उसने पैशाची भाषा में बृहत्कथा की रचना की[4]। इस प्रकार सभी प्राप्य साक्ष्यों के समीक्षात्मक अध्ययन के उपरान्त इस निष्कर्ष की सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि महाकवि गुणाढ्य का पैतृक निवास स्थान प्रयाग-मण्डल में गंगा के पूर्वी तट पर स्थित प्रतिष्ठानपुर ( वर्त्तमान झूँसी ) में रहा होगा[5]।

**परिच्छेद ( ग ) : बृहत्कथा का सम्भावित स्वरूप**

महाभारत और रामायण की भाँति गुणाढ्य की बृहत्कथा भारतीय सर्जनात्मक साहित्य की बहुमूल्य निधि थी[6]। सोमदेव के कथासरित्सागर, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा-मञ्जरी तथा जयरथ के हरचरितचिन्तामणि में गुणाढ्य के व्यक्तित्व का थोड़े हेर-फेर के साथ वर्णन हुआ है। एक बार पार्वती ने शिव से कोई नवीन कथा सुनने की

---

१. इ० ए०, जि० ३० ( १९०१ ) पृ० ५५६ दी मिथिक जर्नल, जि० ४, पृ० २६ और आगे।
२. क० स० सा०, ६, ३. ३. क० स० सा०, ६, १-५. ४. वही, ८-२.
५. एस० एन० प्रसाद, ज० गं० झा० रि० इ०, जि० २३, पृ० १४७-१५०।
६. दी मीथिक जर्नल, जि० ४, पृ० २६ और आगे।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



इच्छा व्यक्त की[1]। शिव के कथा सुनाते समय उनका प्रिय गण पुष्पदंत योगबल से विद्याधरों के अद्भुत चरित्र को सुना[2] तथा जाकर अपनी पत्नी जया को उसे सुनाया[3]। पुष्पदन्त की पत्नी तथा पार्वती की सखी जया ने पुष्पदन्त से सुने हुए सात विद्याधरों की कथा पार्वती को जा सुनायी[4]। जया से सुनकर पार्वती ने क्रोधपूर्वक शिव जी से कहा कि तुमने कोई अपूर्व कथा नहीं सुनाई। इस कथा को जया भी जानती है[5]। शिव ने समाधिस्थ हो वस्तुस्थिति से परिचित हो पार्वती से कहा कि जब मैं कथा तुम्हें सुना रहा था, उस समय पुष्पदन्त ने योग से अन्दर जाकर उसे सुना[6]। इस पर अत्यन्त क्रोधित हो पार्वती ने पुष्पदन्त तथा माल्यवान् नामक गण को शाप दिया कि तुम लोग मनुष्य योनि में उत्पन्न हो[7]। बहुत अनुनय-विनय के बाद पार्वती ने शाप के अन्त की घोषणा करते हुए कहा कि जब तुम सुप्रतीक नामक यक्ष को जो कुबेर के शाप से विन्ध्यारण्य में रहता है और काणभूति के नाम से प्रसिद्ध है, जब यह कथा सुनाओगे तब शाप से मुक्त हो जाओगे[8]। माल्यवान् जब काणभूति पिशाच से सुनकर इस कथा को प्रसारित करेगा तब यह भी मुक्त हो जायेगा[9]। कौशाम्बी[10] नामक महानगरी में पुष्पदंत वररुचि नाम से उत्पन्न हुआ है तथा माल्यवान सुप्रतिष्ठित[11] नामक नगर में गुणाढ्य नाम से उत्पन्न हुआ है। वररुचि ( कात्यायन ) समस्त विद्याओं का ज्ञाता था। यह सम्राट नन्द का मंत्री भी था। कात्यायन एक बार खिन्न हो विन्ध्यवासिनी देवी के दर्शन के लिए गया[12]। विन्ध्यारण्य में काणभूति ने कात्यायन को देखकर उसका अभिवादन किया[13]। इस प्रकार कात्यायन ने सात श्लोकों में सात महाकथाएँ काणभूति को सुनाई। माल्यवान नामक गण गुणाढ्य नाम से विख्यात था वह संस्कृत, प्राकृत

---

१. कथासरित्सागर, १, २३. २. वही, १,५०,५१. ३. वही, १,५२.
४. वही, १,५३. ५. वही, १,५४. ६. वही, १,५५.
७. वही, १,५६-५७. ८. वही, २,६० प्रथम लम्बक, प्रथम तरंग, श्लोक ६०.
९. वही, १, ६१.

१०. नगेन्द्रनाथ घोष ने अर्ली हिस्ट्री ऑफ कौशाम्बी में विस्तृत विवेचन किया है। यह प्रयाग से ३२ मील दूर कोसम नामक गाँव ही कौशाम्बी है।

११. वासुदेव विष्णु मिराशी, "स्टडीज इन इण्डोलाजी", जि० १, पृ० ६५-६९ के अनुसार प्रतिष्ठान, ( बम्बई ) प्रान्त में पैठन नामक नगर था।
एस० एन० प्रसाद ने अपने अनुसन्धान लेख "ए नोट आन दि ओरिजनल होम आफ गुणाढ्य" जगझरि, जि० २३, पृ० १४७ और आगे प्रयाग संगम के निकट झूँसी को प्रमाणित किया है। यह मत अनेक दृष्टिकोण से अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

१२. प्राचीन महावैयाकरण थे। उसका दूसरा नाम कात्यायन है जो उसके गोत्र से संबंध रखता है।

१३. कथासरित्सागर, १, २.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



और देशभाषा ( अपभ्रंश ) को प्रतिज्ञापूर्वक छोड़कर सातवाहन राजा की सेवा करके विन्ध्यवासिनी भगवती के दर्शन के लिए आया[1]। सातवाहन राजा की शिरीष पुष्प के समान एक सुकुमार रानी स्तन-भार से क्लान्त होकर खेलती-खेलती थक गयी। रानी पर सातवाहन राजा क्रीडावश पानी के छीटों की बौछार कर रहे थे। इस पर थकी हुई रानी राजा से बोलीं "स्वामिन्! मुझे पानी से मत मारो।" यह सुनकर राजा ने शीघ्र ही बहुत से लड्डू मंगवाये। तब रानी ने हँसकर फिर कहा—राजन्, पानी के अन्दर मोदकों की क्या आवश्यकता? मैंने तो तुमसे कहा पानी से मुझे मत मारो। तुम इतने मूर्ख हो कि "मा" ( मत ) शब्द और "उदक" ( पानी ) शब्द की सन्धि भी नहीं जानते और न बातों का प्रसंग ही समझते हो। शब्दशास्त्रज्ञ रानी के फटकारने पर तथा अन्यान्य रानियों के मन-ही-मन हंसने पर राजा लज्जित हो गया[2]। गुणाढ्य ने राजा को नवीन व्याकरण छह वर्षों में सिखाने की बात कही परंतु शर्ववर्मा ईर्ष्या के साथ बोला कि मैं छह महीने में व्याकरण पढ़ा दूंगा[3]। इस पर गुणाढ्य ने शर्ववर्मा से क्रोधित होकर कहा यदि तुम छह महीने में राजा को व्याकरण पढ़ा दोगे तो मैं संस्कृत, प्राकृत और देशभाषा ( अपभ्रंश ) इन तीनों को सदा के लिए छोड़ दूंगा। गुणाढ्य ने पिशाचों के वार्तालाप से पिशाच-भाषा सीखी। यह संस्कृत, प्राकृत तथा लोक-भाषा से विलक्षण चौथी भाषा थी[5]। गुणाढ्य के अनुरोध से काणभूति ने अपनी पिशाच-भाषा में अपनी सात कथाओं वाली वह दिव्य कथा सुनायी जो उसने पुष्पदन्त वररुचि से सुनी थी[6]। गुणाढ्य ने सात वर्षों के अनवरत श्रम से सात लाख छन्दों के पैशाची-भाषा में महाग्रन्थ बृहत्कथा को लिखा। उसने अपने गुणदेव और नन्दिदेव शिष्यों को काव्य-प्रेमी राजा सातवाहन के पास भेजा। पिशाचाकार शिष्यों को देखकर विद्यामदान्ध राजा ने द्वेष के साथ कहा—सात लाख छन्द, नीरस पिशाच-भाषा और रक्त से अक्षरों का लेखन ऐसी इस पिशाच-कथा को धिक्कार है। तब उन शिष्यों ने गुणाढ्य को जो कुछ हुआ था सब सुना दिया[7]। गुणाढ्य का हृदय संतप्त हो गया। शिष्यों को साथ ले समीपवर्ती पर्वत पर चला गया और एक साफ सुथरे एकान्त स्थान में उसने एक अग्नि-कुण्ड बनाया। एक-एक पत्र पढ़कर, मृग-पक्षियों को सुनाकर उसे आग में जला देता था। शिष्यों के अनुरोध से नरवाहनदत्त चरित नामक एक भाग को उसने बचा लिया जो एक लाख श्लोकों में रचित था[8]। गुणाढ्य की उस दिव्य कथा को जंगल के सभी पशु-हरिन, सूअर, भैंसे आदि झुण्ड में, निश्चल होकर, घास, चरना छोड़कर आँसू

---

१. वही, २, ६. २. वही, ६, १-२.
३. वही, ६, १४४, ११५, ११६, ११७, ११८.
४. कथासरित्सागर, ६, १४५, १४६. ५. वही, ७, २७.
६. वही, ८, १. ७. वही, ८, ११, १४–१५, १६. ८. वही, ८, १७–२०.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



बहाते हुए सुन रहे थे। इसी बीच राजा सातवाहन अस्वस्थ हो गया। वैद्यों ने इसका कारण सूखे मांस का भोजन बताया। राजा को सूखा मांस खिलाने के लिए डाँटे गये रसोईदारों ने कहा इसमें हमारा क्या अपराध है? बहेलिये जैसा मांस लाते हैं वही हम पकाते हैं। शिकारी बहेलियों ने पूछने पर कहा कि यहाँ से समीप ही पहाड़ की चोटी पर कोई ब्राह्मण एक-एक पत्र पढ़कर अग्नि में फेंक रहा है तथा उसे जंगल के समस्त प्राणी एकत्र होकर और निराहार रहकर सुनते हैं। कहीं चरने के लिए नहीं जाते, इसलिए उनका मांस सूख गया है। राजा सातवाहन व्याधों के वचन सुनकर अत्यन्त कुतूहल के साथ गुणाढ्य के पास गया[1]। आँसू बहाते हुए वनचरों के मध्य बैठे हुए बढ़ी जटावाले गुणाढ्य को पहचानकर राजा ने नमस्कार किया और सब समाचार पूछा। गुणाढ्य द्वारा बृहत्कथा का वृत्तान्त सुनकर उसने वह दिव्य कथा उससे माँगी। गुणाढ्य ने राजा सातवाहन से कहा कि छह लाख श्लोकों में लिखी गई छह कथाएँ हमने जला दी। एक लाख श्लोक की एक कथा यह बची है- इसे ले लो तथा मेरे ये दोनों शिष्य इसके व्याख्याता होंगे[2]। ऐसा कहकर योग-समाधि द्वारा अपने मानव-शरीर का त्याग कर शाप-मुक्त गुणाढ्य ने अपने पद को प्राप्त किया[3]। राजा सातवाहन गुणाढ्य द्वारा दी गई नरवाहनदत्त चरितमयी बृहत्कथा नामक वह कथा लेकर अपने नगर में आया। राजा सातवाहन ने उन दोनों शिष्यों की सहायता से उस कथा के प्रचार के लिए उसका देश-भाषा में अनुवाद करा-कर कथापीठ की रचना की। कथा नगर में निरन्तर प्रसिद्ध होती हुई क्रमशः सारे विश्व में प्रसिद्ध हो गई[4]। गुणाढ्य की बृहत्कथा विचित्र रसों से परिपूर्ण थी। इसमें सम्भवतः देव-चरित से संबंधित कथायें नहीं थीं क्योंकि इसकी वाचनाओं में देव-चरित संबंधी कथाएँ नहीं हैं[3]। ये वृत्तान्त स्पष्ट रूप से पौराणिक प्रतीत होते हैं।

**परिच्छेद (घ) : बृहत्कथा की भाषा**

बृहत्कथा की उत्तरकालीन वाचनाओं से पता चलता है कि गुणाढ्य ने इस ग्रंथ की रचना पैशाची-भाषा में की थी[6]। इस तथ्य की संपुष्टि अन्यान्य साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों से भी होती है[7]। शोध-कर्त्ताओं के मध्य पैशाची-भाषा एक विवाद-ग्रस्त समस्या के रूप में उपस्थित होती है[8]।

---

१. कथासरित्सागर, ८, २१–२२, २३, २४, २५, २६, २७.

२. वही, ८, २८, ३०–३१, ३२, ३३.

३. वही, ८, ३४. ४. वही, ८, ३८–४१. ५. वही, ८, ४१.

६. क० स० सा०, १, १०; ८, २; ८, ४०.

७. काव्यादर्श १, ३८. इ० ए०, ४२, २०४. ज० रा० ए० सो०, ( १९१३ ), ३८९.

८. विन्टरनित्स, वही, ३४८.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



संस्कृत वाङ्मय की भाँति प्राकृत भाषा का साहित्य भी विशाल एवं समृद्ध है। एक अज्ञातनामा लेखक ने ग्यारह प्रकार की प्राकृत भाषाओं का उल्लेख किया है। पैशाची प्राकृत की एक प्राचीन बोली है। संस्कृत के कतिपय प्रतिष्ठित विद्वानों ने इसका उल्लेख किया है। वररुचि[1] एवं सिंहदेव गणिन[2] ने अपनी कृतियों में पैशाची-प्राकृत का विवरण दिया है। रुद्रट के काव्यालंकार की टीका में नामिसाधु ने इसे पैशाची कहा है[3]। हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में पैशाची के नियमों का वर्णन किया है[4]। संभवतः प्राचीन समय में पैशाची जनसाधारण के विचारों की प्रबल संवाहिका रही होगी। इस भाषा की लोकप्रियता का सहज अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि मार्कण्डेय ने "प्राकृत-सर्वस्व" में पैशाची की तीन उप-बोलियों का उल्लेख किया है। ये क्रमशः कैकेय, शौरसेन और पाञ्चाल हैं।

लास्सन के इन्स्टीट्यूत्सीओनेस के पृष्ठ १३ में उद्धृत लक्ष्मीधर के ग्रंथ में यह उल्लेख पाया जाता है कि पैशाची-भाषा का नाम पिशाच देशों के आधार पर पड़ा है[5]। प्राचीन व्याकरणों के अनुसार पाण्ड्य, केकय, वाह्लीक, सह्य[6], नेपाल, कुन्तल, गन्धार पिशाचदेश हैं। महाभारत में एक पैशाची जाति का विवरण उपलब्ध है[7]। भारतीय पिशाच का अर्थ भूत से लगाते हैं[8]। संभवतः इसी हेतु वररुचि की टीका में भामह ने पिशाचों की भाषा पैशाची कहा है ( पिशाचानाम् भाषा पैशाची )[9]। संभवतः इसी कारण इसे भूत-भाषा भी कहा गया है[10]। भारतीय जनता में ऐसी प्रचलित धारणा है कि भूत नाक से बोलते हैं। इस लोकप्रिय मन्तव्य की पृष्ठभूमि के आधार पर कुक ने अनुमान लगाया है कि यह भाषा आजकल की अँग्रेजी की भाँति पिशाच भाषा कही गई। परंतु निम्नलिखित तथ्यों के आलोक में उपर्युक्त मत से सहमत नहीं हुआ जा सकता। यह अधिक संगत है कि आरम्भ में इस भाषा का नाम पैशाची इसलिए पड़ गया होगा कि यह महाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी की भाँति ही पिशाच प्रदेश में बोली जाती होगी। दशरूप के विवरणों से पता चलता है कि पैशाची तथा मागध प्राकृत का प्रयोग निम्न जाति के लोगों में प्रचलित था[11]। सरस्वतीकण्ठाभरण[12] और साहित्य दर्पण[13] के अनुसार पैशाची पिशाचों की भाषा है।

---

१. वररुचि, १०, १. क्रमदीश्वर, ५, ९६. २. वाग्भट्टालंकार, २, ३.
३. काव्यालंकार, २, १०२. ४. काव्यानुशासन, ४–३०३ से ३२४.
५. प्राकृत सर्वस्व, १२६.
६. कैकेय शौरसेनम् च पांचालम् इति च त्रिधा। पैशाच्यो नगरी यस्मात् तेनापन्या न लक्षितः॥
७. आर० पिशल, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृ० ५४.
८. सह्य महाराष्ट्र के सह्याद्रि प्रदेश का नाम है। ९. महाभारत, ७, १२१, १४.
१०. क० स० सा०, ७, २६-७. ११. दण्डिन काव्यादर्श, १, ३८.
१२. वागभट्टालंकार, २, १ और ३. १३. दशरूप, २, ६५-६६.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



भोजदेव ने उच्च जाति के लोगों को विशुद्ध पैशाची के सम्भाषण की मनाही की है[1]। वररुचि ने शौरसेनी[2] को पैशाची की आधारभूत भाषा बताया है। इस मत से हेमचन्द्र अपने प्राकृत व्याकरण में पूर्णतया सहमति व्यक्त करते हैं[3]। पैशाची अपनी ध्वनि सम्पत्ति के अनुसार संस्कृत, पाली और पल्लववंश के दानपत्रों की भाषा से मिलती है। हार्नले के अनुसार पैशाची आर्य-भाषा का वह रूप है जो द्रविड़ भाषा-भाषियों के मुख से निकली थी किन्तु सेनार्ट इस मत से असहमति व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार पैशाची का प्रदेश भारत के उत्तर-पश्चिम में रहा होगा[4]। परन्तु वास्तविक तथ्य कुछ और ही लगता है। लक्ष्मीधर प्रणीत प्राकृतसर्वस्व से आभासित होता है कि भारत के कई भूखण्डों में यह प्रचलित थी; यथा गन्धार एवं वाह्लीक[5] ( उत्तर-पश्चिम भारत ), नेपाल ( उत्तरी भारत ) तथा कुन्तल एवं पाण्ड्य ( दक्षिणी भारत ) बृहत्कथा की रचना के निमित्त पैशाची के संकलन का ऐतिहासिक इसकी लोकप्रियता हो सकती है। पैशाची ऐसे विशेष लक्षणों से युक्त और आत्मनिर्भर तथा स्वतन्त्र प्रादेशिक भाषा है कि वह संस्कृत, प्राकृत और उपभ्रंश के साथ अलग भाषा के रूप में गिनी जा सकती है[6]। संभवतः ग्राम्य भाषा से तात्पर्य पैशाची भाषा से ही रहा होगा जिसमें वाग्भट के अलंकारतिलक[7] के अनुसार भीमकाव्य रचा गया था। इस भाषा के कुछ टुकड़े हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में उपलब्ध है[8]। उत्तराखण्ड के बौद्ध धर्मावलम्बियों की विवरण पत्रिकाओं में यह घटना उल्लिखित है कि बुद्ध के निर्वाण के ११६ वर्ष उपरान्त चार स्थविर आपस में मिले थे जो संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और पैशाची भाषाएँ बोलते थे। इन स्थविरों ने जो वैभाषिक की एक मुख्य शाखा के थे आपस में सम्भाषण किया था[9]।

**परिच्छेद ( ड ) : बृहत्कथा की उत्तरकालीन वाचनाएँ**

बृहत्कथा की उत्तरकालीन वाचनाओं में काश्मीरी और नेपाली वाचनाएँ

---

१. वही, ५६, १९. २. पृ० १७३, १०. ३. पृ० ५०, २५

४. पिशल, डॉयत्से एण्ड शी, ३५ ( बर्लिन १८८३ ) ज० वि० उ० रि० सो०, २३, १४७-५०

५. वैसे तो वाह्लीक शब्द का प्रयोग पंजाब के लिए होता था परन्तु कालान्तर में यह शब्द पंजाब के निमित्त प्रचलित हो गया था। महाभारत एवं रामायण में व्यास ( विपाशा ) के आस-पास के क्षेत्रों के निमित्त इस शब्द का प्रयोग मिलता है।
ययुर्मध्येन वाह्लीकान् सुदामानञ्च पर्वतम्। विष्णोः पदं प्रेषमाणां विपाशां चापि शाल्मलीम्॥
रामायण २, ६८; १८-१९. ६. क० स० सा० ७, २९; ६. १४८.
वृ० क० मं०, ६, ५२. बालरामायण, ८, ४, ५. वाग्भटालंकार, २, १.

७. अलंकार तिलक, १५, १३.

८. ४, ३१०, १६, २०, २२, २३ क० स० सा०, ११, ४८-९.

९. वासिलज्यू, बुद्धिज्म, पृ० २९५.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



प्राप्य हैं। काश्मीरी वाचनाओं में क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी और सोमदेव के कथासरित्सागर की गणना की जाती है। नेपाली वाचना दुर्भाग्यवश अधूरी प्राप्त हुई है। बुद्धस्वामी कृत बृहत्कथाश्लोक संग्रह नेपाली वाचना मानी जाती है। इसके अतिरिक्त बृहत्कथा की अन्य वाचनाओं का भी यदा-कदा उल्लेख प्राप्य है परन्तु इनकी यथार्थता अब भी विवादास्पद है[1]।

कथासरित्सागर के वास्तविक परिचय के लिए बृहत्कथा और उसकी वाचनाओं के विषय में जानना आवश्यक है[2]। बृहत्कथा का पहला रूपान्तर बुद्ध स्वामी प्रणीत बृहत्कथा श्लोक संग्रह है। इसकी रचना संस्कृत में लगभग पाँचवीं शती में हुई। इसके रचयिता बुद्धस्वामी ने गुप्तकालीन स्वर्णयुग की संस्कृति के साँचे में बृहत्कथा को ढालने का यत्न किया[3]। इसे बृहत्कथा की नेपाली वाचना कहा जाता है। ग्रंथ के नामकरण का शाब्दिक अर्थ महानकथा का श्लोकों वाला संस्करण है। महामहोपाध्याय पंडित हर प्रसाद शास्त्री ने इसे प्राप्त किया था[4]। बृहत्कथा श्लोक संग्रह का देवनागरी-लिपि में मूल संस्करण और फ्रेंच अनुवाद लाकोत ने पेरिस से १९०८ में प्रकाशित कराया था। यद्यपि बुद्धस्वामी और गुणाढ्य के मध्य लगभग चार सौ वर्षों का अन्तर रहा होगा तथापि एक कालक्रम की दृष्टि से गुणाढ्य की मूल बृहत्कथा के अधिक निकट की वाचना है[5]। लाकौत ने गुणाढ्य की नेपाली याचना को आठवीं-नवी शताब्दी के अन्तर्गत रक्खा है जो कि परिकल्पना मात्र है[6]। बुद्धस्वामी के ग्रन्थ के स्वरूप से पता चलता है कि यह वाचना बृहत्कथा

---

१. सम्भवतः राजा दुर्विनीत, गंगवंशी ने छठी शती में बृहत्कथा का संस्कृत अनुवाद किया था (द्रष्टव्य २, नरसिंहचार इ० एण्टी०, ४२, १९१३, २०४ और ज० रा० ए० सो०, १९१३, ३८९) परन्तु जिस अभिलेख के आधार पर गंगवंश की तिथि निर्धारित की गई है वह जाली अभिलेख है। अतः यह सन्देहास्पद विषय है कि नरसिंहाचार का मत समर्थन के योग्य है अथवा नहीं। संभवतः वे अभिलेख अधिक प्रमाणित होंगे जिनमें दुर्विनीत का नाम उल्लिखित हुआ है (फलीट० इ० एण्टी०, ३०, १९०१, २२२, कीलहार्न, ए० इ०, सप्तम, अपने पृ० २१, अष्टम अपने पृ० ४ नोट) विन्टरनित्स, ए० आयंगर, ज० रा० ए० सो० १९०६, ६८९ और ऐशेण्ट इंडिया, लन्दन, १९११, पृ० ३२८, ३३७ विन्टरनित्स के मत में संशय प्रकट करते हैं। तमिल ग्रंथ उद्यन नकडई अथवा पेरुंग डई की जो सम्भवतः बृहत्कथा का शाब्दिक अनुवाद था, रचना द्वितीय शती में हुई थी। तमिल और फ़ारसी वाचनाओं के लिए द्रष्टव्य लाकोत का ऐ० स० ई०, पृ० १९७, दी मिथिक जर्नल, जिल्द ४, पृ० २६ और आगे।

२. वासुदेव शरण अग्रवाल, पटना संस्करण, पृ० ६.

३. वही, पृ० ७.

४. हर प्रसाद शास्त्री, ज० ए० सो० बं०, ६२।१८९३ पृ० २४५.

५. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३५.

६. वही, पृ० १५०.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



के अधिक सन्निकट हैं। उदाहरणस्वरूप नेपाली वाचना में गोमुख एक महत्त्वपूर्ण पात्र है परन्तु काश्मीरी वाचनाओं में वह केवल एक साधारण पात्र के रूप में चित्रित हुआ है। इनमें नरवाहनदत्त की मुख्य कथा पृष्ठभाग में आ गई है और अन्य लघुकथायें महत्त्वपूर्ण स्थान पा गई हैं। नेपाली वाचना के अनुसार कलिंगसेना नामक वेश्या की पुत्री मदनमन्चुका नरवाहनदत्त के लिए उपयुक्त वधू नहीं है परन्तु इसके प्रतिकूल बृहत्कथा की काश्मीरी वाचनाओं में इसे औचित्य प्रदान करते हुए इस कथा संग्रह के पाँचवें सर्ग में यूनानी कलाकारों की विशेषज्ञता की प्रशंसा की गई। इसके अनुसार वायुयान बनाने में अतिकुशल तथा भारतीय कलाकारों को यह विद्या अज्ञात थी। अठारहवें सर्ग में एक व्यापारी की पुत्री का उल्लेख है जिसकी माँ थी। बृहत्कथाश्लोकसंग्रह उस काल की ओर इंगित करता है जब उत्तरी भारत में ग्रीक कलाकार प्रशंसा के पात्र थे[1]। बुद्धस्वामी के काल में गन्धार-कला की पूर्व महत्ता समाप्त होने लगी थी। अतएव स्पष्ट है कि इस लेखक द्वारा यूनानी कला की उपयुक्त प्रशंसा का आधार बृहत्कथा ही है। इसके रचनाकार गुणाढ्य के काल (ईसवी प्रथम शती) में गंधारकला अत्यधिक लोकप्रिय थी। यह वास्तव में भारतीय साहित्य का दुर्भाग्य है कि बुद्धस्वामी की महान कृति पूर्वरूप में उपलब्ध नहीं है। यह ग्रन्थ हास्यरस एवं सुखवादी दृष्टिकोण से ओत-प्रोत है। इतने भव्य रंगों में जीवन का वास्तविक चित्र कम ही अंकित पाया गया है[2]। धार्मिक उत्सवों तथा यात्राओं का अनेकों बार वर्णन किया गया है। कापालिक सन्तों के जीवन का भव्य वर्णन बाईसवें सर्ग में हुआ है तथा जैन मुनियों का चौबीसवें सर्ग में। सर्ग पाँच में कलाकारों के आनन्ददायक जीवन का वर्णन हुआ है। दसवें सर्ग में गौमुख पाठकों को वेश्या जगत का भ्रमण कराता है। उदाहरणार्थ कलिंगसेना जो कि प्रसिद्ध वेश्या थी उसके मध्य प्रासाद एवं उसके वातावरण का इस भाग में उन्होंने सजीव वर्णन किया है। लाकोत के अनुसार कलिंग सेना के भव्य प्रासाद का वर्णन शूद्रक के मृच्छकटिक की वसंतसेना नामक वेश्या के प्रासाद के वर्णन से बहुत अधिक साम्य रखता है[3]।

यह वास्तव में आश्चर्यजनक विषय है कि बुद्धस्वामी की कृति, बृहत्कथा की काश्मीरी वाचनाओं से अधिक विषम है। विषमता कथानक में ही नहीं प्रत्युत मूल कथा के आधार में भी प्राप्य होती है। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि काश्मीरी वाचनायें सर्वथा स्वतन्त्र कृतियाँ ही हों[4]। श्लोकसंग्रह ग्रन्थ का नामकरण आंशिक रूप से सत्य है। जिन स्थलों पर कवि का मन अधिक रमा है उन्हें अत्यधिक विस्तार

---

१. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३५०. २. वही, पृ० ३५१.

३. लाकोत, वही, पृ० २९०. बृहत्कथाश्लोकसंग्रह, १०, ६०-४६३.

४. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३५१.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



के साथ उसने वर्णन किया है तथा अनेक स्थलों पर ग्रंथ में इतना संक्षेप के साथ वर्णन हुआ है कि पाठक को स्वयं कथा के विषय में सोचना पड़ जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि श्लोकों की रचना में अधिक संयत है तथा संग्रह की प्रवृत्ति में कम[1]। इस प्रकार नाम की अर्द्ध सार्थकता स्पष्ट हो जाती है। गुणाढ्य से संबंधित परिचयात्मक कथायें जो कि काश्मीरी वाचनाओं में है बुद्धस्वामी की वाचना में नहीं पायी जाती। समग्र ग्रन्थ में गुणाढ्य का नाम केवल एक बार आया है। इस तथ्य से गुणाढ्य से समय का सामीप्य अभिव्यंजित होता है। बुद्धस्वामी वस्तुतः एक मौलिक चिन्तन धारा का कवि था। उसने गुणाढ्य की बृहत्कथा को अपने काव्य का आधार मात्र चुना था[2]।

सम्पूर्ण अवशिष्ट प्राप्य ग्रन्थ में अट्ठाइस सर्ग तथा ४५३९ पद्य हैं। बुद्ध स्वामी की शैली सरल प्रवाहमयी एवं रुचिकर है।[3] गुणाढ्य के प्रति ऋणी होने के उत्तर-दायित्व का भार-वहन करते हुए भी ग्रन्थ की सजीवता तथा लेखक के जीवठ की तुलना के कवि भारतीय साहित्य में कम ही हैं।

बृहत्कथा की प्रथम वाचना ( बृहत्कथाश्लोकसंग्रह ) के साथ ही अथवा १०० वर्ष के भीतर रचित प्राकृत संस्करण ( संघदास गणिका वसुदेव हिण्डी ) जैन परम्परा का ग्रन्थ है[4]। मूल बृहत्कथा का वत्सराज उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त था। कालिदास के अनुसार मालवा के गाँवों में वहाँ के बड़े-बूढ़े उदयन की कहानी कहने में चतुर थे। उदयन की प्रचलित कथा केवल उदयन और वासवदत्त की प्रणय लीला तक ही सीमित न होगी परन्तु उसके ही अन्तर्गत उसके धीरललित पुत्र नरवाहनदत्त के विवाह-संबंधी कथायें भी सम्मिलित रही होंगी। पुत्र ने प्रणय के क्षेत्र में पिता के उदाहरण का अनुसरण कर जीवन में अनेक प्रेम-परिणयों का ठाट विकसित किया। नरवाहनदत्त के अनेक विवाहों के वर्णन करने के कारण मूल बृहत्कथा का स्वरूप काम-कथा या शृंगार-कथा रहा होगा[5]। नरवाहनदत्त की यात्रा का पर्यवसन एक विवाह के रूप में होता था। जैसे: व्यापारी धन कमाकर सकुशल लौट आने पर सिद्ध सार्थवाह बनते हैं वैसे ही नरवाहनदत्त के चरित्र में द्वीपान्तर-पर्यटन की सफल यात्रा एक नई रानी के साथ विवाह के रूप में होती है[6]।

बृहत्कथा के मूल स्वरूप पर प्रकाश डालने के लिए संघदासगणि की वसुदेव हिण्डी की प्राप्ति एक महत्वपूर्ण उल्लेखनीय घटना है[7]। हिण्डी का शाब्दिक अर्थ परिभ्रमण या पर्यटन है। यद्यपि संघदास गणि ने बृहत्कथा को ही आधार बनाया था तथापि ग्रंथ के

---

१. पृ० ३५१. २. वही, पृ० ३५१. ३. कीथ, वही, पृ० २७४–७५.
४. वासुदेव शरण अग्रवाल की भूमिका, क० स० सा० संस्करण, जि० १ पटना, पृ० ७।
५. वही, पृ० ७. ६. वही, पृ० ७. ७. वही, पृ० ८.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



ठाट और उद्देश्य में उन्होंने काफी मौलिक परिवर्तन किए हैं[1]। बृहत्कथा जो कि लौकिक काम-कथा थी उसको संघदासगणि ने धर्मकथा का रूप दिया तथा जैन धर्म के अनेकानेक प्रसंगों को यथा-स्थान सम्मिलित किया। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन कथा के नायक को ही बदल डालना था। मूल बृहत्कथा का नायक उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त था किन्तु वसुदेव-हिण्डी में संघदासगणि ने अन्धकवृष्णि-वंश के प्रसिद्ध पुरुष वसुदेव को अपना नायक[2] बनाया। वासुदेव हिण्डी में २९ लम्बक हैं। यह महाराष्ट्री-प्राकृत भाषा में गद्य की शैली में है। इसमें कुल मिलाकर लगभग ११ हज़ार श्लोक हैं।[3] इस जैन ग्रन्थ ( वसुदेवहिण्डी ) के दो रूप मिलते हैं। संघदासगणि का प्रणयन इस परम्परा का प्रथम खण्ड है। इसी परम्परा का दूसरा खण्ड भी उपलब्ध है जो मध्यम खण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। उसकी रचना धर्मदासगणि ने लगभग दो शती बाद की[4] है। इसकी भूमिका से स्पष्ट हो जाता है कि जिसे संघदासगणि ने विस्तार से छोड़ दिया था उस कथा में कथासूत्र मिलाते हुए धर्मदासगणि ने रचना की और आगे बढ़ाया है।[5]

धर्मदासगणि विरचित 'वसुदेव हिण्डी' में ७१ लम्बक तथा १७००० श्लोक हैं। यह विशाल ग्रन्थ दुर्भाग्यवश अभी तक अप्रकाशित है। अतः इसकी कथाओं के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता किन्तु अनुमान के आधार पर वसुदेव के पहले विवाह के ढंग पर ही जितनी और कथाएं मिल सकीं या गढ़ी जा सकीं, उन्हें जोड-घटाकर धर्मदास ने परिशिष्ट रूप में नये ग्रन्थ का ठाट खड़ा किया[6]। उससे यह अनुमान करना न्यायसंगत ही होगा कि मूल बृहत्कथा में विवाहों की कहानियों का विस्तृत जाल फैला हुआ था।

धर्मदासगणि की रचना "वसुदेव हिण्डी" को मध्यम खण्ड कहा जाता है। उसका कारण यह है कि संघदास के ग्रंथ का २९ वां लम्बक जहाँ समाप्त होता था, उसके आगे धर्मदास ने अपना कथा-सूत्र नहीं चलाया। प्रत्युत उसने पहलीं "वसुदेव हिण्डी" की १८ वीं कथा पियंग सुन्दरी लम्बक के साथ अपने ७१ लम्मकों का संदर्भ जोड़ा है और इस तरह संघदास की "वसुदेव हिण्डी" के पेटे में अपने ग्रन्थ को भरा है।

---

१. वही, पृ० ८. २. वही, पृ० ८. ३. वही, पृ० ८. ४. वही, पृ० ८.

५. सुव्वह य किर वसुदेवेणं वाससतं परिभमंतेणं हममि भरहे विज्जाहरिवणखतिवाणरकुल-वंससभवाणं कण्णाणं सतं परिणीत, तत्यय सामावियमादियाणं रोहिणीपज्जवसाणाणं एगुणतीस लमता संघदासवायएणं उवणिवद्धा। एगसत्तरिं च विल्यारभीरुणा कहामज्झे छड्डिता। ततो हं भो लोइयसिंगारकहापसंसणं असह्माणो आयरियाया से अवधारेऊणं पक्यणाणुरागेणं आयरियनिओएण य तेसिं मज्झिल्ललंभाणं गंथणत्थ अब्भुज्जजो हे तं सुणह इतो पुव्वकहाणुसारेण चेव।
वसुदेव हिण्डी, मध्यम खण्ड।

६. वासुदेवशरण अग्रवाल, वही, पृ० ९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



इसी से इसे वसुदेवहिण्डी का मध्यखण्ड कहते हैं। वस्तुतः संघदासगणि का २९ लम्भकों वाला ग्रन्थ स्वयम् में संपूर्ण था। उसके बाद धर्मदासगणि ने अपना ग्रन्थ अलग बनाया और चतुराई से उसे अपने पूर्ववर्त्ती ग्रन्थ की खूंटी पर टाँग दिया।[1] १८वें लम्भक की समाप्ति पर धर्मदासगणि ने अपने मध्यखण्ड का पेबन्द जोड़ा है।[2] संघदासगणि की वसुदेवहिण्डी की रचना में इस समय छह प्रकरण पाये जाते हैं—( १ ) कथोत्पत्ति ( २ ) धम्मिलहिण्डी ( ३ ) पीठिका ( प्राकृत पीढिया ) ( ४ ) मुख ( ५ ) प्रतिमुख ( ६ ) शरीर। इसमें शरीर के अन्तर्गत २९ लम्भकों की कहानियाँ हैं जिनमें से अन्तिम इस समय त्रुटित है और बीच के १९ वें एवं २० वें—दो लम्भकों की कथाएँ भी नहीं हैं। १८ वें में प्रियंग सुन्दरी लम्भक के बाद २१वें में केतुमती लम्भक की कथा प्रारंभ होती है।

कथोत्पत्ति नामक प्रकरण के उपरान्त ५० पृष्ठों में धम्मिलहिण्डी नाम का एक महत्त्वपूर्ण प्रकरण उपलब्ध होता है किन्तु स्पष्ट है कि वह अपने किसी अज्ञात मूल स्थान से छटक कर यहाँ वसुदेवहिण्डी में लटकन्त रूप में ही रक्खा गया है।[3] धम्मिल में किसी सार्थवाह-पुत्र की कथा है। मूल ग्रन्थ में इसे धम्मिल-चरित्र कहा गया है। धम्मिल शब्द की उत्पत्ति बताते हुए लिखा है कि गर्भ के समय उसकी माता को धर्माचरण के विषय में दोहद उत्पन्न हुआ था। इस कारण पुत्र का नाम धम्मिल रखा गया। बृहत्कथा की काश्मीरी वाचनाओं में इसकी गन्ध भी नहीं आती।[4] धम्मिल-हिण्डी का वातावरण सार्थवाहों के संसार से लिया गया है। धम्मिल, नरवाहनदत्त की भाँति देश-देशान्तरों में जाकर ३२ विवाह करता है। धम्मिल शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग गुप्तकालीन संस्कृत-भाषा में पाया जाता है। एक विशिष्ट शैली के केशबन्ध को धम्मिल केश कहते थे, जिसमें बालों का एक जूड़ा बनाकर सिरके अग्रभाग या मध्य भाग में बाँधा जाता था। इस शब्द की व्युत्पत्ति द्रमिल या तमिल से सम्भाव्य है।[5] हो सकता है कि दक्षिण भारत के किसी प्रसिद्ध सार्थवाह का नाम इसके मूल से रहा हो और शिलप्पाधिकारं नामक तमिल-काव्य में व्यापार का जो वातावरण है, उसकी पृष्ठभूमि में धम्मिल की कथाओं की रचना हुई हो। वस्तुतः धम्मिल में धनवती सार्थवाह के पुत्र धनवसु के विषय में उल्लेख है कि उसने जहाज लेकर यवन विषय या यवनदेश की व्यापारिक यात्रा की थी और अपने साथ बहुत से सांयात्रिक व्यापारियों को ले गया था। शिलप्पाधिकारं के अनुसार यवन-देश के व्यापारियों का घनिष्ठ संबंध कावेरीपत्तन के व्यापारियों के साथ था[6]। बृहत्कथा की अन्य वाचनाओं में धम्मिल हिण्डी जैसा कोई अनमिल पेबन्द नहीं पाया जाता।[7]

वसुदेव हिण्डी में धम्मिल के अतिरिक्त छह विभाग थे—कथोत्पत्ति, पीठिका,

---

१. वही, पृ० ९. २. वही, पृ० ९. ३. वही पृ० ९. ४. वही, पृ० ९.
५. वही, पृ० ९. ६. वही, पृ० १०. ७. वही, पृ० १०.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



मुख, प्रतिमुख, शरीर और उपसंहार। आरंभ के प्रथम तीन में कथा का प्रस्ताव हुआ है। प्रतिमुख में कहे गये वसुदेव के वाक्यों में उस समय के सांस्कृतिक हलचल का पता चलता है। एक बार कथा में प्रद्युम्न ने वसुदेव से कहा—देखिए, साम्ब ने अन्तःपुर में बैठे-बैठे १०८ बहुएँ पा लीं जबकि आप १०० वर्ष तक उनके लिए घूमते फिरे, इसके उत्तर में वसुदेव ने कहा—साम्ब तो कुएँ का मेढक है, जो सरलता से प्राप्त भोग से संतुष्ट हो गया। मैंने तो पर्यटन करते हुए अनेक सुख और दुःखों का अनुभव किया। मैं मानता हूँ कि दूसरे किसी पुरुष के भाग्य में इतना उतार-चढ़ाव न आया होगा। वस्तुतः वसुदेव के इस छोटे से वाक्य में उस महान् युग की हलचल का बीज समाया हुआ है।[1] बाण[2] के अनुसार उनके पैरों में मानों कोई द्वीपान्तर संचारी पादलेप लगा हुआ था। वे यह मानते थे कि द्वीपान्तरों की यात्रा किए बिना लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं होती। मत्स्यपुराणकार ने समुद्र को चुनौती देते हुए कहा हैं—हे उत्ताल तरंगोवाले महार्णव, आज तक लंका आदि द्वीपों में निवास करने वाले राक्षस हो तुम्हारे जल में आते-जाते रहे हैं जिसके कारण उसमें कीच उठ खड़ी हुई है। अब अपने उस जल को शिलाओं से जड़े हुए प्रागंण में बदल डालो; क्योंकि देवाधिदेव शिव अपने परिवार के साथ तुम्हारा सतंरण करना चाहते हैं।[1]

सभापर्व में उल्लेख मिलता है कि पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व की समुद्र की यात्राओं का ताँता लगा रहता था[2]। दिव्यावदान के अनुसार बिना समुद्र-पर्यन्त यात्रा किए अर्थोपार्जन की आशा ही निरर्थक है। निरन्तर पर्यटन और दूर-दूर के देशों में परिभ्रमण—यही गुप्तों के स्वर्णयुग में जीवन की टेक बन गई थी। शूरपारक निवासी पूर्ण नाम के सार्थवाह के कथन से यह बात सूचित होती है—भाइयो, महासमुद्र की यात्रा में दुःख बहुत है, सुख थोड़ा है; बहुत से जाते हैं पर थोड़े ही लौट पाते हैं। क्या आपने ऐसे किसी का नाम सुना है जो छह बार महासमुद्र की यात्रा से सफलता के साथ अपने जहाजों को लेकर लौट आया हो। निःसन्देह गुणाढ्य की भावना इसी प्रकार की जल-थल संबंधी हलचलों से पोषित थी[3]।

बृहत्कथा की काश्मीरी वाचनाओं के दो संस्करण मिलते हैं। उनमें प्राचीन क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी है। ग्रंथ के नामकरण का शाब्दिक अर्थ है—विशाल बृहत्कथा रूपी वृक्ष की कली। ग्रंथ की रचना संभवतः १०३७ ई० में हुई थी[4]। विन्टरनित्स के अनुसार बृहत्कथामंजरी कवि क्षेमेन्द्र के आरंभिक काल की रचना

---

१. वही, पृ० १०. २. वाण-अब्भ्रमणेन श्रीसमाकर्षणं भवति।

३. मत्स्यपुराण, १५४–४५५. ४. महाभारत, सभापर्व, ४९–१६.

५. वासुदेव शरण अग्रवाल, वही, पृ० ११.

६. बूलर, इ० ऐ० १,१८७२, पृ० ३०२. लेवी, ज० ए०, १८८५, पृ० ८ लाकोत, वही, पृ० १११.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



है[1]। इस लेखक ने बृहत्कथा की काश्मीरी वाचना में अधिक उत्साह नहीं दिखाया है यद्यपि लेखक का मुख्य उद्देश्य बृहत्कथा का संक्षिप्तीकरण था तथापि महाकवि की लेखनी ग्रन्थ के कामुक और श्रृंगार के स्थलों पर ही रमी है। वस्तुतः क्षेमेन्द्र स्वभाव से ही बातूनी प्रवृत्ति का कवि था। उसने धार्मिक स्थलों का अनावश्यक रूप से विस्तार किया है[2]। मूल बृहत्कथा के अभाव में क्षेमेन्द्र के वर्णन की यथार्थता को सही रूप में आँकना जटिल समस्या है[3] पुरन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण विषय यह है कि न तो क्षेमेन्द्र ने ही सोमदेव की नकल मारी है और न ही सोमदेव ने क्षेमेन्द्र की। दोनों ने मूल बृहत्कथा की वाचनाओं या स्वयं मूल बृहत्कथा को ही आधार माना था[4]।

काश्मीरी लेखकों के समक्ष बृहत्कथा का हाड़-पंजर मात्र था। किंतु वसुदेव-हिण्डी और बृहत्कथाश्लोकसंग्रह इन दो रूपान्तर के रचयिताओं के समक्ष मूल बृहत्कथा का एक अत्यन्त रस-पूर्ण जीवन्त और अतीत की सामग्री से भरा हुआ स्वरूप था। काश्मीरी रूपान्तरों की त्रुटियों के कारण गुणाढ्य के मूल ग्रन्थ की वस्तु-संघटना और उसकी प्राणवता का उत्तराधिकार किस हद तक सुरक्षित है कहना कठिन है[5]।

क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी में कथासरित्सागर की भाँति लम्बकों में विभाजन हुआ है। लम्बक शब्द की व्युत्पत्ति मूल संस्कृत के शब्द रूप लम्भक से हुई है। एक विवाह द्वारा एक स्त्री की प्राप्ति "लम्भ" कहलाती थी और उसी कथा के लिए लम्भक शब्द प्रयुक्त हुआ है[6]। क्षेमेन्द्र का सारा ग्रन्थ १८ लम्बकों में विभक्त है :—१. कथापीठम् २. कथामुख ३. लावानक ४. नरवाहनदत्त जन्म ५. चतुर्दारिका ६. सूर्यप्रभः ७. मदनमञ्जुका ८. बेला ९. शशांकवली १०. विषमशील ११. मदिरावती १२. पद्मावती १३. पञ्चलम्वतः १४. रत्नप्रभा १५. अलंकारवली १६. शक्तियशोलम्बक १७. महाभिषेक १८. सूरतमञ्जरी। क्षेमेन्द्र ने ३३ ग्रन्थों का प्रणयन किया था :— १. अमृतरंगकाव्यम् २. अवसरसार ३. औचित्यविचारचर्चा ४. कनकजानकी ५. कलाविलास ६. कविकण्ठाभरणम् ७. चतुर्वर्गसंग्रह ८. चारुचर्या ९. चित्रभारत-

---

१. विन्टरनित्स, वही, पृ० ८१, पा० टि० २. २. वही, पृ० ३५२.

३. लाकोत के अनुसार क्षेमेन्द्र की काश्मीरी वाचना ने अधिक यथार्थ चित्रण किया है। परन्तु मानकोवस्की के अनुसार सोमदेव का चित्रण अधिक यथार्थ है—मिथिक जरनल, जि० ५, पृ० २६ और आगे।

४. वास, मिथिक जरनल, जि० ४, वही पृ० ८५ के अनुसार काश्मीरी वाचनाओं ने सीधे गुणाढ्य की मूल बृहत्कथा से अपने स्रोत को ग्रहण किया है।

५. वासुदेव शरण अग्रवाल, भूमिका, पटना, सं०, पृ० १७. ६. वही, पृ० ७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



नाटकम् १०. दर्पदलन ११. दसावतारचरितकाव्यम् १२. देशोपदेश १३. नीतिकल्पतरु १४. नीतिलता १५. पद्यकादम्बरी १६. पवनपञ्चाशिका १७. बृहत्कथामंजरी १८. बोधिसत्वादानकल्पलता १९. भारतमंजरी २०. मुक्तावली २१. मुनिमत-मीमांसा २२. राजावली २३. रामायणमंजरी २४. ललितरत्नमाला २५. लावण्यवती २६. वास्त्यायनसूत्रसार २७. विनयवल्ली २७. व्यासाष्टकम् २९. शशिवंशमहाकाव्यम् ३०. समयमातृका ३१. सुवृत्ततिलकम् ३२. देशोपदेशः ३३. नर्ममाला ।

---

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अध्याय ५

# धर्म

कथासरित्सागर में वर्णित धर्म तथा उनके स्वरूप की चर्चा करने से पूर्व विचार करना आवश्यक हो जाता है कि तत्कालीन धर्म में किन-किन प्रवृत्तियों ने मूल रूप से उसे अपने भयावह शिकंजों में कस रक्खा था ? प्राचीन धार्मिक प्रवृत्तियों का धीरे-धीरे लोप होता जा रहा था तथा धर्म ने प्रारंभिक मध्ययुग में अपना स्वरूप परिवर्तित किया। यद्यपि वेदों के प्रति अब भी आदर और स्नेह था परन्तु यदि ध्यान से तत्कालीन समाज का अध्ययन किया जाए तो यह निष्कर्ष प्रतिपादन करने में स्यात् आपत्ति न होगी कि वेदादि का अध्ययन और उसकी प्रतिष्ठा कुछ इसी प्रकार की थी जिसप्रकार संग्रहालय में रक्खी वस्तुओं के प्रति जिज्ञासु की होती है।[1] अल्बेरुनी के अनुसार ब्राह्मण वेदों का अर्थ समझे ही बिना कठंस्थ कर लेते थे और बहुत थोड़े ब्राह्मण उसका अर्थ समझने की कोशिश करते थे। ब्राह्मण क्षत्रियों को वेद पढ़ाते थे वैश्यों और शूद्रों को नहीं[2]। स्पष्ट है कि वेद का भार किसी प्रकार ब्राह्मणवर्ग ढो रहा था। वेद उस काल में गूढ़ अर्थों पर बिना विचार किए ही कंठस्थ किए जाते थे। वे लिखे नहीं जाते थे। सम्भव है कि इससे वेदों के कतिपय अंश लुप्त अथवा विस्मृत भी हो गए हों।

यह युग धर्म के क्षेत्र में विभिन्न नवीन प्रवृत्तियों, नाना प्रकार के सम्प्रदायों, उपसंप्रदायों, तन्त्र-मन्त्र और यहाँ तक कि वासना-प्रधान विचारों का भी युग था। इतने अधिक सम्प्रदायों के होते हुए भी उनमें परस्पर न तो किसी प्रकार का वैमनस्य था और न ही डाह की भावना।[3] उनमें से कुछ तो एक दूसरे के पूरक भी थे। दसवीं शताब्दी के अरब पर्यटक के अनुसार भारत में उस समय बयालिस धर्म प्रचलित थे[4]। सम्भवतः बयासिल अंक से उसका तात्पर्य भारत में प्रचलित तत्कालीन अनेक धर्मों से रहा होगा। अरब पर्यटक अलइदरीसी ने ग्यारहवीं शती में भारत का भ्रमण किया था। इसके अनुसार कुछ सृष्टिकर्ता के अस्तित्व को स्वीकारते थे परन्तु ऋषि-महर्षियों को नहीं। कुछ दोनों की सत्ता को नहीं स्वीकार करते थे। कतिपय सम्प्रदाय पाषाण-प्रतिमा में जगत्-नियंता-शक्ति का अवलोकन करते थे। अन्य लोग पवित्र पाषाण-खण्डों की उपासना करते थे और उस पर तेल और घी लगाते थे। कुछ लोग अग्नि की

१. साचो, अल्बरुनीज़ इण्डिया, जि० १०, पृ० १२८. २. वही, पृ० १२५.
३. चि० वि० वैद्य, हिस्ट्री आफ मिडिएवल हिन्दू इण्डिया, जि० २, पृ० १९६.
४. नादवी, भारत और अरब के संबंध, पृ० ७१.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



उपासन करते थे और उसकी प्रचण्ड ज्वाला में शरीर को भस्म कर देना महान् धार्मिक कर्त्तव्य समझते थे। अन्य वर्ग सूर्य की आराधना करता था और वह उसे जगत् का नियामक, पालक एवं संचालक मानता था। कुछ लोग वृक्ष की उपासना करते थे तथा कुछ सर्पों की। वे उन्हें पालते एवं खिलाते थे तथा इस कर्त्तव्य को श्रेष्ठ समझते थे। अन्ततः समाज में एक ऐसा भी वर्ग था जो अपने को इन सब कार्यों के भार से मुक्त रखता था और वह सब की सत्ता को अस्वीकार करता था[1]। यह एक ऐसे पर्यटक का वर्णन है जो स्वभाव से ही एकेश्वरवादी था और मूर्तिपूजा का प्रबल विरोधी था।[2]

वस्तुतः भारत में बहुत अधिक धर्म नहीं थे प्रत्युत ये सब एक ही धर्म की उपासना-पद्धति के विभिन्न स्वरूप थे। सब धर्मों ने मुक्त कण्ठ से एक ही धर्म को स्वीकार किया। वह है हिन्दू धर्म। प्रारंभिक मध्ययुगीन धर्म की एक प्रमुख विशेषता विभिन्नता में एकता है। भारत ने इस प्रकार की धार्मिक एकता और अखण्डता स्यात् कभी नहीं देखी थी। यह युग भारत के धार्मिक इतिहास में महत्त्वपूर्ण युग था। भारत इसी युग में एक धर्म के छत्र के नीचे विश्राम की जुगाली कर रहा था।[3]

जनता तथा राजकीय कर्मचारियों को पूर्ण स्वन्त्रता थी कि वे किसी भी देवी-देवता की आराधना मुक्तभाव से कर सकते थे। साहित्यिक साक्ष्यों[4] के अतिरिक्त प्रबल अभिलेखीय साधनों के माध्यम से यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया जा सकता है[5] कि ब्राह्मण, बौद्ध और जैनधर्म साथ-साथ एक ही प्रागंण में फले-फूले तथा पनपे। इस प्रकार की धर्म-सहिष्णुता की प्रवृत्ति भारत से प्रस्फुटित हुई।[6] मुसलमानों ने अपनी पाशविक प्रवृत्तियों का भयावह नर्तन असंख्य हिन्दू-मन्दिरों तथा मूर्तियों का भंजन करके किया।[7] इसके प्रतिकूल हिन्दुओं का दृष्टिकोण उदार एवं समन्वयवादी था। अनेक हिन्दू राजाओं ने मसजिद बनावने के लिए आज्ञा दी[8]। मुहम्मद बिन साम की

---

१. चि० वि० वैद्य, हिस्ट्री आफ मेडिवल हिन्दू इण्डिया' में उद्धृत जि० २, पृ० १९६–२०५.
२. वही, पृ० १९६. ३. वही, पृ० १९६. ४. प्रजापति-स्मृति, ९५.
५. ए० इ०, जि० ४०, पृ० १४५ ; १६६–८. ए० इ० २६, ८७. वही, ४, १२५. वही, ११, २०–४. वही, १८, १३०. वही, १४, ३२४–३०. वही, २६, ५. वही, ७, ९६. वही, १२, २४. वही, ११, १८१.
ज० रा० ए० सो०, १९०५, पृ० ६१६, नागपुर म्यूजियम रिकार्ड, सारनाथ रिकार्ड आफ कुमारदेवी. ज० ए० सो० बं० (१९००) जि० ६९, पृ० ६१–६९. इ० हि० क्वा०, ५, पृ० २६. का० इ० इ०, जि० ४, फलक २, पृ० ३७७.
६. वासुदेव उपाध्याय, सो० रि० क० ना० इ०, पृ० २०६.
७. इलियट, हिस्ट्री, जि० १, पृ० १७०, १७६, १८२. ८. वही, पृ० २७ और ८८.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



मुद्राओं पर शिव के वाहन नन्दी ( बैल ) की आकृति किसी भी प्रकार इस मुसलमान शासक की धर्मसहिष्णुता का प्रतीक नहीं कही जा सकती[1]। यह तो उसकी एक राजनीतिक चाल थी क्योंकि उसी सुल्तान ने बाद में अपने सिक्कों पर से लक्ष्मी तथा शैव धर्म के प्रतीक नन्दी को विनष्ट करा दिया।[2] सहिष्णुता तथा विश्व-बन्धुत्व के पोषक हिन्दुओं ने इस्लाम के प्रति अशोभनीय कार्य अथवा संकुचित मनोवृत्ति का परिचय किसी रूप में भी नहीं दिया। परिणाम-स्वरूप इस्लाम ने हिन्दुओं को कुछ देने के स्थान पर उससे ही कुछ ग्रहण किया क्योंकि हिन्दुओं ने तुर्कों के विध्वंसकारी मनोवृत्तियों को देखकर उनके धर्म से विमुख ही होना श्रेयस्कर समझा।

मोक्ष-प्राप्ति के लिए कतिपय सम्प्रदायों ने कर्ममार्ग, कुछ ने ज्ञान-मार्ग तथा कुछ ने भक्ति-मार्ग को अपनाया। मीमांसाकारों ने ज्ञान-मार्ग अथवा धर्म का प्रयोगवादी रूप उत्सुकता के साथ अवलम्बन कर लिया। इन्होंने आत्मिक पक्ष को पूर्णतः छोड़ दिया है।[3] कर्म-मार्ग द्वारा चिरन्तन सत्य की खोज का सिद्धान्त प्रतिपादित करने वाले ऋषि-महर्षियों की अवधारणा को नास्तिक बौद्ध धर्म ने भी उसे परीक्षण कर अपने धर्म में समाहित किया[4]। कर्मवाद के सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को उसके कर्मों का फल जीवनकाल में तथा अगले जन्म में मिलता है। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार उसका पुनर्जन्म उसके कर्म समुच्चय के योग का प्रतिफल होता है। ज्ञान, भक्ति और कर्म के मार्ग का उद्देश्य परम सत्य का उद्घाटन करना है। धर्म का प्रथम सोपान आत्मा की भूख है। इस पिपासा की शान्ति के लिए साधक कर्म-मार्ग का प्रश्रय लेता है। दूसरा सोपान भगवान् की प्राप्ति के लिए उत्कट आकांक्षा है जिसकी सिद्धि के लिए वह भक्तिमार्ग का सम्बल अपनाता है। इसके लिए उसके हृदय में उत्कट अभिलाषा, जागृत होती है। इसकी तुष्टि के लिए वह पूजा तथा सतत् स्मरण का आश्रय लेता है। साधक का तृतीय सोपान, जो कि ज्ञान-मार्गीय है, उसे परम सत्ता के अस्तित्व का बोध करा देता है।[5] प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत के सनातन धर्म में इन तीन सोपानों का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।

बौद्ध धर्म की भाँति मठ-निर्माण-प्रथा तत्कालीन हिन्दू-धर्म की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इस युग में बड़े-बड़े मठों की स्थापना हुई। इसके साथ मन्दिर, बाग तथा व्याख्यानशाला सान्निध्य रहा करते थे। इसी काल से ही हिन्दू धर्म में सामन्तवादी

---

१. उपाध्याय, वही, पृ० २०७. २. राइट, दी क्वाइनेज आफ सुल्तान्स आफ देहली, पृ० ६–७; वही, फलक १, नं० ४ और १०. वही, पृ० ६७. वही, फलक १ नं० ३७ ३. भागवत कुमार गोस्वामी, 'दी भक्ति कल्ट इन एंश्येण्ट इण्डिया', द्वितीय संस्करण ( १९६५ ) पृ० २२. ४. वही, पृ० २५.
५. भगवानदास, पृ० २४–२५. 'द कल्चरल हेरीटेज आफ इण्डिया,' जि० ४, रामकृष्ण मिशन, कलकत्ता ( १९५६ ).

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



परम्परा ने प्रवेश किया जिसने न केवल समाज को ही तथापि धर्म के शुचितर प्रांगण को व्यभिचार का अड्डा बना दिया। मन्दिर में धार्मिक वेश्यावृत्ति का प्रचलन धड़ल्ले के साथ धर्म की आड़ में हो रहा था[1]। पारस्परिक सम्पर्क के फलस्वरूप बौद्ध धर्म ने हिन्दू धर्म को रथयात्रा की प्रथा प्रदान की। हिन्दू धर्म में व्रतों का प्रचलन जैनधर्म की देन है। एकादशी, जन्माष्टमी, देवशयनी, दुर्गाष्टमी, ऋषिपञ्चमी, देवप्रबोधिनी, गौरी-तृतीया, वसंतपञ्चमी तथा अक्षयतृतीया आदि पर व्रत का उल्लेख अल्बरुनी ने भी किया है[2]। उसके विवरण में स्त्री-पर्वों का भी उल्लेख मिलता है[3]।

स्पर्श्यास्पर्श्य को शुद्धाशुद्ध के रूप में ग्रहण कर लेने की सबल प्रवृत्ति ने विशाल हिन्दू धर्म को संकीर्णता के शिकंजों में शनैः शनैः कस लिया[4]। इस्लाम के भयावह आक्रमणों के झंझावातों के कारण ब्राह्मण धर्म कठिनता के साथ मरणासन्न उसासें भर रहा था।

कतिपय इतिहासकार मुसलमानों के आक्रमण को विदेशी आक्रमण मानने के पक्ष में नहीं हैं। वास्तविक तथ्यों के पुनर्मूल्यांकन के पश्चात् इसकी दोहाई देना ऐतिहासिक भूल होगी। मुसलमानों के आक्रमण का स्वरूप इङ्गलैण्ड के सैक्सन और नारमन के आक्रमणों से सर्वथा भिन्न था। इङ्गलैण्ड में सैक्सन और नारमन जैसी कोई चीज़ बाद में शेष नहीं रह गई थी। परन्तु इसके प्रतिकूल मुसलमानों का स्वरूप भारतीय संस्कृति में पृथक् रूप में स्पष्ट दीखता है। मुसलमानों ने भारतीय जनता को सर्वप्रथम "हिन्दू" नाम की संज्ञा से अभिहित किया। यह स्वयं में प्रबल प्रमाण है कि उनके हृदय में अलगाव की दृढ़ भावना प्रारम्भ से ही सन्निहित थी[5]।

हिन्दू धर्म की लोकप्रियता में इस्लाम खलल डाल रहा था। इस कारण हिन्दुओं ने स्वयं को इससे अलग रक्खा। अपनी शुचिता एवं पवित्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए कठोर यम तथा नियमों की संरचना की। इस परम्परा के निर्वाह का सुन्दर उदाहरण मुगल-कालीन हिन्दी के अष्टछाप के कवियों की कविताओं में मिलता है[6]। उन्होंने मुसलमानों को "म्लेच्छ" कहा है। हिन्दू संस्कृति पर परोक्ष रूप से इस्लाम का प्रभाव कुछ भी नहीं पड़ा क्योंकि उनकी विध्वंसकारी धार्मिक नीति के

---

१. ज० ओ० इ०, जि० १६, सं० ३ ( मार्च, १९६७ ), पृ०. २१६–२२२.

२. साचो, वही, पृ० १२८. ३. चि० वि० वैद्य, जि० ३, पृ० ४३९–४४६.

४. गौ० ही० ओझा, 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति', पृ० २६–२८.

५. रमेश चन्द्र मजूमदार, 'द स्ट्रगल फार इम्पायर', पृ० ३९८.

६. ईरानी शब्दावली में 'ह' शब्द 'स' के लिए प्रयुक्त होता है जैसे हप्त सिन्धु 'सप्त सिन्धु' के लिए। उन्होंने सिन्धु के लिए हिन्दू का प्रयोग किया है। ग्रीक और रोमन ने 'ह' शब्द को त्याग दिया तथा इन्डोई आदि अनेक शब्द बनाए इसी से हिन्दुस्तान के लिए आधुनिक शब्द 'इण्डिया' बना है देखें–मजूमदार, वही, पृ० ४६९, पा० टि० २।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



कारण उन्होंने हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियों तथा उनके देवालयों को बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट किया। अतः हिन्दुओं की मनोवृत्ति इस्लाम से शिक्षा लेने के बजाय कुढ़न की हो गई थी।

यह काल हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान एवं अभ्युदय का था। प्राचीन भारतीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के विविध पक्ष पुराणों की विशाल मञ्जूषा में सुरक्षित हैं। इन्हीं पुराणों का पुनः संस्करण तथा परिवर्द्धन प्रारम्भिक मध्ययुगीन भारत में हुआ[1]।

पूजा के लिए व्रत, तीर्थयात्रा, कठोर शारीरिक यातनाओं से अर्जित तप, मंत्रोच्चार, जप तथा दान आदि भारतीय साधना-पद्धति के महत्त्वपूर्ण अंग बन गए थे। इन्हीं तत्त्वों को उपासना का प्रमुख अवयव माना जाने लगा। उनका उद्देश्य इसके द्वारा भगवान् को प्रसन्न करना था। साथ ही साथ भक्तिमार्ग में नाम शक्ति की परम्परा ने प्रवेश किया। फलतः विष्णु के सहस्र नाम हो गए। शिव को महादेव, सदाशिव, शिव, नीलकण्ठ आदि नाम से स्मरण किया जाने लगा[2]। इन सबके अतिरिक्त भक्तिमार्ग के तादात्म्य की भावना का प्राधान्य हो गया। हम उसके हैं वह हमारा है हम उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते। वही हमें सत् चित् आनन्द तथा सत्यम् शिवम् सुन्दरम् को प्रदान करेगा। यह परम सत्ता के प्रति सही सान्निध्य है तथा सही मित्रता है[3]।

प्रारम्भिक मध्ययुगीन भारत में मन्दिर बनवाने की परम्परा अधिक लोकप्रिय हो गई थी। राजा, रानी, मंत्री तथा धनवान लोग अपने प्रिय आराध्य के लिए मन्दिर-निर्माण करवाते थे[4]। मन्दिरों के वैभव तथा सम्पन्नता ने विदेशी आक्रमणकारियों का ध्यान आकृष्ट किया। मुल्तान के सूर्य-मन्दिर में धन-प्राप्ति के लालच से अरब-शासकों ने उसमें उपासना की छूट दे रक्खी थी क्योंकि उस पर का मूल्यवान् चढ़ावा उन्हें मिलता था। कन्नौज के प्रतीहार-शासकों ने सुगमता के साथ मुल्तान पर विजयश्री प्राप्त कर ली थी परन्तु उन्होंने जब यह धमकी दी कि यदि हिन्दू लोग लौट नहीं जाते तो मुल्तान के सूर्य-मन्दिर की मूर्ति तोड़ दी जाएगी। विजयी हिन्दू धर्म के कारण

---

१. ब्रजेश्वर वर्मा, 'सूरदास', पृ० २२५. धीरेन्द्र वर्मा, 'सूरदास और अष्टछाप के कवि,' पृ० ११–१५ सूरदास एक विश्लेषण, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय ( दिसम्बर, १९६० ) तृतीय संस्करण।

२. चिन्तामणि विनायक वैद्य, 'हिस्ट्री आफ मिडिएवल हिन्दू इण्डिया', जि० २, पृ० १९७.

३. वासुदेव शरण उपाध्याय, सोशियो रिलिस कण्डीशन ऑफ़ नार्थ इण्डिया, पृ० १९७.

४. भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति भज् शब्द से हुई है।

५. चि० वि० वैद्य, वही, जि० २, पृ० १९७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



विजित देश को छोड़ कर चले गए। यह घटना इतिहास में उदात्त धर्म के प्रति उनकी आस्था का प्रतीक है[1]। आर्य और अनार्य दोनों ही देवी-देवताओं के मन्दिर निर्मित हुए तथा उनमें विचित्र समन्वय स्थापित हुआ। स्कन्द पुराण में शिव महादेव के ६८ मन्दिरों का उल्लेख हुआ है[2]।

भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की उपासना ने धर्म के क्षेत्र में नूतन आराधना-विधि तथा दर्शन के क्षेत्र में नवीन दार्शनिक अभिव्यक्ति दी। उसे तकनीकी भाषा में "आगम" कहा जाता था। शैवागम इस काल का प्रसिद्ध धर्म था। इस तथ्य की पुष्टि अभिलेखों से होती है[3]।

हिन्दू धर्म में बौद्ध एवं जैन धर्म के प्रवेश ने शूद्रों को भी धर्म की प्रतियोगिता तथा उसके अनुष्ठानों में भाग लेने का अवसर प्रदान किया[4]। यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि वेदों में वर्णित तप तथा संन्यास के नियमों का पालन शूद्र अब भी नहीं कर पा रहा था[5] परन्तु आगमों में वर्णित उपासनाविधि का पालन वह बाहुल्यता के साथ कर रहा था। वास्तव में अनार्य शूद्र शारीरिक यातना एवं कष्ट की प्रतियोगिता में ब्राह्मण आर्यों को मीलों पीछे पिछाड़ चुका था। अरब पर्यटक सुलेमान के अनुसार मुल्तान के हाट में एक यती १६ वर्ष तक भगवान् भुवनभास्कर की ओर मुख किए हुए खड़ा रहा था। कभी-कभी उसको भोजन में केवल जंगली झाड़ी तथा पेड़ों की जड़ें मिलती थीं। कुछ दिगम्बरी अवस्था में परिभ्रमण किया करते थे[6]। इस प्रकार के पञ्चरात्र आगम, शैवागम, सौरागम, विनायक आगम, देवी आगम तथा वैष्णव आगम थे[7]।

मूर्तिपूजा की प्रधानता शनैः शनैः बढ़ती गई क्योंकि अग्निहोत्र की वैदिक परम्परा का निर्वाह दूभर हो गया था। इस कारण मूर्तियों का प्रचलन बढ़ता गया। तथा उनमें प्राण-प्रतिष्ठा की जाने लगी। अब भी यज्ञों में बलिदान की परम्परा प्राचीन वैदिक शुचिता की महत्ता रखती थी। किसी पवित्र अवसर पर राजा यज्ञ सम्पादित करता था। अब यह संग्रहालय की वस्तुमात्र रह गई थी। दैनिक जीवन से इसका प्राचीन अन्योन्याश्रित सम्बन्ध लगभग टूट चुका था। यज्ञ के विशेष अवसरों पर वह अग्रहारदान दिया करता था[8]। विशेषता तो यह थी कि दानी सम्राट् जैन मतावलम्बियों को भी अग्रहार प्रदान करता था तथा ऐसे अवसर पर वह हिंसक यज्ञों

---

१. गौ० ही० ओझा०, वही, पृ० २६–२८. २. स्कन्द महापुराण, नागर खण्ड, अध्याय १०७.
३. ओझा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ० २६–२८. ४. वही, पृ० २६–२८.
५. वही, पृ० २६–२८. ६. इलियट और डाउसन, जि० १, पृ० ६७.
७. ओझा, वही, पृ० २६–२८. ८. ए० इ०, ३, पृ० ३२. ए० इ०, १०, ६७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



का सम्पादन कराता था। यह तत्कालीन भारतीय संस्कृति की सहिष्णुता का बड़ा उदाहरण है। अहिंसा के प्रबल प्रवर्तक तथा समर्थक जैन मतावलम्बी रक्त-रंजित हिंसक यज्ञों से सम्पन्न अग्रहार दान को सहर्ष स्वीकार करता था, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह प्रवृत्ति प्रारंभिक मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति की महत्त्वपूर्ण देन है। वैदिक धर्म के प्रति तत्कालीन हिन्दू समाज में श्रद्धा एवं आदर की भावना थी। इस धर्म की परम्परा का निर्वाह एक व्यवसाय के रूप में हो रहा था। अब भी संध्या, यज्ञ तथा श्राद्ध के रूप में प्राचीन वैदिक धर्म वैदिक युग की भाँति घर-घर प्रचलित था[1]।

कथासरित्सागर कालीन प्रचलित नाना प्रकार के धर्मों तथा विभिन्न दार्शनिक विचारों ने मुक्तकण्ठ से पुर्नजन्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। सभी धर्मों ने पाप ( असद् कार्य ) के लिए दण्ड के रूप में यातना तथा पुण्य ( सद्कार्य ) के लिए पारितोषिक के रूप में शुभ फल की उपलब्धि दूसरे जीवन में स्वीकार की है[2]।

प्रारम्भिक मध्ययुगीन भारत के धर्माकाश में सघन मेघ की भाँति तंत्रयान छाया हुआ था। इससे बौद्ध तथा वैष्णव धर्म पूर्णतः अच्छादित था। यह साधरणतः प्रचलित धारणा है कि तांत्रिक बौद्धयान की उत्पत्ति बंगाल और असाम में हुई थी[3]। यद्यपि इसकी यथार्थता पर इतिहासकारों ने प्रश्नवाचक चिह्न लगाना प्रारम्भ कर दिया है[4]। उदात्त उद्देश्यों वाले बौद्ध धर्म में मिथ्याडम्बर तथा वासनात्मक प्रवृत्तियों का प्रवेश हुआ। बौद्ध धर्म के वज्रयान में उपाय और प्रज्ञा, तथा ब्राह्मण धर्म में शिव और शक्ति :ने प्रवेश किया जिसने पंचमकारों की साधना से चरम लक्ष्य की प्राप्ति चाही थी। उच्च आदर्शवादी बौद्ध धर्म ने अपनी मृत्यु स्वयं अपने ही हाथों की क्योंकि जब तक इसके आदर्श सामान्य मानवीय धरातल से उच्च रहे तब तक यह फला-फूला। जब इसने स्वयं के उदात्त आदर्शों को ठुकराकर अपने को लोकप्रिय बनाने की चेष्टा की तो उसे सामान्य जनता के मनो-भावों एवं उनके उद्वेगात्मक मनोवृत्तियों को संतुष्ट करना पड़ा। फलतः धर्म में व्यभिचार का प्रवेश वामाचार मार्ग के द्वारा हुआ। यद्यपि इनके गुरुओं के अनुसार इन सब काम-साधनाओं का उद्देश्य सहज ( Nativity ) की प्राप्ति है जहाँ न तो जन्म होता है और न मृत्यु[5]।

बौद्ध धर्म विकृत होकर वज्रयान संप्रदाय के रूप में देश के पूर्वी भागों में जन-

---

१. ओझा, वही, पृ० २६–२८. २. ओझा, वही, पृ० २८.

३. इ० हि० क्वा०, जि० ३, पृ० ७४४. ज० बि० उ० रि० सो०; जि० १४ ( १९२८ ), पृ० ३४१. बी० सी० ला० वाल्यूम, भाग १, कलकत्ता ( १९४५ ), पृ० ३५४.

४. एल० एम० जोशी, 'ओरिजनल होम आफ तांत्रिक बुद्धिज्म' जरनल आफ दी ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, जि० १६, मार्च ( १९६७ ) नं० ३, पृ० २२३–२३२.

५. सुकुमार सेन, 'दी नाथ कल्ट', पृ० २८८ 'दी कल्चरल हेरीटेज आफ इण्डिया, जि० ४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



प्रिय हुआ[1]। इन बौद्ध तांत्रिकों के बीच वामाचार अपनी चरम सीमा को पहुँचा। ये सिद्ध कहलाते थे तथा बिहार से असम तक फैले हुए थे। वज्रयानियों की योगतंत्र—साधनाओं में मद्य तथा कामिनी का—विशेषतः डोमिनी, रजकी आदि का—अबाध सेवन एक आवश्यक अंग था। सिद्ध कणहपा डोमिन का आह्वान—गीत इस प्रकार करते हैं :—

सगर बाहिरे डोंबी तोहरि कुड़िया छइ। छोइ जाइ सो बाह्य नाडिया॥
आलो डोंबि ! तोए सम करिब म साँग। निष्पिण कणह कपाली जोइ लाग॥
एक सो पदमा चौषट्ठि पाखुडो। तहि चढ़ि नाचअ डोंबी बापडी॥
हालो डोंबी ! तौ पुछमि सदभावे। अइससि जासि डोंबी काहरि नावे॥

उपनिषद् में तो ब्रह्मानंद के सुख के परिणाम का बोध कराने के लिए उसे सहवास-सुख से सौगुना कहा था पर वज्रयान में निर्वाण के सुख का स्वरूप ही सिमिट कर सहवास-सुख हो गया था। शक्तियों-सहित देवताओं के 'युगनद्ध' स्वरूप की भावना चली और उनकी नग्न मूर्तियाँ सहवास की अनेक अश्लील मुद्राओं में बनने लगीं जो कहीं-कहीं अब भी मिलती हैं ( उदाहरणार्थ खजुराहो, उड़ीसा की कला )। निम्न वर्णों की स्त्रियों को लेकर मद्यपान के साथ अनेक वीभत्स विधान वज्रयानियों की साधना के प्रधान अंग थे। सिद्धि प्राप्ति करने के लिए किसी स्त्री का ( जिसे वज्रयान की तकनीकी शब्दावली में शक्ति, योगिनी या महामुद्रा कहते थे ) संभोग या सेवन आवश्यक था।

भले ही इस मार्ग की स्थापना कितने ही उदात्त आदर्शों तथा गम्भीर चिन्तन को लेकर क्यों न हुई हो परन्तु इसके द्वारा अनैतिक कुटिल कुटेवों को प्रश्रय एवं बढ़ावा मिला। इसे समाज और धर्म के ढहते हुए स्वरूप का प्रतीक ही कहा जायगा।

इस काल में ऐसे उदाहरणों की बहुलता है जहाँ एक ही वंश के शासक किसी इष्ट देव को अपनाया तथा उसके पुत्र ने किसी दूसरे प्रतीहार शासकों के वंश-वृक्ष में प्रथम परम वैष्णव था, दूसरा परम महेश्वर तथा तीसरा परम आदित्य-भक्त यह उदाहरण निःसन्देह कथासरित्सागर-कालीन भारत में धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक है। इस समय न तो एक दूसरे सम्प्रदाय में ईर्ष्या और वैमनस्य की भावना थी और न ही उनके आराध्य देवों की उपासना में परस्पर मतभेद था[2]।

यद्यपि अग्रहारदान की परम्परा बहुत प्राचीन है, किन्तु कथासरित्सागर-कालीन समाज में श्रीमानों के मध्य इस परम्परा का अधिक प्रचार हुआ। अग्रहारदान

---

१. एल० एम० जोशी, वही, पृ० २२३-३२.

२. चि० वि० वैद्य; 'हिस्ट्री आफ मेडिएवल हिन्दू आफ इण्डिया, जि० २, पृ० १९६-२०३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



धर्म का एक अंग समका जाता था।[1] धार्मिय संस्थाओं को भारी परिमाण में भूमि अग्रहार के रूप में दी जाती थी। इसका उद्देश्य मन्दिरों के संगठन एवं उनकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता था[2]।

तंत्रयान के बढ़ते हुए सिद्धान्तों एवं कर्मकाण्डों के कारण धर्म के पूर्वकालीन उदात्त स्वरूप में मूलभूत परिवर्तन हुए[3]। यद्यपि दक्षिण आदि के कुछ स्थानों पर तन्त्रयान अधिष्ठित नहीं हो पाया तथापि उसका क्रमशः प्रसार होने लगा था।

यह धर्म के क्षेत्र में बड़े-बड़े मन्दिरों तथा बाह्याडम्बर का काल था। पौराणिक धर्म के विस्तार के कारण शिव, विष्णु तथा उनके अन्य सहयोगी देवी देवताओं के मन्दिर समग्र भारत में बने। कठोरकर्मी, सोम-सुधा प्रिय, मांस-भक्षी इन्द्र तथा उसके सहयोगी वैदिक देवताओं का स्थान नवीन पौराणिक देवताओं ने ले लिया जिन्हें विश्राम के लिए नरम गद्दे चाहिए, पीने और खाने के लिए मधुर भोग, फल एवं दुग्ध। उनके मनोरंजनार्थ सुन्दरी गणिकाओं का नर्तन होता था[4]। ऐसी वेश्याएं जो मंदिरों में नृत्य तथा प्रतिमा के शृंगार का कार्य करती थीं उन्हें गणिका के स्थान पर देवदासी कहा जाता था[5]। सोमदेव-भट्ट ने कथासरित्सागर में देवदासियों का उल्लेख किया है[6]। प्रारम्भिक मध्ययुगीन भारत के समसामयिक साहित्य (विदेशी[7] एवं स्वदेशी[8]) तथा अभिलेखिक साधनों[9] के आधार पर

---

१. ए० इ०, १५, ३०७ और ३११ इ० ए०, १५, ८०४ का० इ० इ० ४, इन्ट्रोडक्शन।

२. वासुदव उपाध्याय, 'गुप्त-साम्राज्य का इतिहास' पृ० २८.

३. रमेश चन्द्र मजूमदार, 'द स्ट्रगल फार इम्पायर, पृ० ४०४.

४. पी० टामस, 'इण्डियन वोमन थ्रू दी ऐजेस, पृ० २३९-२४०.
एशिया पब्लिशिंग हाउस, लन्दन, १९६४.

५. भक्ति प्रसाद मजूमदार, 'सोशियो एकनामिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया, पृ० ३७१, कलकत्ता १९६०.

६. क० स० सा० १२, ७८. १२, ८०, १०१. १२, १०४. १५, ७६.
५७, ७५–७८. ५२, १७०–३६९.

७. ऐंशेण्ट एकाउण्टस आफ इण्डिया एण्ड चाइना, पृ० ८८. स्ट्रेबो, १२, ५५९.

८. बृहत्कथामञ्जरी, २, गुच्छा, २, ७८, ३, गुच्छा, १, ३३ राजतरंगिणी, ४, ४२१.
४, ४३३–४३४ ५, ४२, ४३, ४५, १२६. ६, ८५६–८५७ ७, ८२ ८, ७०६-७१०.

९. ए० इ० १३, ३६, श्लोक सं० उ० पृ० ४१, वही, १, ६१–६६ श्लोक सं० १७.
वही, १, ३३०, श्लोक सं० ३०. वही, ६, १९८-२०५.
वही, १, श्लोक सं० २९, पृ० २०६. वही, ११, २६.
ज०रा०ए०सो०; जि० ६६, भाग १, पृ० ११. आ० स० इ०; जि० ११ पृ० १.
वही; १९०८–९, पृ० ११९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



यह कहा जा सकता है कि देवदासियों की परम्परा भारत में सर्वत्र व्याप्त थी[1]। मठाधीशों द्वारा अपने आराध्य देव की उपासना के लिए प्रबन्ध राजदरबार के ठाट-बाट का स्मरण दिलाता था[2]।

---

१. अपर्णा चट्टोपाध्याय; 'दी इन्स्टीट्यूशन आफ देवदासी एकार्डिंग टू दी कथासरित्सागर, पृ० २१६–२२२. जरनल आफ दी ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, जि० १६, नं० ३. मार्च (१९६७). एस० एन० प्रसाद, अन्वेषणा, वर्ष १, अंक ४, १९६८, उदयपुर, पृ० २६०–२७२.

२. पी० टामस, 'इण्डियन वोमन थ्रू दी एजेस' पृ० २३६–२४०. एशिया पब्लिशिंग हाउस, लन्दन, ( १९६४ ) पृ० २३६–२४०.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अध्याय ६

# जाति एवं व्यवसाय

प्राचीन भारतीयों के सामाजिक संघटन की सबसे प्रमुख विशेषता वर्ण-व्यवस्था थी। इसके सुदृढ़ आधारों पर ही हिन्दू समाज का विशाल कलेवर आसीन था। वह प्राचीन समय से ही अनेक सामाजिक संक्रातियों को झेलते हुए पर्याप्त समय तक उसी प्रकार सुदृढ़ बना रहा। भारत के नास्तिकवादी धर्मों ने उसे विशेष रूप से आघात पहुँचाने की चेष्टा की। बौद्ध और जैन धर्मों ने ईसा से लगभग छह सौ वर्ष पहले से ही वर्णाश्रम व्यवस्था के विरोध में स्वर उठाया था परन्तु इसे विशेष हानि उनसे नहीं हो पायी थी। कालान्तर में हिन्दू-धर्म के पुनरभ्युदय के साथ-साथ संस्था पुनः प्राणवान हो उठी[1]। प्रसिद्ध चीनी पर्यटक य्वान् च्वाङ्ग के वर्णनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसके समय में भी वर्ण-व्यवस्था भारत में भलीभाँति प्रचलित थी[2]। इस काल की जाति-व्यवस्था की विशेषता यह थी की जाति जन्म के आधार पर निर्धारित होने लगी[3]। सुलेमान ने भी जाति के जन्मगत निर्धारण कर उल्लेख किया है[4]।

कथासरित्सागर के काल के आस-पास यह प्रवृत्ति स्पष्ट दखायी पड़ने लगती है कि इस समय कतिपय नवीन सामाजिक नियम एवं मान्यताएँ निर्मित हो चली थीं। एक ओर तो जाति-प्रथा में संकीर्णता आ रही थी। नवीन जातियाँ तथा उपजातियाँ बन रही थीं तो दूसरी ओर प्राचीन धर्मशास्त्रकारों द्वारा निर्दिष्ट जाति-व्यवसाय-संबंधी परम्परित नियमों के अनुसरण के क्षेत्र में शिथिलता के भी उदाहर द्रष्टव्य होते हैं। ब्राह्मणों में ही क्षात्र ब्राह्मण; वैश्य ब्राह्मण, शूद्र ब्राह्मण यहाँ तक कि निषाद ब्राह्मण तक का उल्लेख है[5]। इस समय प्राचीन वर्ण-व्यवस्था के स्वरूप में परिवर्तन दिखाई पड़ता है। इनके कारणों की समीक्षा करना आवश्यक है। प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत के आर्थिक ढाँचे ने इन जातियों को विजातीय कर्म सम्पादन के लिए बाध्य किया होगा। यह निःसन्देह महत्त्वपूर्ण विषय है कि उन व्यवसायों के करने से भी इन जातियों की समाज में प्रतिष्ठा जन्म के ही आधार पर बनी रहती थी। अधिकांश ब्राह्मणों ने प्राचीन परंपरागत मार्ग का ही पालन

---

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, म० भा० सं०, पृ० ३२.

२. वाटर्स; य्वान च्वाङ्ग, जि० १, पृ० १६८.

३. वही, पृ० १६८. ४. इलियट और डाउसन, जि० १, पृ० ६, २०.

५. अत्रि, श्लोक ३७३–३८३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



किया। प्राचीन हिन्दुओं में अशौच के प्रति घृणा की। उन्होंने अपवित्र कार्यों के करनेवालों को समाज से बहिष्कृत किया था[1]। इस कोटि में डोम, चण्डाल प्रमुख थे। अपरार्क ब्रह्मवैवर्त पुराण का आश्रय लेते हुए कहता है कि निम्न व्यवसाय वालों के हाथ का भोजन नहीं लेना चाहिए। इस कोटि में वह गायक, कलाकार, वेष, शल्यचिकित्सक, स्वर्णकार, लोहार, अस्त्रनिर्माता, दर्जी, धोबी, मादक द्रव्यों का विक्रेता तथा निर्माता, तेली, भड़ुआ, बढ़ई, ज्योतिषी, ग्रामीक, कुम्भकार, मल्ल, टोकरी बनाने वाले, सूदखोर तथा ग्राम पुरोहित का विशेष रूप से उल्लेख करता है[2]। प्रारंभिक मध्ययुग के नीतिकारों ने वैद्य, शल्यचिकित्सक, अस्त्र-शस्त्र निर्माता, रथकार को जाति-व्यवस्था से बाहर रक्खा है। अपरार्क का यह विभाजन पूर्णरूप से सामाजिक व्यवस्था के लिए घातक सिद्ध हुआ होगा। जो समाज के महत्त्वपूर्ण अंग थे उन्हें ही हेय दृष्टि से देखने का प्रयत्न निश्चय ही जनकल्याण के लिए बाधक सिद्ध हुआ होगा[3]। संभवतः ऐसा विश्वास था कि जाति पूर्व जन्म से कर्म के अनुसार परिवर्तित होती रहती है[4]। एक कथा में इस प्रकार की एक घटना का उल्लेख है। किसी ब्राह्मण ने दुष्ट भावना के कारण धीवरों के कुल में जन्म लिया[5] था। उस कथा से यह तो अवश्य ही स्पष्ट हो जाता है कि सद्कर्म की प्रधानता को सिद्धान्ततः सामाजिक मान्यता प्राप्त थी।

कथासरित्सागर के काल में जातियाँ असाधारण रूप से बढ़ी। इस घटना में खान-पान में आपसी भेदभाव का भी प्रमुख योग-दान रहा होगा। कल्हण[6] और कुलूक भट्ट[7] ने ६४ जातियों का उल्लेख किया है। बृहद्धर्मपुराण में ४१ वर्णसंकर जातियों का उल्लेख प्राप्य है[8]। ब्रह्मवैवर्त पुराण में इतनी अधिक जातियों एवं उप-जातियों का वर्णन है कि उनका एकत्र उल्लेख करना यहाँ असंभव है[9]।

**ब्राह्मण**—कथासरित्सागर के अनुशीलन से तत्कालीन समाज में ब्राह्मण का स्थान सर्वोपरि निर्दिष्ट किया जा सकता है। देवता और ब्राह्मणों की पूजा सज्जनों के लिए कामधेनु कही गई है[10]। प्रारंभिक मध्ययुग के धर्मशास्त्रकारों ने ब्राह्मण को समाज का सुयोग्य प्राणी बताया है। इनके अनुसार ब्राह्मण का कर्त्तव्य है कि वह वेदों के अध्ययन-अध्यापन में समय व्यतीत करे, पवित्र आचरण वाला हो। मिथ्या भाषण न करे, पापों से भयभीत रहे, अहिंसा का पालन करे, घर में अग्नि प्रज्ज्वलित

---

१. काणे, हि० ध० शा०, जि० २, अ, ४, पृ० १७०. २. अपरार्क, पृ० ११७१–७९.
३. भ० प्र० मजुमदार, सो० इ० हि० ना० इ०, पृ० ७८. ४. अकस्मात्पूर्वजाति २७।८२.
५. क० स० सा० २७।१२९. ६. राजतरंगिणी, ८, २४०७.३
७. कुलूक–मनु, ३१ ८. बृहद्धर्मपुराण, ११, १३–१४.
९. वही, १, १०, १२२. १०. क० सा० सा०, १७।१३४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



रक्खे। धार्मिक यम तथा नियमों का पालन शास्त्रों के अनुसार करे। गायों की रक्षा करे तथा वह तृष्णा एवं लालच से दूर रहे। कृत्यकल्पतरु में ब्राह्मण के लिए इन आख्यों के पालन का विधान बताया गया है[1]।

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध इतिहासकार अल्बेरूनी ने भी चार वर्णों का ही उल्लेख किया है[2]। परन्तु अभिलेखों से पता चलता है कि उस समय इन वर्णों में उपजातियाँ बनने लग गई थी। अल्बेरूनी के उक्त कथन के विषय में विचारणीय है कि जाति-प्रथा के प्रश्नों पर प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रों को आधार मानकर विवेचन किया है। उसने प्राचीन धर्मशास्त्र-संबंधी ग्रन्थों तथा प्रचलित अनुश्रुतियों का अन्धानुकरण किया है। इसीलिए उसके जाति-विषयक वर्णन अपेक्षाकृत सैद्धांतिक अधिक हैं, वास्तविक कम।

इस समय ब्राह्मण का भेद शाखा और गोत्र का उल्लेख करके ही किया जाता था। १०५० ई० चंदेलों के ताम्रपत्र में भारद्वाज गोत्र, यजुर्वेदीय शाखा के विप्रवर ब्राह्मण का उल्लेख आता है। १०७७ ई० के कलचुरि लेख में ब्राह्मण के नामों के साथ-साथ शाखा गोत्रादि का भी उल्लेख हुआ है। संभवतः विभाजन वेद-पाठन के आधार पर हुआ होगा[3]। बड़नगर की कुमारपाल-प्रशस्ति ( ११५१ ई० ) में नागर ब्राह्मण का सन्दर्भ प्राप्य है। कोंकण के १२वीं शताब्दी ईसवी के लेख में बत्तीस ब्राह्मणों के नाम दिए हैं। ये नाम अधिकांशतः उनके व्यवसाय अथवा स्थल के अनुसार है। इन नामों के गोत्र तो है परन्तु इनकी विशिष्ट शाखा का उल्लेख नहीं है। उन उपनामों में दीक्षित, राउत, ठाकुर, पाठक, उपाध्याय, पट्टवर्धन आदि प्रमुख हैं। शिलालेखों और कथासरित्सागर[4] में पंडित, दीक्षित, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, आवास्थिक, माथुर, त्रिपुर, अकोला, डेडंवाण आदि नाम आए हैं। इन नामों से कुछ के आधार पर ब्राह्मणों के व्यवसाय का पता चलता है और कुछ से उनके निवास स्थान का बोध होता है। कालान्तर में प्रारम्भ के उपनाम भिन्न-भिन्न जातियों में परिवर्तित हो गए। इस प्रकार जातियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। १२०० ईसवी के बाद पंचगौड़ और पंचद्रविड़ दो मुख्य शाखाओं में ब्राह्मण बँट गए। यह भेद सम्भवतः मांसाहार और अन्नाहार के कारण हुआ होगा[5]। इस विभाजन के द्वारा स्थान भेद भी अभिव्यंजित होता है।

तत्कालीन साहित्य और अभिलेखों के अध्ययन से पता चलता है कि ब्राह्मणों के निवास स्थान तथा व्यवसाय के आधार पर कथासरित्सागर के रचनाकाल तक अनेक

---

७. कृत्यकल्पतरु, दानकाण्ड, पृ० २६–३० गृहस्थकाण्ड, पृ० १७१–७९ सिरपुर अभिलेख, ए० इ०, जि० ११, पृ० १९२–३.

१. साचो, जि० १, पृ० १००.

२. क० स० सा०, ३८।१००.

३. वही, ३८।१०२; ३८।११८; २७।११६.

१. चि० वि० वैद्य, हिस्ट्री आफ मिडिएवल इण्डिया, जि० ३, पृ० ३७५–८१.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



उपजातियाँ हो गई थीं। उत्तर प्रदेश में दो प्रकार के ब्राह्मण पाये जाते थे—कान्यकुब्ज तथा सरयूपारीण। एक अभिलेख में कन्नौज के ब्राह्मण का उल्लेख हुआ है। विक्रम संवत् ११८९।११३३ ईसवी के एक अभिलेख में सरयूपारी ब्राह्मण का उल्लेख हुआ है।

धर्मशास्त्रकारों तथा निबन्धकारों ने कर्मों के आधार पर ब्राह्मणों का विभाजन किया है। देवल ने वेद के अध्ययन के आधार पर ब्राह्मण जाति का वर्गीकरण किया है—(१) **मात्र**—जिन्होंने केवल ब्राह्मण के कुल में जन्म लिया हो परन्तु उन्होंने किसी भी वेद का अध्ययन नहीं किया है। (२) **ब्राह्मण**—जिसने वेद के एक भाग का अध्ययन किया है (३) **श्रोत्रिय**—जिसने एक ही वेद-वेदांग का अध्ययन किया है तथा ब्राह्मणों के शास्त्रोक्त षट्कर्मों को नित्य करता हो। (४) **अनुचान**—ये वेद और वेदांग के अर्थों से भलीभाँति अवगत होते थे। हृदय के शुद्ध होते थे। शास्त्रवर्णित अग्निहोत्र कर्म सम्पन्न करते थे। (५) **भ्रूण**—गुणों में अनुचान ब्राह्मणों के ही तुल्य होते थे। इसके अतिरिक्त ये यज्ञों का सम्पादन करते थे। (६) **ऋषिकल्प**—वे ब्राह्मण थे जिसे लौकिक और वैदिक दोनों का ही ज्ञान होता था। (७) **ऋषि**—संन्यासी को ऋषि कहते थे। ये संन्यास जीवन व्यतीत करते थे। इनमें वरदान और अभिशाप दोनों को देने की क्षमता होती थी। (८) **मुनि**—जंगलों में रहा करते थे। जंगल के कन्दमूल फल आदि खाकर जीवन व्यतीत करते थे[१]। लक्ष्मीधर[२], बल्लालसेन[३] और चण्डेश्वर[४] के भी विभाजनों का आधार यही है। ब्राह्मण के कुल में जन्म प्राप्त होना पूर्व जन्मों के सद्कार्यों का प्रतिफल माना जाता था[५]। कथासरित्सागर में भी इस अवधारणा का उल्लेख प्राप्य है[६]।

इस काल में मध अथवा शाक-द्वीपों के ब्राह्मणों के अस्तित्व के भी प्रमाण प्राप्य हैं। गोविन्दपुर अभिलेख के अनुसार (११३७ ई०) मध ब्राह्मण शकद्वीप से आए हैं[७]। कालान्तर में इन्हीं ब्राह्मणों के वर्ग की एक शाखा मगध में जाकर बस गई। इन्होंने समाज के अन्य बुद्धिजीवियों की भांति अभिलेखीय सेवाएँ राज्य को अर्पित की थीं[८]।

डी० आर० भण्डारकर के अनुसार ब्राह्मण जाति प्रारंभिक मध्ययुग में विकास की अवस्था में थी[९]। कुछ ब्राह्मणों को क्षात्र-ब्राह्मण भी कहा जाता था। इस प्रकार के ब्राह्मण-राजाओं में बंगाल के सामन्तसेन और परमार में राजा मुञ्ज प्रमुख हैं[१०]। इस

---

१. काणे, हि० ध० शा०, जि० २, भाग १, पृ० २३१–३२.
२. दानकाण्डम्, पृ० ३०–३१.
३. दानसागर, पृ० १८–१९.
४. दानालाकर ; दानकाण्डम्, पृ० ९०.
५. गृहस्थ, पृ० ४१५.
६. क० स० सा०, २७।८२.
७. ए०, इ०, जि० २, पृ० ३३०.
८. ए० इ०, ९।२७९.
९. भण्डारकर, ज०ए०सो०ब०, (१९०९), पृ० १६७.
१०. भण्डारकर, ए० इ०, १९११, पृ० ३५.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



प्रकार के ब्राह्मण क्षत्रियों की भाँति ही कार्य किया करते थे। इस समय जाति के आधार पर कर्म का निर्धारण नहीं होता था। ब्राह्मण चाहे जो भी व्यवसाय अपनी जीविका के लिए अपनाये हो किन्तु उनका समाज में स्थान प्रमुख तथा सर्वोपरि था। इस समय भी उन्हें शिक्षा, विद्या और ज्ञान का ठेकेदार ही समझा जाता था। ब्राह्मणों ने पठन-पाठन के क्षेत्र के अतिरिक्त राजकीय प्रशासन में भी सहयोग दिया था। मंत्री प्रायः ब्राह्मण ही हुआ करते थे। अर्बुज़द ब्राह्मणों के विषय में लिखता है कि धर्म और विज्ञान में प्रयत्न करने वाले व्यक्ति ब्राह्मण कहलाते हैं। उनमें बहुत से कवि, ज्योतिषी, दार्शनिक और देवज्ञ राजा के दरबार में रहते हैं[1]। अलमसऊदी के अनुसार ब्राह्मणों का उत्तम और कुलीन व्यक्ति की भाँति समाज में सम्मान होता था। प्रायः ब्राह्मण ही कुल-क्रम से राजाओं के मंत्री होते थे[2]।

ब्राह्मण के प्रमुख कर्तव्यों में पठन-पाठन, यज्ञ का संपादन करना तथा कराना, दान लेना और देना था। बौद्ध धर्म के प्रचार के कारण उपर्युक्त ब्राह्मणोचित कार्यों में अनेक कार्य उनके हाथ से स्यात् निकल गए थे। हिंसात्मक यज्ञादिक कर्मों के बन्द होने से ब्राह्मणों की जीविका का प्रभूत साधन नष्ट हो गया था। सम्भवतः इसीलिए ब्राह्मण अब अन्य वर्णों का कार्य भी करने लगा था। इसी कारण बाद की स्मृतियों में[3] सब वर्णों के लिए कृषि कार्य के करने की आज्ञा दी गई है। समय के अनुसार स्मृतियों ने कालान्तर में ब्राह्मण को शस्त्र-ग्रहण करने की व्यवस्था का भी उल्लेख किया है[4]।

ब्राह्मण वैश्यों का भी कार्य करते थे किन्तु उन्हें अपनी प्रतिष्ठा का सदैव ध्यान रहता था[5]।

ब्राह्मणों ने कथासरित्सागर के काल में अनेक व्यवसायों को अपनाया। अध्यापन[6], अध्ययन तथा पुरोहित कर्म वे परम्परा से करते हुए चले जा रहे थे। परम्परित कर्मों के अतिरिक्त उन्होंने कतिपय ऐसे कर्म करने प्रारम्भ कर दिए थे जो समय की आवश्यकता के अनुसार तथा आर्थिक दृष्टिकोण से प्रायः अनिवार्य हो गए थे। प्रारंभ में रक्षा तथा युद्ध का भार क्षत्रियों के स्कन्धों पर डाला गया था किन्तु प्रारंभिक मध्ययुगीन भयावह संक्रान्ति की राजनीतिक स्थिति को देखकर[7] बाद की

---

१. इलियट और डाउसन, हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, जि० १, पृ० ६.

२. चि० वि० वैद्य, हिस्ट्री आफ़ मिडिएवल इण्डिया, जि० २, पृ० १८१.

३. षट्कर्मसहितो विप्रः कृषिकर्म च कारयेत् ॥ ८ ॥
क्षत्रियोपि कृषिं कृत्वा देवान् विप्रांश्च पूजयेत् ॥ १८ ॥
वैश्यः शूद्रस्तथाकुर्यात् कृषिवाणिज्यशिल्पकम् ॥ १९ ॥ अध्याय २

४. प्राणत्राणे वर्णसंकरे वा ब्राह्मणवैश्यो शस्त्रमाददीयाताम्। वसिष्ठस्मृति, अ० ३.

५ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ० ३३.

६. अर्थशास्त्र ९, २. ७. विशेष विवरण के लिए शिक्षा संबंधी अध्याय देखें।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



स्मृतियों ने ब्राह्मणों के लिए युद्ध कर्म के लिए मान्यता दे दी[1]। कथासरित्सागर में ब्राह्मण के लिए वेदाध्ययन के अतिरिक्त सैन्य प्रशिक्षण पर भी समान रूप से बल दिया गया है[2]।

कथासरित्सागर में इस प्रकार के अनेक उल्लेख है जिसमें ब्राह्मण युवक को सैन्य ज्ञान का शिक्षण दिया जा रहा है[3]। क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथामञ्जरी में कथाओं को विलक्षण व्यंगात्मक शैली में कहा है। इससे तत्कालीन सामाजिक अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं[4]। बृहत्कथामञ्जरी में भी अस्त्र-शस्त्र के संचालन तथा युद्ध-कला-कौशल के सीखने में तत्पर ब्राह्मणों का उल्लेख है। अस्त्र-शस्त्रविद्या में निपुण ब्राह्मण की कथाएँ भी संग्रहीत हैं[5]। राजतरंगिणी में अनेक विशिष्ट वीर ब्राह्मण योद्धाओं का उल्लेख प्राप्य है[6]। ब्राह्मणों का राजाओं से निकट का सम्बन्ध होने के

---

१. गौतम, ७, ६ और १५.

२. अपर्णा चट्टोपाध्याय, मार्शल लाइफ आफ ब्राह्मनाज इन अर्ली मिडिएवल इण्डिया एज नोन फ्राम दि कथासरित्सागर, जर्नल आफ ओरियण्टल इन्स्ट०, जि० १६, ( १९६६ ), पृ० ५२–५९.

३. स च शूरोऽतिरूपश्च वेदविद्यान्तगो युवा ।
कलाशस्त्रास्त्रविद्विप्रः सिषेवे तं नृपं सदा ॥ क० स० सा०, ४९, ८; ४९, २४–२८.
जित्वा महासेनमपास्य राज्यात्पृथ्वीपतित्वं स समाससाद ॥
क० स० सा०, ४९, २४९; १८,१२३–४०४; २५,१२७–१७१; २५, १२७.
अस्त्रेषु बाहुयुद्धेषु बभूवाप्रतिपो भुवि ॥ क० स० सा०, १०, १५; १०,२०,२५; ७३, ८,१२.
तस्यांह वसुदत्ताख्यो महाधनवतः सुतः ।
बाल्ये यथा शस्त्रविद्या वेदविद्याश्च शिक्षिताः । ७४, १५५.
सोऽपि श्रीदर्शनस्तत्र वृद्धि प्राप्तः पितुर्गृहे ।
प्रकर्ष वेदविद्यासु प्राप्तस्त्रिषु च वीर्यवान् ॥ क० स० सा०, ७३, ६९.
क्रमाच्च स महीपालो विवृद्धो ग्राहितोऽभवत् ।
शस्त्रास्त्रवेदं विद्यासु समं सर्वासु शिक्षितः ॥ क० स० सा०, ५६, ९.
ततो दर्शितशस्त्रास्त्रश्रिये तस्मै द्विजोऽनुजाम् ।
देवस्वामी स शूराय दातुं ता प्रत्यपद्यत ॥ क० स० सा०, ७९, २१.

४. अपर्णा चट्टोपाध्याय, वही, ज० ओ० इ०, जि० १६, सितंबर, १९६६, भाग १, पृ० ५२, पा० टि० ४.

५. शस्त्रास्त्रयुद्धकुशलो बभूव कृतिनां वरः ॥ बृहत्कथामञ्जरी, गुच्छा १,५,६१०.
अशोकदन्तः शस्त्रास्त्रकल्पविद्याविशारदः ॥ वही, ५,५,१२३, वही, ७, गुच्छा १,६२–८८.
वही, विदूषक की कथा, ५,१९३.

६. राजतरंगिणी, ८,१०७१; ८,३०१८; ८,१३४५; ७,६७५; ३,२३९–४२; ७,१०–१२,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



कारण ये क्षत्रियों के अधिक सन्निकट आ गए थे। कथासरित्सागर में ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जिसमें ब्राह्मण और क्षत्रियों के मध्य अनुलोम विवाह हुए थे[1]। इससे ब्राह्मण और क्षत्रियों के मध्य घनिष्ट सम्बन्ध का पता चलता है। इस प्रकार ब्राह्मण और क्षत्रिय के अनुलोम विवाहों के विषय में केवल साहित्यिक साक्ष्य ही नहीं है, वरन् तत्कालीन अभिलेखों से भी इस प्रकार की सूचना प्राप्त होती है[2]। कथासरित्सागर के पूर्वकालीन[3] एवं सामयिक साहित्यिक[4] साक्ष्यों से भी इसके समर्थन में बल मिलता है। इन सब साक्ष्यों से ब्राह्मणों का राजदरबार से संबंध की ऐतिहासिकता का पता चलता है। कथासरित्सागर में ब्राह्मण, पुरोहितों तथा वेद-पाठी ब्राह्मणों के प्रति हास्यास्पद दृष्टिकोण रक्खा गया है। इसके अनुसार वेद-पाठी ब्राह्मण स्वभाव से ही भय, क्रोध और कठोरता के घर होते हैं[5]। ये सदैव मोक्ष मार्ग के विरोधी तथा काम-क्रोध के निकेतन होते हैं। ब्राह्मण में काम और क्रोध देवयोग से प्रकृतिदत्त होता है[6]। इसमें वेद-पाठी ब्राह्मणों को मूर्ख तथा भीरु कहा गया है[7]। ब्राह्मण पुरोहितों के विरुद्ध कथासरित्सागर[8] में जो विवरण पाया जाता है वह केवल सोमदेव की भावनाओं का ही प्रतिनिधित्व नहीं करते वरन् इसमें तत्कालीन सामाजिक दृष्टिकोण कुछ अंशों में समाया हुआ है[9]।

---

१. एकदा चोत्सुका रात्रौ तेनात्मानं प्रकाश्य सा।
गुप्तं गान्धर्वविधिना परिणीता नृपात्मजा। क० स० सा० ७।८२.
क० स० सा० ७।८२–१०१.
ददौ तस्मै च तामेव तदैव तनयां निजाम्।
किमदेयमुदाराणामुपकारिषु तुष्यताम्॥ क० स० सा० १८।२०३.
तयोश्च सोऽभूद्राजेन्द्रपुत्रीविप्रेन्द्रपुत्रयोः। संगमोऽन्योन्यशोभायै लक्ष्मीविनयोरिव॥
क० स० सा०, २५।१७१.

२. ए० इ०, जि० १५, पृ० ३९. वही, पृ० १२. वही, जि० १८, पृ० ८७.
आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इण्डिया रिपोर्टस्, जि० ४, पृ० १४०,

३. कालिदास, मालविकाग्नमित्रम्, राजशेखर, कर्पूरमंजरी, १,२.

४. पर्याप्तं तस्य भीरुत्वं कियदन्यत्प्रकाश्यताम्। असमैर्यौनसंबन्धैश्चक्षमे यशसः क्षतिम्॥
रा० तं० ७।१०.
सहायकार्थी यत्प्रादाच्छ्रीशौर्यादिपते सुताम्। दिद्दामठाधिपतये प्रेमनाम्ने स लौठिकाम्॥
रा० त० ७।११.
क लोकोद्वहनोन्नद्धभूभृद्योग्या नृपात्मजा। प्रतिग्रहजलक्लिन्नपाणिः क्वाल्पमना द्विजः॥
रा० त० ७।१२.

५. क० स० सा०, १८।१०८. ६. वही, २०।१३०.

७. वही, ६।१–६४; १८, विदूषक की कथा। ८. वही, १७।१९३.

९. भ० प्र० मजूमदार, सो० इ० हि० ना० इ०, पृ० ७७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



क्षेमेन्द्र ने भी वेदपाठी ब्राह्मण को मूर्ख कहा है[१]। क्षेमेन्द्र ने एक मन्दिर के संरक्षक पुरोहित के असद् कार्यों का उल्लेख अत्यन्त स्पष्ट रूप से किया है[२]। यह और भी महत्त्वपूर्ण विषय है कि ब्राह्मण लेखकों कल्हण[३], क्षेमेन्द्र, सोमदेव आदि ने ऐसे वेदपाठी तथा पुरोहितों का हास्यास्पद चित्रण किया है। इससे अभिव्यंजित होता है कि समाज ब्राह्मण-वर्ग के प्रति कितना आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपना चुका था। अन्यथा ये ब्राह्मण लेखक अपनी ही जाति के वर्गविशेष को इतना हेय दृष्टि से न अंकित करते।

बाद की स्मृतियों ने ब्राह्मणों को क्षात्र धर्म अपनाने की स्वीकृति दे दी है[४]। प्राचीन भारत में युद्ध से जीविकोपार्जन करना आदरवृत्ति में आता था परन्तु कथा-सरित्सागर के समय इस आदर वृत्ति ने सामान्य वृत्ति का स्थान प्राप्त किया और फलतः इसे धर्मशास्त्रकारों की स्वीकृति भी मिल गई थी।

प्राचीन समय में धर्मशास्त्रों में ब्राह्मणों द्वारा कृषि-कर्म वर्जित था। जिस प्रकार से आपद काल में उन्हें अपनी रक्षा अथवा गाय की रक्षा के लिए शस्त्र उठाने की आज्ञा थी[५] उसी प्रकार कृषि-कर्म के करने की आज्ञा उनके लिए आपद काल में ही थी। पा० वा० काणे ने इस संदर्भ में विभिन्न मतों की व्याख्या की है[६]। ब्राह्मण अपने बैलों पर अधिक बोझ न ढोवे। उसे समय से भरपेट भोजन और पानी दे ऐसी स्थिति में वह यदि कृषि कर्म में इनका उपयोग करे तब ब्राह्म-कृषक किसी भी प्रकार का पाप नहीं करता है[७]। बृहस्पति के[८] अनुसार यदि ब्राह्मण अपनी उपज का छठा भाग राजा को, देवताओं को बीसवां भाग, तीसवां भाग विप्रों को दे तो वह कृषि-कर्म के दोष से वंचित माना जायेगा[९]। लक्ष्मीधर के इस मत की पुष्टि शुक्रनीतिसार से भी होती है[१०]। लक्ष्मीधर और शुक्रनीतिसार में ब्राह्मणों के लिए कृषि-कर्म की स्वीकृति केवल सिद्धान्ततः ही नहीं वरन् इसको व्यावहारिक रूप भी दिया। इस मत की पुष्टि इसी काल के कतिपय

---

१. बृहत्कथामन्जरी, ५,१९३.
२. समय मात्रिका, २,७७.
३. राजतरंगिणी, ७।१०–१२.
४. गृहस्थकाण्ड. पृ० १९५.
५. अर्थशास्त्र, ९,२.
६. पा० वा० काणे, हि० ध० शा०, जि० २, अ० ३, पृ० १२४–१२६.
७. आपत्सु च कृषिं प्राहुः कृषेद्य आयोजनवदायोज्य बालवृद्धकृशार्तादीन् वर्जयन्नदीर्घेण प्रतोदेन शनैर्वाहयेद्यष्टिमुष्टिलोष्टारत्निजानुयोक्त्रैः द्रावणाक्रोशनप्रभृतिभिर्नाभिनिघ्नीत। न पर्वसु न सन्धिवेलयोर्वाहयेत्। द्विहलकृते वा परियोगोऽवमृज्य मोक्षणम्। मृदुवच्छायायां पानाहारादीनदद्यात्। गार्हस्थ्यकाण्ड, पृ० १९३-१९४.
८. राज्ञे दत्वा च षड्भागं देवतानां च विंशकम्। त्रिंशद्भागं तु विप्राणां कृषिं कृत्वा न दोषभाक्॥ गार्हस्थ्यकाण्ड, पृ० १९५.
९. गृहस्थ रत्नाकर, पृ० ४३०-४३१. गार्हस्थ्यकाण्ड, पृ० १९५.
१०. शुक्रनीतिसार, ४, ३, १९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



अभिलेखों से हो जाती है। चालुक्य कुमारपाल के राज्य-काल क एक अभिलेख में ( वि० सं० १२०२ ) राजदेव, शूरदेव और नगद को ब्राह्मण-कृषक कहा गया है[1]।

कथासरित्सागर के समय में अनेक ब्राह्मणों ने वैश्यों के कार्य संपादन से जीविका चलाना आरंभ कर दिया था। प्रारंभ में उन्हें इस कर्म को आपद काल में ही कर सकने की स्वीकृति प्राप्त थी। प्राचीन धर्मशास्त्रों में ब्राह्मण के लिए कतिपय वस्तुओं का बेचना निषेध था[2]। महत्त्वपूर्ण विषय यह है कि कथासरित्सागर के समय में भी जिन वस्तुओं का प्राचीन धर्मशास्त्रकारों ने निषेध किया था उसे इस समय भी सिद्धान्ततः उसी रूप में माना जाता था[3]। प्रसिद्ध अरबी इतिहासकार अल्बेरुनी ने भी इस प्रकार की व्यवस्था का उल्लेख किया है[4]। एक अभिलेख में ब्राह्मण भट्ट, विरुक के पुत्र वामुक को अश्वविक्रेता के रूप में दिखाया गया है[5]। यहाँ यह उल्लेख करना उचित है कि मनु ने ब्राह्मण के लिए जिन वस्तुओं के विक्रय को वर्जित निर्दिष्ट किया है[6] उन वस्तुओं को भी सम्भवतः तत्कालीन आर्थिक दबाव के कारण वे बेचने लगे थे।

धर्मशास्त्रों में राज्य-सेवा द्वारा अर्जित धन से ब्राह्मण के भरण-पोषण का विधान आपत्ति काल के लिए ही स्वीकृत था। किन्तु प्राचीन धर्मशास्त्रों की मान्यताओं को सम्भवतः तत्कालीन आर्थिक वैषम्य ने तोड़ने में सहायता की होगी। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ ब्राह्मणों ने राजा को मन्त्री[7], नगराधीश[8] तथा लेखकों[9] के रूप में अपनी सेवाएँ अर्पित की थीं। वर्णों का प्राचीन कर्त्तव्य-विभाग शिथिल हो रहा था।

---

१. आचार्यों, हिस्टारिकल इंसक्रिप्संस ऑफ गुजरात, बम्बई, जि० ३, पृ० २००.

२. मनु, १०, ८६–११६. गौतम, ८,८,१४. वशिष्ठ, २, ३१.
नारद, कृणदास ६१–६३. याज्ञवल्क्य, ३, ४०–४२.

३. इदं तु धर्मवैकिल्यात् त्यजतो धर्मनैपुणम्। विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वृत्तिवर्द्धनम्॥
सर्वान् रसानपोहेत कृतान्नं तु तिलैः सह। अश्मनो लवणं चैव पशवो ये च मानवाः॥
सर्वं च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च। अपि चेत्स्युररक्तानि फलभूते तथोषधीः॥
अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धाश्च सर्वशः। क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडकुशान्॥
आख्याश्च पशून् सर्वान् दंष्ट्रिणश्च वयांसि च। मद्यं नीलीं च लाक्षाश्च सर्वाधैकशफांस्तथा॥
त्रपु सीसं तथा लौहं तेजसानि च सर्वशः। वालांश्चर्म तथाऽस्थीनि वसाः स्नाशनि रोचनाम्॥
कृत्यकल्प, गार्हस्थकाण्ड, पृ० १९९–२१२.

४. साचो, जि०, २, पृ० १३२. ५. ए० इ०, जि० १, पृ० १८४ और ४७२.

६. मनु, १०, ८९. ७. ए० इ०, १, १८४.

८. भिन्नसंधानभूयर्थदानभोज्यादिढौकनैः। न हि मोहयितुं शक्ताः प्राज्ञं तं तेऽन्वराजवत्॥
राजतरंगिणी ८।१०८. इ० हि० क्वा०, जि० १६, पृ० ५७७.

९. पार्थः परमदुर्मेधाः ख्यातो भ्रातृकलत्रगः। निर्विचारेण यत्तेन नगराधिकृतः कृतः॥
राजतरंगिणी, ७।१०८.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



सभी वर्ण अवसर एवं इच्छा के अनुसार कार्य करने लगे थे। राजा बिना किसी वर्ण अथवा जाति-भेद के योग्य व्यक्तियो को ऊँचे पदों पर नियुक्त करता था[1]।

ब्राह्मणों ने देश-काल और आर्थिक परिस्थितिवश जो कुछ भी व्यवसाय अपने उदर-पूर्ति के लिए अपनाया हो यह एक अन्य विषय है किन्तु इनके द्वारा समाज में अधिकृत स्थान लगभग प्राचीन काल-सा ही था। इन्हें उच्च जन्मा होने के कारण कुछ छूटें मिली थीं। कथासरित्सागर में इस प्रकार की छूटों का उल्लेख है[2]। समाज में ये श्रद्धा तथा सम्मान के पात्र थे। ब्राह्मण अवध्य था। कथासरित्सागर में मित्र तथा ब्राह्मण अवध्य माना गया है[3]। किन्तु तत्कालीन दण्डसंहिता में इन्हें इस प्रकार का कोई भी विशेषाधिकार नहीं प्राप्य था। कथासरित्सागर का छूट संबंधी उपर्युक्त उल्लेख संभवतः सम्राट् की अनुकम्पा पर आश्रित रहा होगा[4]। इस प्रकार के छूट का उल्लेख अल्बेरुनी ने भी किया है[5]। घोषाल[6] तथा अल्टेकर[7] ने यह मत ठीक ही व्यक्त किया है कि केवल जन्मना ब्राह्मण हो जाने से ही इस प्रकार की विशेष सुविधा उसे नहीं मिल जाती थीं। सुपात्र, विद्वान् एवं मेधावी ब्राह्मणों को ये छूटें मिलती थीं। जघन्य अपराधों के छूट का उल्लेख केवल ग्यारहवीं शताब्दी के लक्ष्मीधर ने ही नहीं किया है वरन् अल्बेरुनी ने भी इसका विवरण अपने ग्रन्थ तहकीकाते-हिन्द में किया है[8]। बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र[9] में भी ब्राह्मणों के इस प्रकार के छूट का वर्णन है। कल्हण की राजतरंगिणी में भी इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त आए हैं जिनमें धूर्त, राज-द्रोही तथा शठ ब्राह्मणों के वध का उल्लेख है। राजतरंगिणी[10] के इन वर्णनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अपराधी ब्राह्मण प्रारंभिक मध्ययुग के न्याय विधान के समक्ष सब अपराधियों की भाँति था।

---

१. राजतरंगिणी, ८।२३८३.

२. राजा त्विहेन्द्रदत्ताख्यः सखा वध्यो न मे द्विजः।
तच्छ्रुत्वा सोऽब्रवीन्मन्त्री रक्षो मे दर्श्यतामिति॥ क० स० सा०, ५,४६.

३. क० स० सा०, ५,४६. ४. मनु. ४, १३५-६. याज्ञवल्क्य, १,१५५

५. साचो, जि० २, पृ० १४९. ६. घोषाल, हिन्दू रिवन्यू सिस्टम, पृ० १४९.

७. अल्टेकर, स्टेट एण्ड गवर्नमेण्ट इन ऐशेण्ट इण्डिया, पृ० १९५.

८. साचो, जि० २, पृ० १६२.

९. बार्हस्पत्य, अर्थशास्त्र ( थामस सं० ), अं० १, श्लोक १७.

१०. तुक्कद्विजादयो मुख्या भिक्षुपृथ्वीहरादिभिः। आसारापातविवशा निहताः सौस्सले बले॥
राजतरंगिणी, ८।१०१३.
स्वानुगैर्लुण्ठितं रुक्षमाचक्षाणं रुषा द्विजम्। प्रासैर्मडवराज्यस्थः स शृगालमिवावधीत्॥
राजतरंगिणी, ८।२०६०.
घ्नता लवन्यानुन्नद्धकुन्तलोऽविकटाकृतिः। जीवन्मडवराज्यान्तस्तेन विप्रोऽपि नोज्झितः॥
राजतरंगिणी, ७।१२२९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



कथासरित्सागर[1] तथा राजतरंगिणी[2] में कतिपय पतित ब्राह्मणों का भी उल्लेख आता है। राजतरंगिणी में ब्राह्मण पार्थ का उल्लेख है। यह बड़ा ही दुर्बुद्धि था। बन्धु-स्त्री के साथ उसने अनैतिक संबंध स्थापित कर लिया था। इसका मन कभी भी सुकृत की ओर उन्मुख ही नहीं होता था। इसी कारण इसने भगवान् प्रवरेश्वर के रंगपीठ पर पशुहिंसा जैसे जघन्य पाप कर्म आरंभ कर दिये थे। ऐसे ब्राह्मण गुरु का भी उल्लेख है जिसने निःशंकभाव से अपनी पुत्री के साथ भी सुरत सुख का अनुभव किया था[3]। लोष्ठक नामक एक ग्राम दैवज्ञ मूर्ख ब्राह्मण मुट्ठी-मुट्ठी अन्न मांगकर पेट पालता था। कालान्तर में गुरु, दैवज्ञ और कुट्टनी इन विशेषताओं के कारण राजा कलश के अत्यन्त स्नेह-भाजन बन गए थे[4]। इस प्रकार से इस काल में आधार भ्रष्ट एवं आततायी ब्राह्मणों को कमी नहीं थी केवल उसी ब्राह्मण को छूट प्राप्त होती थी जो विद्वत्ता के क्षेत्र में पर्याप्त आगे रहते थे किन्तु अकस्मात् अपराध निष्प्रयोजन कर बैठते थे[5]। इस प्रकार स्मृतियों ने आततायी ब्राह्मणों के लिए मृत्यु दण्ड के विधान की स्वीकृति दी है[6]। स्मृतियों में वर्णित उच्चादर्शों के नियम का पालन प्रायः सभी ब्राह्मण नहीं करते थे[7]।

**क्षत्रिय**—प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था में सिद्धान्तः क्षत्रियों का द्वितीय स्थान था। किन्तु प्रारंभिक मध्यकाल में इनका महत्त्व सर्वाधिक हो गया था[8]। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना क्षात्र धर्म समझा जाता था[9]। इस समय मुसलमान शक्ति-विस्तार के माध्यम से यवन राज्य की स्थापना के यत्न कर रहा था। सम्भवतः बौद्ध तथा जैन धर्म के अहिंसावादी सिद्धान्तों ने क्षत्रियों के युद्ध-परक प्रवृत्ति पर आघात पहुँचाया होगा किन्तु इस संदर्भ में यहाँ यह निर्दिष्ट करना समीचीन होगा कि इन्होंने इस समय तक अपने इस स्वभाव को असाधारण रूप से सुरक्षित रखा था[10]। इस युग में सामन्तवादी परम्परा पर्याप्त रूप से बढ़ी। यद्यपि भारत में गुप्तों के काल से ही यह प्रथा देखी जा

---

१. कथासरित्सागर, जि० १, पृ० ३०५. वही, जि० १, पृ० २४१. वही, जि० २, पृ० २०२.

२. पार्थः परमदुर्मेधाः ख्यातो भ्रातृकलत्रगः। निर्विचारेण यत्तेन नगराधिकृतः कृतः॥
राजतरंगिणी, ७।१०८.
वधादिपापं पार्थेन सुकृतत्यक्तचेतसा। पवित्रे प्रवरेशस्य रंगपीठेप्रवर्तितम्॥
राजतरंगिणी, ७।१०९.

३. गुरोर्गतविकल्पत्वं तस्यान्यात्किमिवोच्यताम्। त्यक्तशङ्कः प्रववृते स्वसुतासुरतेऽपि यः॥
राजतरंगिणी, ७।२७८.

४. राजतरंगिणी, ७।२९५–९७.

५. गौतमधर्मशास्त्र, ११,१.

६. स्मृतिचन्द्रिका, १,३०; ३,२६–३२.

७. दि स्ट्रगल फार इम्पायर ( घोषाल का लेख ), पृ० ४७४–७५.

८. वासुदेव उपाध्याय, सो० रि० क० ना० इ०, पृ० ५७.

९. क० स० सा०, ४४, २६; ५९, ७०.

१०. वासुदेव उपाध्याय, वही, पृ० ५८.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



सकती है तथापि हर्षोत्तर काल से ही सामन्तवाद ने विकेन्द्रित करना प्रारम्भ कर दिया। फलतः भारत कथासरित्सागर के समय अनेक लघु राज्यों में विभक्त हो गया था। सामन्त अपने संकुचित मनोभावों की सिद्धि के लिए कदाचित् ही किसी गर्हित कार्य को शेष रहने देते थे। उनके राजनय का परम लक्ष्य अपने लघु राज्य को सुरक्षित रखना था। इस समय देश-भक्ति तथा राष्ट्रीय भावना का लोप हो चुका था[1]।

ब्राह्मण की भाँति क्षत्रिय का भी समाज में उच्च स्थान था। एक तत्कालीन अभिलेख में क्षत्रिय को द्विजों का राजा कहा गया है[2]। प्रजा के पालन का उत्तरदायित्व शिक्षा एवं धर्म का संरक्षण, प्रशासन, युद्ध तथा सैन्य संचालन का गुरुतर भार इन्हीं के सुदृढ़ स्कन्धों पर आश्रित था। धुरये ने यह मत व्यक्त किया है कि ग्यारहवीं शताब्दी में क्षत्रियों का समाज में धुँधला अस्तित्व था। परन्तु तत्कालीन प्रबल साक्ष्यों के आलोक में उक्त विद्वान् के मत से सहमत होने में बाधाएँ उपस्थित होती है। अल्बेरूनी ने महापातकों में भी क्षत्रिय के अवध्य होने के विधान को निर्दिष्ट किया है[3]। यदि समाज में उनका अस्तित्व ही धूमिल पड़ गया होता तो उनके लिए सार्वजनिक दण्ड-संहिता से भिन्न विधान का उल्लेख ही न हुआ होता।

क्षात्र-धर्म की कुशलता के निर्वाह के साथ-साथ अनेक विद्या-व्यसनी नरेशों के दृष्टान्त भी कम रोचक नहीं हैं[4]। चालुक्य-राजा विनयादित्य गणित का महान् पण्डित था। राजा भोज की विद्वत्ता की ख्याति तो सर्वविदित ही है। चौहान नरेश विग्रहराज चतुर्थ-प्रणीत नाटचग्रन्थ शिला पर उत्कीर्ण साहित्य का एक अनूठा उदाहरण है।

प्रारंभिक मध्ययुगीन आर्थिक विषमता के कारण प्राचीन वर्ण-व्यवस्था विशुद्ध रूप से अवशिष्ट नहीं रह सकी थी। इसीलिए कतिपय ऐसे उद्धरण भी सुलभ हैं जिनके अनुसार क्षत्रियों ने शास्त्रोक्त व्यवसायों के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय को जीविकोपार्जन हेतु अपनाया था। क्षत्रिय को क्षात्र-कर्म के अन्तर्गत दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में राजा सामन्त उनके संबंधी तथा विशिष्ट राजपुरुष आते थे। तत्कालीन समाज में इनका प्रमुख स्थान था। दूसरा वर्ग सैनिकों तथा योद्धाओं का था। राज्य की सुरक्षा हेतु सेवा में इनकी नियुक्ति होती थी। राजा यदा-कदा "जय-स्कन्धावार" के निरीक्षणार्थ जाया करता था[5]। सामयिक साहित्य एवं अभिलेखों के निरीक्षण से पता लगता है कि सम्भवतः वे महान् उपाधियों के प्रेमी थे। ये अपने को परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर आदि उपाधियों से अलंकृत किए हुए हैं। सम्भवतः प्रारम्भिक मध्य-युग के राजा बाह्याडम्बर एवं मिथ्या प्रशस्ति-गान के प्रेमी थे। सम्भवतः तत्कालीन सामन्तवादी मनोवृत्ति ने भी उनकी इस प्रवृत्ति को उत्प्रेरित किया

---

१. वासुदेव उपाध्याय, सो० रि० क० ना० इ०, पृ० ५८.

२. ए० इ०, जि० १, पृ० ४१.

३. साचो, जि० २, पृ० १६२.

४. रा० त०, ८,३२३०; ८,३३४६; ८,३३४७.

५. ए० इ०, १९, १७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



होगा। तत्कालीन विधि-संग्रहकार लक्ष्मीधर ने क्षत्रिय का प्रमुख कर्तव्य वर्णधर्म की रक्षा करना निर्दिष्ट किया है[1]। देवल के अनुसार क्षत्रिय देवता की आराधना एवं ब्राह्मण की रक्षा करे। अध्ययन एवं यज्ञ के क्षेत्र में ब्राह्मणों की भाँति क्षत्रियों को भी छूट थी। वे वेदों का अध्ययन कर सकते थे किन्तु उन्हें वेद की शिक्षाओं के देने का अधिकार नहीं था[2]। क्षत्रियों के लिए वेदाध्ययन का उल्लेख अल्बेरूनी ने भी किया है[3]। भिक्षाटन के माध्यम से जीविकोपार्जन का विधान क्षत्रिय के लिए नहीं था। किन्तु लक्ष्मीधर ने इस मत में संशोधन करते हुए लिखा है कि दान के रूप में क्षत्रिय वस्तु को ग्रहण कर सकता है[4]। जयचन्द्र ने अन्तर्वेदी के सैकड़ों ग्रामों को क्षत्रिय राउत राज्यधर वर्मन को दान दिया था[5]।

तत्कालीन अभिलेखों में कतिपय क्षत्रिय राजकर्मचारियों का उल्लेख है[6]। सामान्यतः क्षत्रिय का प्रशासन तथा युद्ध-विषयक ज्ञान महत्त्वपूर्ण था[7]। समाज में राजकीय अधिकार की दृष्टि से इनका स्थान सर्वोपरि था। अल्बेरूनी ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है[8]। जब इस समय योग्य प्रशासक थे तो मुसलमानों के साथ इन्हें क्यों पराजय स्वीकार करनी पड़ी। इनके पराजय के अनेक कारण निर्दिष्ट हो सकते हैं परन्तु सामाजिक कारण की पृष्ठभूमि में मुसलमानों की भाँति-नूतन सैन्य प्रणाली के ज्ञान के अभाव को प्रमुख तत्कालीन कारण माना जा सकता है[9]। इनकी पराजय इस

---

१. कृत्यकल्पतरु, गार्हस्थ्यकाण्ड, पृ० २५१–२५८.
शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य क्षत्रियस्य तु रक्षणम्, पाराशर, १, ६७, ७०.
क्षत्रियेण प्रजाः पाल्याः शस्त्रपाणिः प्रचण्डवान्। निर्जित्य परसेन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत्॥
हारीतः
धनुर्वेदोव्रतस्नातः क्षत्रियोऽध्ययनयजनं दानं धर्माऽशिष्टनिग्रहतोऽभिजितषड्भागवृत्तिः।
वेदव्रत्तैकदेशी। पैठीनसिः
अध्ययनं यजनं दानं तेजः संग्रामे चाऽपलायनमीश्वरभावश्चधर्मः क्षत्रियस्य।
आपस्तम्ब, २, १० ५–८.
स्वकर्म ब्राह्मणस्या अध्ययनमध्यापनं यज्ञो याजनं दानं प्रतिग्रहणं दायाथ शिलोञ्छोऽन्यच्चाऽपरिगृहीतम्।
एतान्येव क्षत्रियस्या अध्यापनयाजनप्रतिग्रहणनीति परिहाय्य दण्डयुद्धापिकानि। देवल.
क्षत्रधर्मोऽध्ययनेज्यादानेदैव पितृपूजनम्।
२. कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ, पृ० २५३. ३. साचो, जि० २, पृ० १३६.
४. दानकाण्ड, पृ० ३७. ५. दानसागर, पृ० २०–२१.
६. ए० इ०, जि० ४, धर्मपाल का खलीमपुर दान-लेख.
७. वही, जि० १८, पृ० ९८. वही, जि० १५, पृ० ३०४.
८. साचो, जि० १, पृ० १२५. ९. रमेश चन्द्र मजूमदार, दि स्ट्रगल फार इम्पायर, पृ० १२७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



लिए नहीं हुई कि इनमें शौर्य अथवा उत्साह की कमी थी अपितु युद्ध-रीति में महान् परिवर्तन हो गया था। वे अब भी अपने पुराने ढंग के अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग करते थे। अरबी पर्यटक इब्नखुरदाब्द (इसकी मृत्यु ९१२ ई० में हुई थी)[१] ने हिन्दुओं के सात वर्गों का उल्लेख किया है। इसमें पहला वर्ग साबकुफ्रिया का है[२]। इसी वर्ग से राजा होते थे। इसने सात वर्गों में तीसरा स्थान कटरिया[३] को दिया है। ये तीन प्याले से अधिक मदिरा का पान नहीं करते थे[४]। इनके पुत्रों से ब्राह्मणों की कन्याओं का विवाह नहीं होता था परन्तु ब्राह्मण अपने पुत्रों से इनकी कन्याओं का विवाह करते थे[५]। अ० स० अल्टेकर ने ठीक ही कहा है कि सबाकुफ्रिया और कटरिया ( क्षत्रिय ) में वही अन्तर है जो वैदिक युग में राजन्य और क्षत्रिय में था[६]। इसके विभाजन में दूसरा स्थान ब्राह्मणों को प्राप्त था[७]। यदि प्रारम्भिक मध्ययुगीन भारत के साक्ष्यों का अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कथासरित्सागर के समय में क्षत्रियों में दो वर्ग थे। प्रथम वर्ग राज्य घराने से संबंधित था। इस वर्ग की संख्या कम रही होगी। दूसरा वर्ग साधारण योद्धाओं का था[८]। अरबी लेखकों ने क्षत्रियों के इस योद्धा वर्ग को ठाकुर की संज्ञा से अभिहित किया है[९]। कथासरित्सागर-कालीन अभिलेखों में क्षत्रियों को ठाकुर कहा गया है। इस प्रकार "ठाकुर" शब्द को भारतीय साक्ष्यों के आलोक में मूल्याँकन करने के पश्चात कहा जा सकता है कि यह शब्द पर्याप्त रूप से प्राचीन है। राजतरंगिणी में राजपुत्रों के वेतन की व्यवस्था का उल्लेख है[१०]। सम्भवतः राजकीय वेतन प्राप्त करने वाले कर्मचारियों में इनका सर्वप्रमुख उल्लेख है[११]।

प्रारम्भिक मध्ययुगीन भारत में क्षत्रियों ने अपनी जाति के उल्लेख की अपेक्षा अपने वंश के उल्लेख को प्रधानता देना प्रारंभ कर दिया था। वे अपने उच्च कुल को

---

१. ज० एशियाटिक, जनवरी, १८६५.

२. इलियट, हिस्ट्री आफ़ इंडिया, जि० १, पृ० १६–१७.
इलियट की पुस्तक में इसे साबकुफ्रिया कहा गया है परन्तु फ्रांस के ग्रन्थ में इसे सबकुफरया कहा गया है।

३. इलियट, हिस्ट्री आफ़ इंडिया, जि० १, पृ० १६–१७.

४. वही, १६.

५. वही, १६.

६. अ० स० अल्टेकर, दी राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ० ३१९.

७. इलियट, हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, जि० १, पृ० १६.

८. वासुदेव उपाध्याय, सो० रि० क० ना० ई०, ६१।

९. इलियट, हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, जि० २ ( भूमिका ) पृ० ३८.

१०. राजतरंगिणी, ७।४५८.

११. आराजपुत्रचण्डालं देयं प्रत्यहवेतनम्। ददौ स्वस्यैव भृत्येभ्यः सा कर्तुम् नृणं पतिम्॥
राजतरंगिणी, ७।४५८. क० स० सा०, ३८।७४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



जाति से भी अधिक महत्त्व देने लगे थे। इसी कारण क्षत्रियों की जाति का उल्लेख कम मिलता है[1]।

क्षत्रियों के लिए इस युग में राजपूत शब्द के प्रयोग का सार्वजनिक प्रचार था[2]। प्राचीन "राजन्य" शब्द जिसका प्रयोग पाणिनि ने अष्टाध्यायी[3] में किया है सम्भवतः कालान्तर में राजपूत शब्द इसका पर्याय हो गया होगा[4]। एक अभिलेख में एक चाहमान राजा को राज-चिन्तक के रूप में वर्णन किया गया है। इस विवरण के आधार पर राजा के राज्य के प्रति उत्तरदायित्व का बोध होता है। इस उल्लेख से यह भी पता चलता है कि या तो राजा राजनय को सुव्यवस्थित तथा सुदृढ़ बनाने के आयामों के विषय में चिन्तन-मनन करता था या राज-हित की चिन्ता उसे सदा व्याप्त रहती थी[5]।

तत्कालीन अभिलेखों के अध्ययन से यह पता चलता है कि कतिपय ब्राह्मण और क्षत्रियों के गोत्र और प्रवर एक से हैं। गाहड़वाल राजा जयचन्द्र को वत्स गोत्र और पञ्च प्रवर का कहा गया है। एक अन्य अभिलेख में[6] किसी ब्राह्मण को भी उसी गोत्र और प्रवर का बतलाया गया है। इसका कारण यह है कि क्षत्रिय ब्राह्मण पुरोहित के गोत्र को अपना लेते थे।

प्रारंभिक मध्ययुग के अभिलेखों में हूण का उल्लेख यदा-कदा पाया जाता है[7]। सोमदेव ने कथासरित्सागर में इन्हें म्लेच्छ कहा है[8]। मेसोपोटामिया के अभिलेख में म्लेच्छ के रूप में "मलय" शब्द का प्रयोग हुआ है[9]। यहाँ मलय शब्द विदेशी के रूप में आया है। यह समानता रोचक है। अभिलेखों से पता चलता है कि प्रारंभिक मध्ययुग में हूणों को भारतीय जाति-व्यवस्था में स्थान प्राप्त हो गया था। हूणों के साथ राजपूतों ने वैवाहिक संबंध स्थापित किए थे[10]। अभिलेख की इस सूचना के आधार पर कहा

---

१. सेठ, इण्डियन कल्चर, जि० १४ ( नं० २ ) पृ० ५२–५३.

२. ए० इ०, जि० १३, पृ० २०७. वही, जि० १५, पृ० २८२ पद संख्या ३.
शान्ति पर्व, अ, ६४. ३. अष्टाध्यायी, ४,२,४१. ४. उपाध्याय, वही पृ० ५९.

५. ए० इ०, ११,५३. ६. वही, १८, १३४–६.

७. "पौरोहित्याद्राजन्यवैश्ययोरिति" मनुस्मृति पर मेधातिथि भाष्य;
गंगानाथ झा द्वारा संपादित, जिल्द १, पृ० २०८. ए० इ०, जि० १५, पृ० ३०८.
गौण मालव खस कुलिक हूण भट चाट सेवकादिनः
ए० इ०, जि० २३ पृ० २९१. ८. क० स० सा०.

९. इस सूचना के लिए लेखक डा० सिद्धेश्वरी नारायण राय का आभारी है।

१०. अजनि कुलचुरीणां स्वामिना तेन, हूणान्वयजलनिधिलक्ष्म्यां श्रीमदावल्लदेव्याम्।
ए० इ०, जि० २, पृ० ४, पद संख्या १५.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



जा सकता है कि तत्कालीन जाति-व्यवस्था में हूणों को देशी क्षत्रिय की भाँति स्थान मिल गया रहा होगा। सम्भव है इस प्रकार के विवाहों के पीछे कोई राजनीतिक मन्तव्य भी छिपा रहा हो किन्तु वह सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है[१]। इस युग में भारत को हूणों की सैनिक सेवायें प्राप्त थीं। तत्कालीन अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रणक्षेत्र में राजा ने अन्य सैनिकों की अपेक्षा इन्हें विशेष सुविधाएँ दे रक्खी थीं। युद्ध के अवसर पर इन्हें सैनिक वस्त्र तथा जूते राज्य की ओर से प्रदान किए जाते थे। अभिलेखों के विवरण से ऐसा पता चलता है कि स्थानीय भारतीय सैनिकों को सम्भवतः इन विशेष सुविधाओं से वंचित रहना पड़ा होगा[२]। सम्भवतः इस प्रकार जूते आदि को धारण करके ही उन्हें युद्ध का अभ्यास रहा हो। इसलिए इस प्रकार की विशिष्ट सुविधा उन्हें मिली होगी।

कल्हण ने छत्तीस प्रकार के राजपूत कुलों को निर्दिष्ट किया है[३]। राजपूतों की उत्पत्ति-विषयक जो भी अवधारणायें निर्मित की जाँय किन्तु यह अवश्य निर्विवाद एवं सुनिश्चित है कि समाज में इनका स्थान क्षत्रियों के अनुरूप था। कथासरित्सागर में वीर-रक्षकों के रूप में राजपूतों का उल्लेख हुआ है[४]।

अनेक प्रारंभिक मध्ययुग के राजाओं का वर्णाश्रम धर्म का संरक्षक कहा गया है। सोमदेव ने कथासरित्सागर में वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करते हुए अंकित किया है[५]। प्रारंभिक मध्ययुग के शासकों यथा—प्रभाकर वर्द्धन[६], हरिवर्मन[७], सरगृह द्वितीय[८], धर्मपाल[९] आदि को वर्ण-धर्म का पालक कहा गया है। इन उद्धरणों की पृष्ठभूमि के

---

१. भारत के प्राचीन इतिहास में विवाहों के माध्यम से राजाओं में अपनी राजनीतिक स्थिति सुदृढ़ करने की परम्परा पायी जाती है। इनमें उदायिन, बिम्बिसार-छलना, बिन्दुसार-कोशला देवी, चन्द्रगुप्त मौर्य ऐथेना, चन्द्रगुप्त १—कुमार देवी, समुद्रगुप्त-शक मुरुंड सिंहल तथा अन्य द्वीप वाले राज्यों से, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य-ध्रुवस्वामिनी, हर्ष की पुत्री का ध्रुव भट्ट द्वितीय से तथा प्रभावती गुप्ता का रुद्रसेन द्वितीय से इत्यादि उल्लेखनीय है। इस प्रकार वैवाहिक सम्बन्धों के माध्यम से इन नृपों ने भारतीय इतिहास की धारा को मोड़ने में सहायता अर्जित की थी।

२. ए० इ०; जि० १४, पृ० २९८. आ० स० मे०, न०, ५५, फलक, ५७.

३. राजतरंगिणी, ७,१६१६–१८. ४. क० स० सा०, जि० १, पृ० ७२, १४०–१५१.

५. स ते दण्डयितुं युक्तः किं नु तस्मै ददासि माम्।
वर्णाश्रमाणां धर्मस्य राजा त्वं तात रक्षिता॥ क० स० सा०, ५२, ११४.

६. वंसखेड़ा ताम्रपत्र, ए० इ० जि० ४, पृ० २१०.

७. का० इ० इ०, जि० ३, पृ० २२२. ८. वही, पृ० १२७.

९. ए० इ०, जि० १७, पृ० ३१८.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



आलोक में यह अवश्य कहा जा सकता है कि प्रारंभिक मध्ययुग के नरेश वर्णाश्रम की प्राचीन महत्ता से सुपरिचित रहे होंगे। वस्तुतः इस प्रकार के वर्णन भारतीय नृपों के लिए साहित्य एवं अभिलेखों में परम्परा से चले आ रहे हैं।

कौटिल्य ने राजकीय सेवा में रत सैनिक की मृत्यु के उपरान्त मृतक के परिवार को राजकीय अनुदान देने का उल्लेख किया है[1]। चन्देल-अभिलेख में त्रैलोक्यवर्मन नामक सैनिक को तुर्कों से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त उल्लिखित किया गया है[2]। अभिलेख में उसके परिवार के जीवन-निर्वाह के लिए राजकीय सहायता के रूप में भूमि दिया था। इस प्रकार के सैनिक अनुदानों का उल्लेख अनेक तत्कालीन राजकीय अभिलेखों में हुआ है[3]।

**वैश्य**—कथासरित्सागर में अधिकांशतः विशाल सम्पदा वाले वैश्यों का उल्लेख है। हिन्दू जाति व्यवस्था के सामाजिक क्रम में इनका तृतीय स्थान था[4] किन्तु तत्कालीन मुसलमान इतिहासकार इब्नखुरदाब्द[5] ने वैश्य को समाज में शूद्रों के बाद पांचवाँ स्थान दिया है[6]। सम्भवतः उसके विवरण कथासरित्सागर के समय के सामाजिक जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं क्योंकि इनमें पर्याप्त मात्रा में स्वतन्त्र चिन्तन एवं उचित वर्णन की निर्भीकता पायीं जाती है। इस तथ्य का अभाव तत्कालीन हिन्दू लेखकों में पाया जाता है क्योंकि उनके विचारों में भारतीय जाति-व्यवस्था की सहस्रों ( शताब्दियों ) वर्ष प्राचीन परम्परित मान्यताएँ जड़कर गई हैं। जब भी प्रा० म० का भारतीय विचारक जातिव्यवस्था के विषय में चिन्तन करता है तभी उसका विचार प्राचीन समय से चली आ रही गौरवमयी परम्पराओं में उलझकर बाधित हो जाता है। अतः वह परम्परित लीक को ही पीट पाता है। नयी मान्यताओं की स्थापना विवश हो नहीं कर पाता।

कथासरित्सागर में वणिक-पुत्र की प्रारंभिक शिक्षा का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया गया है। इस प्रश्न के पहले यह स्पष्ट कर लेना होगा कि वैश्य को वणिक भी कहा जाता था[7] क्योंकि कथासरित्सागर के समय सामान्यतः इनका सम्बन्ध केवल

---

१. अर्थशास्त्र, २,१. काणे, हि० ध० शा०, जि० ३, पृ० १५२. शुक्रनीति, १, पृ० ४२१.

२. तुरुष्क युद्ध मृतः.....पाथे पुत्राय सामन्त नाम्ने प्रसादेन मृत्युक वृत्तौ शासन कृत्वा प्रदत्त इति। ए० इ०, जि० १६, पृ० २०५

३. आ० स० इ० ए० रि०, १९२९-३०, पृ० १६. ए० इ०, २० १३३.
वही, १८, १३५. ४. वेद व्यास स्मृति, १,४.

५. ज० ए०, जनवरी, १८६५ इब्न खुरदाब्द की जीवनी के लिए द्रष्टव्य।

६. इलियट, जि० १, पृ० १६. ७. अत्रि, ५,६. वशिष्ठ, २,२३.
याज्ञवल्क्य, १, ११८. ए० इ० जि० १, पृ० १७४-९.
ए० इ०, जि० २१, पृ० ४८. इ० ए०, जि० १५, पृ० १६२ क० स० सा०, ६, ३३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



वाणिज्य तक ही सीमित रहा गया था[1]। लिपि एवं गणित का स्वल्पज्ञान वैश्य बालक के लिए आवश्यक शिक्षा समझी जाती थी[2]। गणित और लेखन कला के ज्ञान के बिना वाणिक-पुत्र वाणिज्य-व्यवसाय सुचारु रूप से नहीं सम्पन्न कर सकता था। व्यवसायी वणिक के विषय में कथासरित्सागर के विवरणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उनमें क्रय-विक्रय, आयात-निर्यात के वस्तुओं के लिखने की प्रथा थी। आजकल के वणिकों की भाँति उस समय भी "बही" का प्रचलन था[3]।

वणिकों में व्यवसाय के माध्यम से अर्थ के अर्जन के आधार पर विभेद था[4]। उनके व्यवसाय के आधार पर स्थानीय व्यापारी, पर्यटक व्यापारी, द्वीपान्तर यात्रा करने वाले व्यापारी, धन्धों को करने वाले व्यापारी इत्यादि वर्गों में उन्हें बाटा जा सकता है।

वणिकों के व्यापार-विनिमय की वस्तुओं के लिए लक्ष्मीधर ने सभी वस्तुओं की स्वीकृति दी है[5]। यद्यपि इस मत के समर्थन में प्राचीन अनेक धर्मसूत्रकार पक्ष में नहीं हैं[6]। ये धर्मसूत्रकार उस समय के हैं जब प्राचीन भारत में शूद्रों की सामाजिक दशा द्विजों की कोटि की थी। इस विषय पर कथासरित्सागर युगीन प्रा० भ० भा० के विधि संहिताकार लक्ष्मीधर के मत को अस्वीकार नहीं किया जा सकता[7]। ये लकड़ियाँ[8] अगरु[9] तथा अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तुओं का व्यापार करते थे। वणिकों में ही एक वर्ग रत्नों की परीक्षा के ही व्यवसाथ से अपनी जीविका चलाता था[10]।

कथासरित्सागर के अध्ययन से वणिकों के द्वीपान्तर यात्रा के विषय पर प्रकाश पड़ता है[11]। द्वीपान्तर की यात्रा का वणिकों के मध्य महत्त्वपूर्ण स्थान था। वे धन का ह्रास देखते हुए द्वीपान्तर की यात्रा का विचार करते थे[12]। सम्भवतः तभी इन प्रदेशों के लिए सामूहिक नाम "सुवर्णद्वीप" प्रचलित था। कथासरित्सागर में विशेषकर "कटाहद्वीप" तथा "नारिकेलद्वीप" का उल्लेख हुआ है[13]। द्वीपान्तर की यात्रा में व्यापारी अगरु तथा गरम मसाले प्रभूत मात्रा में लाते थे[14]। कथासरित्सागर के अध्ययन से पता चलता है कि सांस्कृतिक दृष्टि से दक्षिणी-पूर्वी एशिया के लोग भारत के व्यापारिक संबंधों की स्थापना के पूर्व तक पाषाण—युगीन संस्कृति के कटघरे में पल रहे थे। वे भारतीय संस्कृति और सभ्यता की तुलना में बहुत निम्न थे। अन्य प्रमुख

---

१. वासुदेव उपाध्याय, सो० रि० क० ना० इ०, ७०.

२. क० स० सा०, ६,३२. ३. वही, ६, ३८–३९. ४. वही, ६,३३–३४.

५. गृहस्थकाण्ड, पृ० २५५. ६. मनु, ३,११२ ७. गृहस्थकाण्ड, पृ० २५५.

८. क० स० सा०, ६,४६. ९. वही, ६१,४. १०. वही, २४, १७८–७९.

मोतीचन्द्र, रत्नपरीक्षा, मैथिली शरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ।

११. क० स० सा०, १३, १८०. १२. वही, १३, १६४. १३. वही, ६१, ११३.

१४. वही, ६१, ४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



द्वीपों का जिनसे कथासरित्सागर कालीन व्यापारियों का व्यापारिक संबंध था उनमें कर्पूर संभव द्वीप[1], कटाह द्वीप[2], सिंहल द्वीप[3], सुवर्ण द्वीप[4], श्वेत द्वीप[5], नारिकेल इत्यादि द्वीपों[6] का उल्लेख है। इससे कथासरित्सागर कालीन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रगति का अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है।

द्वीपान्तर की यात्रा के समय मार्ग की कठिनाईयों का उल्लेख सोमदेव ने अपनी कथाओं के माध्यम से मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत किया है।[7] भारत के बड़े-बड़े अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संबंध में कथासरित्सागर से भारत-चीन के व्यापार का उल्लेख मिलता है। कतिपय चीनी व्यापारी भारत में बीस हजार चीनी घोड़े तथा नाना प्रकार के अनगिनत चीनी कपड़े लाया था।[8] चीनांशुक का उल्लेख संस्कृति के प्राचीन साहित्य में प्रमुख वस्त्र के रूप में हुआ है। सुखधन नामक भारतीय वणिक ने अपनी स्त्री को पाँच हजार चीनी घोड़े और दस हजार कपड़ों के जोड़े क्रय के लिए भेजा था।[9] जिस प्रकार आज बड़े-बड़े प्रतिष्ठित व्यापारियों के यहाँ ग्राहकों के मनोरंजन के लिए स्वागती रहती हैं, संभवतः इसी विचार को ध्यान में रखकर सुखधन नामक वणिक ने अपनी स्त्री ( मानपरा ) को उस चीनी व्यापारी के नगर के खेमे में भेजा था।[10] परन्तु इसकी इस अर्थपिशाचता की सराहना सोमदेव ने उसे 'क्लीव' (नपुसंक) कहकर किया है।[11] कथासरित्सागर में दलालों का उल्लेख है। ये बिना धन लगाए ही बीच में दलाली करके दीनार कमा लिया करते थे।[12]

अपशकुन तथा अशुभ पशुओं की बोलियों का उच्चरित होना व्यापारियों के लिए महत्वपूर्ण था। उदाहरणस्वरूप, शृंगाली का भयंकर रूप से रोना व्यापारी लोग यात्रा कार्य में अपशकुन मानते थे।[13] अतः एक बार कथासरित्सागर में वैश्य व्यापारियों ने शृंगाली के रोने को सुनकर उन व्यापारियों ने चोर डाकुओं आदि के आक्रमण की शंका से सावधान होकर साथ चलने वाले रक्षक दल के सिपाहियों को शस्त्र लेकर तैयार हो जाने के लिए कहा।[14] अन्धकार के चारो ओर फैल जाने पर तब आधी रात

---

१. वही, ४३, १३४.
२. वही, ६१, ११३.
३. वही, ५६, ६२–६३.
४. वही, ५४, १०४.
५. वही, ५४, १९.
६. वही, ५६, ५४, ५६.
७. क० स० सा०, २५, ४७ वही, २५, ३९–५२
८. वही, ४३, ७४-७५
९. वही, ४३, ७२–७५
१०. वही, ४३, ८५–८६
११. वही, ४३, ९४
१२. विनैव स्वधनं मध्याद्दीनारानुदपादयत् , क० स० सा० ५४, १९१
१३. क० स० सा०, २९, १०६
१४. वही, २९, १०७, १०८

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



के समय शस्त्र सज्जित डाकुओं की बड़ी सेना ने व्यापारियों के दल को घेर लिया।[1] फलतः बलवान डाकुओं ने व्यापारी को मार कर उनका सारा धन और साधन लूट लिया।[2] इस उल्लेख से वणिकों में मानवतेर शक्ति में विश्वास की भावना के विषय में पता चलता है।

कथासरित्सागर के अध्ययन से वणिकों के सामान्य गुणों के विषय में रोचक अनुसंधान हो सकने की संभावना है। सोमदेव के अनुसार उस समय का वणिक अत्यन्त लोभी होता था।[3] इस संदर्भ में सुन्दरक नामक एक अर्थपिशाच का उल्लेख समीचीन होगा। उसने अपनी स्त्री तक को धन के लालच में एक व्यापारी को दे दिया था।[4] कथासरित्सागर के विवरणों से यह कहा जा सकता है कि धन के प्रति लोभ वणिक की प्रमुख विशेषता थी।

कथासरित्सागर के समय वणिक स्थल-मार्गों से भी यातायात तथा एक स्थान से दूसरे स्थान का व्यापार संभव करते थे। कथासरित्सागर में उत्तरापथ के मार्ग से व्यापार का उल्लेख[5] है। प्राचीन भारत के प्रसिद्ध स्थलमार्गों में उत्तरापथ यातायात तथा व्यापार की दृष्टि से सब से अधिक महत्त्वपूर्ण था[6]। पाणिनि ने इसी मार्ग को उत्तरपथ कहा है[7]। यह मार्ग बंगाल के समुद्रतट पर स्थित ताम्रलिप्ति के बन्दरगाह से लेकर उत्तर पश्चिम में पुष्कलावली तक निकल जाता था[8]। इस महापथ के पुष्कलावती ताम्रलिप्ति भाग पर तक्षशिला, शाकल, हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज, प्रयाग, वाराणसी, वैशाली, गया, राजगृह, पाटलिपुत्र तथा चम्पा आदि भारत के सुप्रसिद्ध नगर बसे हुए थे[9], जिनमें भारत की अनेक प्रसिद्ध राजवंशों की राजधानियाँ समय-समय पर प्रतिष्ठित थी[10]।

कथासरित्सागर में वैश्य का उल्लेख हुआ है। धर्म-सूत्रकारों ने वैश्य को एक अलग जाति के रूप में रक्खा है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि कथासरित्सागर के काल के पूर्व से ही उनमें शूद्रों के कार्यों की प्रवृत्ति कुछ सीमा तक प्रारंभ हो गई थी।[11]

---

१. वही, २९, १०७, १०८ — २. वही, २९, ११९
३. क० स० सा०, १८, ३०५, ३०६ — ४. वही, ४३, ७२–७५
५. वही, १३, ९३ ; ३७, ३४
६. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, पृ० १६
७. भारत की मौलिक एकता, पृ० ११५
८. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, पृ० १६
९. वही, पृ० १७ — १०. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ० १३, १७
भारत की मौलिक एकता, पृ० ११५
११. अ० स० अल्टेकर, राष्ट्रकूटाज़ एण्ड देयर टाइम्स, पृ० ३३२–३।
घुरेय, कास्ट एण्ड क्लास इन इंडिया, पृ० ५७, ६४, ८८, ९६।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



जाति-व्यवस्था में इस प्रकार के प्रमाण परिस्थिति विशेष में संभवतः मनु के काल से ही पायी जाती है[1]। हेमाद्रि ने स्वर्णकार को धोबी और चमारों की श्रेणी में रक्खा है[2]। लक्ष्मीधर ने भी हेमाद्रि के मत का समर्थन किया है[3]। अल्बेरूनी को भी वैश्य और शूद्र में कोई विशेष अन्तर नहीं दृष्टिगत हुआ अन्यथा वह यह उल्लेख करता कि बाद की दो जातियों में ( वैश्य और शूद्र में ) कोई विशेष विभेद नहीं है। उसके अनुसार ये दोनों एक ही घरों में रहते थे तथा दोनों अपने सामान एक जगह रखते थे[4]। परन्तु अल्बेरुनी का मत अक्षरशः सत्य नहीं कहा जा सकता है। आज भी जब अस्पर्श्यता निवारण के लिए सरकार कानूनी स्तर तक पर तत्पर है तब भी जातियों की अपनी प्राचीन मान्यताएँ, वैयक्तिक खान-पान, व्यावहारिक एवं सामाजिक विभेद उसी प्रकार चले आ रहे हैं। परंतु कथासरित्सागर का वह समय था जब जाति-प्रथा की रक्षा करना शासक का कर्त्तव्य समझा जाता था[5]। ऐसे समय में अल्बेरूनी के इस कथन की सार्थकता को स्वीकार नहीं किया जा सकता। उसके ही अनुसार वैश्य और शूद्र में थोड़ा सा अन्तर है। वैश्य एक यज्ञोपवीत ( दो लरों का ) पहनता था जबकि शूद्र सन से निर्मित यज्ञोपवीत पहनता था[6]। इसके अतिरिक्त वैश्य को प्रत्येक वस्तु को बेचने की स्वीकृति नहीं थी[7] परंतु ग्यारहवीं शती ईसवी के विधि संग्रहकार लक्ष्मीधर अपने पूर्व विधिकारों से असहमति प्रकट करते हुए वैश्य के लिए सभी वस्तुओं को बेचने की स्वीकृति देते हैं[8]। लक्ष्मीधर के इस कथन से भी अनुमान लगाया जा सकता है कि वैश्य और शूद्र कर्मों की दृष्टि से लगभग समान थे, तथापि उनमें वैयक्तिक रूप से महान अन्तर था। दक्षिणी पूर्वी एशिया में भी वैश्य और शूद्रों में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया जाता[9]।

**कायस्थ**—कथासरित्सागर के काल में नवीन जाति का प्रादुर्भाव हो रहा था। इसे कायस्थ की संज्ञा से अभिहित किया गया। इसके पूर्व के साहित्य एवं अभिलेखों में कायस्थ का उल्लेख जाति के रूप में न होकर व्यवसाय ( लेखकों का ) के रूप में हुआ था।[10] कथासरित्सागर के समय में इनका प्रमुख कार्य लेखन अथवा लिपिक का था।[11] वे लिपिक के अतिरिक्त राजस्व, लेखा-जोखा, तथा अन्य महत्त्वपूर्ण रूप से प्रशासन में

---

१. मनु, ३,११२ बौधायन धर्म सूत्र, १, २,४
२. प्रायश्चितकाण्ड, पृ० २५ ३. गृहस्थकाण्ड, पृ० २५५
४. साचो, जि० १, पृ० १०१ ५. कथासरित्सागर, ५२, ११४
राजतरंगिणी, ४, ५२–५८ ६. साचो, जि० २, पृ० १३६
७. मेधातिथि, मनु पर १०,९५ ८. गृहस्थकाण्ड, पृ० २५८
९. रमेशचन्द्र मजूमदार, हिन्दू कालोनीज, पृ १६२
१०. कृपया विशेष अध्ययन के लिए परिशिष्ट २ देखें।
११. भ० प्र० मजूमदार, सो० इ० हि० ना० ई०, पृ० ९८

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



सहयोग देते थे। इस समय लेखक और कायस्थ शब्द पर्यायवाची के रूप में प्रयोग हुआ है।[1] मुगलकाल के प्रशासन में जो कार्य दीवान का था, वही कार्य कथासरित्सागर के प्रशासन में कायस्थ का था[2]। कथासरित्सागर काल के अधिकांश अभिलेखों[3] में कायस्थ को राजकीय लेखों के लेखक के रूप में अंकित किया गया है।

कथासरित्सागर[4] तथा तत्कालीन साहित्य[5] के अध्ययन से कायस्थों के विषय में पता चलता है। साहित्यिक साक्ष्यों से कायस्थ का जो चित्र उभरता है उसकी समता अथवा तुलना में उसी समय के अभिलेखों में महान अन्तर है। साहित्य में इनके

---

१. गुप्त-काल में लेखक को 'कायस्थ' कहा गया है। दामोदरपुर के ताम्र-पत्रों से ज्ञात होता है कि 'प्रथम कायस्थ' स्थानीय शासन में भाग भी लेता था तथा प्रतिनिधि-समिति का वह भी एक महत्त्वपूर्ण सदस्य रहता था। ( ए० इ०, जि० १५ ) प्रथम कायस्थ शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि उस समय कायस्थों का कोई व्यावसायिक अवश्य रहा होगा। गौरीशंकर हीरा चन्द ओझा ने लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि लेखक थे और वे कायस्थ कहलाते थे ( मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ० ४७ )। शूद्रक ने कायस्थों को न्यायालय-लेखक बताया है ( अधिकारिणः अहो नगररक्षिणां प्रमादः। भो श्रेष्ठिकायस्थौ ! न मयेति व्यवहारपदं प्रथममभिलिख्यताम्। मृच्छकटिक अध्याय ९) राजकीय कार्यों तथा न्यायालयों में लेखक ( मुंशी अथवा मुहर्रिर ) का काम करने के कारण कायस्थों को षड्यंत्रों और कूटनीति-विषयक राज्य की सारी गुप्त से गुप्त बातों एवं दाँवपेंच का ज्ञान रहता होगा। शूद्रक ने इसी कारण कायस्थों की उपमा सर्पों से दी है :—

नानाबाशककङ्कपक्षिरुचिरं कायस्थसर्पास्पदम्।
नीतिक्षुपणतटञ्च राजकरणं हिंस्रैः समुद्रायते ॥—मृच्छकटिक ९, १४

ज० उ० हि० सो०, जि० १९ ( १९४६ ), पृ० ८१–२

२. भ० प्र० मजूमदार, वही, पृ० ९८

३. ए० इ० ११,१५ वही, १,३१८ वही, २१, १७१
वही, ३, ३४४, ३४७, ३५७ वही, ११, २५–२६ वही, २०, १९८
वही, ६, १९५, २००, २०२, २०४, २०९ वही, १८, ११० वही, २५, २०७
वही, ६, १९२, १८३, १९४ वही, २३, ११० इ० हि० क्वा०, १९२९, पृ० १६०
रे०, डा० हि० ना० इ० जि० २, पृ० ८४९ वही, ८६५ वही, ९२०
ज० ब० ब्रा० रा० ए० सो०, २६, २५०

४. क० स० सा०, ४२, ९०–९४ ४२, १०८–११३

५. राजतरंगिणी. ४,६२१,२९,३० ; ५, १७५, १८०–१८१, १८४, ३९८ ;
६, ८,३८,१३०,१३६,१५४ ; ७, ४५,११०६ ; ८, २३,८३
नर्ममाला ( काश्मीर सिरीज़ आफ दि टेक्स्ट एण्ड सिरीज़, पूना, १९२४ संस्करण, प्रकाशक रिसर्च डिपार्टमेण्ट, काश्मीर राज्य ) प्रथम परिहास, श्लोक १–५०।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



हीनचरित्र का उल्लेख है। समाज के प्रशासन का भार इन्हीं के सुदृढ़ स्कन्धों पर आश्रित था किन्तु तत्कालीन राजनीतिक संक्रान्ति के युग में सब प्रकार के प्रशासकीय कार्य वे कर रहे थे। राजतरंगिणी में इनके द्वारा किए गए जनता पर भयंकर अत्याचारों के कातर स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं। कल्हण के अनुसार इनका जन्म मन्दिरों में भयंकर संक्रान्ति तथा उसे आर्थिक दृष्टि से निर्बल बनाने के लिए हुआ है। चौपायों ( विशेषकर गायों ) के लिए विशाल चारागाह की प्रथा को नित्य प्रति कम करते जा रहे थे। कल्हण की राजतरंगिणी के ये शब्द इनके द्वारा पिसी हुई क्लान्त जनता का कातर स्वर है जिसे इतिहासकार कल्हण ने मूक किन्तु स्पष्ट भाषा में व्यक्त करने का प्रयास किया है। इन विवरणों के आधार पर एक ओर तो समाज में कायस्थों की सम्प्रभुता, उनके द्वारा अर्जित महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय पदों पर प्रतिष्ठित होने का पता चलता है तो दूसरी ओर उनके भ्रष्ट एवं कुत्सित अत्याचारों के वर्णन में भले ही इतिहासकार कल्हण ने अतिशयोक्ति का प्रश्रय लिया होगा किन्तु जनता की मूकवेदनापूर्ण कराह का स्वर अवश्य सुना जा सकता है। साहित्य प्रणेता जनता के होते हैं तथा जनता के मध्य रहते हैं। अतः जनता का सही प्रतिनिधित्व तत्कालीन साहित्य से ही सम्भव है। साहित्य प्रणयन में ग्रन्थकार को पर्याप्त स्वतंत्रता रहती है। वह विषय-वस्तु को अपनी इच्छानुसार तिल का ताड़ बना सकता है। अभिलेख अधिकांशतः शासक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि अभिलेखों के प्रचलन की परम्परा की उपादेयता शासक वर्ग के लिए अधिक थी। यद्यपि व्यैयक्तिक अभिलेख भी पाए जाते हैं किंतु इस कोटि के अभिलेखों का उद्देश्य अधिकांशतः व्यक्तिगत दानकर्ता के धार्मिक दान के क्रिया कलापों का संग्रह करना था। कथासरित्सागर एवं अन्य समसामयिक साहित्य के माध्यम से खींचे गए कायस्थ—चित्र तथा तत्कालीन अभिलेखों में बहुत अधिक वैषम्य है। एक ओर उसे चोर, डाकू, लुटेरा तथा भ्रष्ट आचरण वाला कहा गया है वहीं उसी काल के अभिलेखों में उसे कर्मठ, सुयोग्य विदग्ध एवं सुयोग्य प्रशासक के रूप में अङ्कित किया गया है। इस विषमता के मूल का अध्ययन निस्सन्देह रोचक होगा। इस संदर्भ में यह महत्त्वपूर्ण विषय है कि अधिकांशतः अभिलेख राजकीय है। कायस्थ राजकीय प्रशासक ( कर्मचारी ) थे तथा राजकीय अभिलेखों के लेखक कायस्थ हैं। प्रश्न उठता है कि राजा स्वयं अपने अभिलेखों में अपने कर्मचारियों की आलोचना कैसे कर सकता हैं। यदि वह ऐसा करता तो वह कर्मचारियों की नहीं प्रत्युत सीधे अपनी ही आलोचना करता क्योंकि ऐसे उल्लेख राजा की अयोग्यता तथा उसके प्रशासकीय कार्य-क्षमता में सन्देह उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त कारण होते। साहित्य एवं अभिलेख के विवरणों की विषमता का अध्ययन दो पक्षों से संभव है। इस पहलू को पहले राजकीय दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए तथा यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रशासन में जनता के हितों के साथ-साथ प्रशासकीय हितों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इन अभिलेखों का सीधा संपर्क प्रशासक से था। इस महत्त्वपूर्ण जटिल समस्या के

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



विचारने का दूसरा भी विकल्प है। यह जनता का है। जनता चाहती है कि प्रशासन अच्छा हो उसकी सभी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो एवं वह सुरक्षित हो ( वाह्य अथवा आन्तरिक दोनों दृष्टियों से ) किन्तु राजस्व की वृद्धि न हो। साहित्य जनता का अस्त्र है जिसके माध्यम से वह समय का चित्र अङ्कित करता है। उसमें जनता का, जनता की दृष्टि से ही सत्य निहित रहता है। राज्यादेशों में राजा का मन्तव्य निहित रहता है। कायस्थों की प्रशासकीय योग्यता तथा उनकी विद्वत्ता में किंचित मात्र सन्देह नही हैं। कायस्थों ने जनता का हित कम किया होगा इसमें भी सन्देह नहीं है किन्तु कथासरित्सागर-कालीन साहित्य की आलोचना के पूर्ण उत्तर-दायित्व का श्रेय इसे ही अकेले मिले यह भी उचित नहीं है क्योंकि कायस्थ शासक के सेवक थे उन्हें राजाज्ञा का पालन करना था। चाहे वह उचित हो अथवा अनुचित। कथासरित्सागरकालीन भारत की राजनीतिक स्थिति अत्यन्त विषम परिस्थितियों से गुजर रही थी। इस समय भारत में राष्ट्रीय भावना का ह्रास हो चुका था। हर्ष के बाद से ही भारत में राजनीतिक एकता समाप्त हो चुकी थी। मुसलमानों के भयंकर आक्रमण हो रहे थे। छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त होने के कारण उनकी आय के साधन भी कम हो गए। मुसलमानों के आक्रमण, राजनीतिक संक्रान्ति तथा भ्रष्ट आचरण से विलासिता को प्रोत्साहन मिला। ये सब राजतन्त्र के खर्चीले पक्ष हैं। इनमें से कोई एक कारण ही तत्कालीन सामन्ती राजतन्त्र की कमर तोड़ने के लिए पर्याप्त था। मुसलमानों के आक्रमण से इस समय राजनीतिक उथल-पुथल थी। ऐसी संक्रांति के युग में राज्य की रक्षा के लिए अधिक सेना की आवश्यकता थी। युद्ध संबंधी साधनों को सुदृढ़ बनाना था। इन सब कार्यों की पूर्ति के लिए राजस्व की आवश्यकता थी। अतः इन प्रशासन के अधिकारियों ने राज्य की माँग को पूरा करने के लिए जनता ( जो कि केवल यही एक श्रोत है ) का जमकर शोषण किया होगा। इसमें सन्देह नहीं है कि जनता तथा अधिकारी वर्ग दोनों ही असहाय थे। यह यदि नितान्त असंभव नहीं तो कम असंभव भी नहीं है कि प्रशासक साम्राज्य के सभी व्यक्तियों को संतुष्ट कर सके।

ब्राह्मणों की भाँति कायस्थों को भी उनके विद्वत्ता तथा ज्ञान के लिए अग्रहार दान दिए गए[1] थे। कथासरित्सागर-कालीन अभिलेखों में प्रारंभ में कायस्थ को लेखक के व्यवसाय के रूप में दिखाया गया है। परंतु बाद में यह व्यवसाय जाति के संकीर्ण बन्धनों में बँध गया। समस्त स्त्रोतों के अध्ययन के साथ यह निष्कर्ष सम्पादित किया जा सकता है कि खृष्टाब्द की नवीं शताब्दी के पहले कायस्थ व्यवसाय के रूप में थे।[2] कथासरित्सागर के काल में कायस्थों ने अनेक अभिलेखों को

---

१. ए० इ०, १९, २०९ तथा २१३

२. वासुदेव उपाध्याय, सो० रि० क० ना० इ०, पृ० ८३।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



लिखा।[1] इससे समाज में उनके बुद्धिजीवी होने का प्रमाण मिलता है।[2]

**शूद्र**—कथासरित्सागर के अध्ययन के द्वारा तत्कालीन समाज में शूद्रों के विषय में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं। प्राचीन भारत की अपेक्षा कथासरित्सागर के काल में इनकी दशा सुधरने लगी थी। जातियों के स्वरूप के संबंध में यह उल्लेख समीचीन प्रतीत होता है कि इस समय जाति व्यक्ति की जन्मना थाती समझी जाती थी किन्तु प्राचीन समय में जाति के साथ कर्म का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध समाप्त हो चुका था। प्राचीन भारत की जाति-व्यवस्था का यही मूल आधार था किन्तु इस समय तक उसे विस्मरित कर दिया गया था। जाति के साथ कर्म का प्राचीन समय से संबंध चला आ रहा था। कथासरित्सागर तथा अन्य तत्कालीन साहित्यक एवं अभिलेखों के अध्ययन से पता चलता है कि यह संबंध धीरे-धीरे समाप्त हो रहा था। जाति का निर्धारण जन्म से होता था किन्तु उनके कर्म के चयन में उनकी मनोवृत्ति सामाजिक आवश्यकता तथा आर्थिक दबाव के साथ-साथ राजनीतिक दृष्टिकोण इत्यादि प्रधान रूप से कार्य करते थे। उदाहरण स्वरूप कथासरित्सागर में अग्निदत्त नामक ब्राह्मण शूद्र का कार्य करता था।[3] कर्म के सिद्धान्तों से जाति की परम्परा का ह्रास होने के कारण यद्यपि जाति विशेष को उचित महत्त्व दिया जाता था किन्तु उन्होंने कर्म और आचरण की प्रधानता को भी स्वीकार किया था। इसी कारण लक्ष्मीधर ने शूद्रों को आततायी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य से श्रेष्ठ माना है।[4]

वर्णाश्रम-व्यवस्था में शूद्र का परम्परा से चतुर्थ स्थान था। इनका प्रमुख कार्य शेष तीन वर्णों की सेवा करना था।[5] शूद्र की उत्पत्ति के संबंध में प्राचीन समय से चली आ रही मान्यता को प्रारंभिक मध्ययुग में भी स्वीकार किया गया है[6] किन्तु वायु[7] और ब्रह्माण्ड[8] पुराण शूद्रों की उत्पति का संबंध वशिष्ट से जोड़ते है।

स्मृतियों में शूद्र के कर्म के आधार पर भेद की प्रथा पायी जाती है।[9] आचरण और कर्मों के अनुसार इस प्रकार पवित्र शूद्र को सामान्य शूद्र से अलग रक्खा गया है। इसी कारण पवित्र शूद्र को श्राद्ध करने की स्वीकृति दी है।[10]

---

१. ए० इ०, जि० १, पृ० १२३ वही, जि० १, पृ० १४७ वही, जि० १, पृ० ३६ वही, जि० १, पृ० ८१ वही, जि० १, पृ० १२२ वही, जि० १, पृ० १४७ वही, जि० २, पृ० ३२ वही, जि० ११, पृ० ४१ और ३२ वही, जि० १२, पृ० ६१ इ० ए०, जि, ५९, पृ० १६२ वही, जि० ४१, पृ० २०३ ए० भ० ओ० इ०, ( १९४१-४२ ), पृ० ३१८ २. कृपया परिशिष्ट सं० २ देखें।

३. वही, ४, ११४ ४. गृहस्थकाण्ड, पृ० ४२७ ५. मनु, १०, १२१ शूद्रस्य द्विज शुश्रुणा परमोधर्म उच्यते, पराशर, १, ६९ ६. ऋग्वेद, १०

७. वायु पुराण, २, २,९० ८. ब्रह्माण्ड पुराण, ३, १०, ९६ ९. लघु विष्णु, ५, १०

१०. पा० वा० काणे, हि० ध० शा०, जि० २, भाग १, पृ० १५४-६४

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



हुएनसांग ने शूद्र को कृषक कहा है।[1] याज्ञवल्क्य शूद्र के लिए कृषि, गोपालन, व्यापार, चित्रकला, नृत्य, गायन तथा वाचन के व्यवसायों के विषय में उल्लेख करता है परन्तु शनैः शनैः काल की गति के साथ व्यवसायों का जाल बढ़ता गया क्योंकि वैश्यों ने बहुत से व्यवसाय छोड़ दिए थे। पराशर ने शूद्रों के लिए नमक, मधु, तेल, घी और दूध के बेचने की स्वीकृति दी है।[2] शूद्र किसी प्रकार के शिल्प को अपना व्यवसाय बना सकता था।[3] मेधातिथि ने उन शूद्रों को जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी उनके लिए द्वजों की सेवा का विधान नहीं बताया है।[4] परंतु लक्ष्मीधर के अनुसार यदि वह द्विजों की सेवा नहीं करता है तब भी उसको ब्राह्मण की श्रद्धा करनी चाहिए।[5] संभवतः प्रारंभ में इस भावना के पीछे कोई हेय मन्तव्य नहीं रहा होगा क्योंकि ब्राह्मण अपना संपूर्ण जीवन समाज के शैक्षिक एवं धार्मिक क्रियाकलापों के लिए होम कर दिया करता था। अतः उसे उसके परिवार को सेवा की आवश्यकता थी। इसलिए समाज ने इस बुद्धिजीवी वर्ग की परिचर्या का भार शूद्र के कन्धों पर डाला। संभवतः भारतीय समाज में सामञ्जस्य के लिए ऐसा किया गया होगा। इसीलिए मनु ने स्यात् शूद्र के लिए धन संचय का विधान नहीं बताया है[6] यदि शूद्र धन-संचय कर लेता तो द्विज की सेवा नहीं हो पाती। परिणामतः वे समाज को उच्च ज्ञान तथा विशिष्ट अध्ययन के माध्यम से कुछ नहीं दे पाते। परन्तु इस अर्थ को यदि दूसरे विकल्प से विचार किया जाय तो इसमें शूद्र के शोषण की भावना का आभास होता है। संभवतः शूद्र को इसीलिए अस्पर्श नहीं माना है। यदि इन्हें अस्पृश की कोटि में रखते तो इनकी सेवा-वृत्ति कौन करता। शूद्र का सबसे प्रमुख धर्म विप्र की सेवा करना था[7]। संभवतः इसी कारण इनको धर्म के मायावी चक्कर से अत्यन्त बुद्धिमानी से बचाया गया है। धर्म कुछ अर्थों में एक मनोवैज्ञानिक लिप्सा है। अतः शूद्र में भी मुक्ति पाने की कामना की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक था। जिस मुक्ति के लिए ब्राह्मण को अहर्निश यत्न करने पड़ते थे वही मुक्ति शुद्र को उसकी धर्म में आस्था, श्रद्धा और प्रेम-मात्र से ही सुलभ थीं। वेदों के अध्ययन, श्रवण एवं उच्चारण की उन्हें स्वीकृति नहीं थी किन्तु शूद्र की इस मनोवृत्ति की तुष्टि के लिए पुराणों ने श्रवण के विधान के माध्यम से की है।[8]

शूद्र के व्यवसाय के संबंध में संस्कृत वाङ्मय में अनेक विषमताएँ पायी जाती हैं। उदाहरण के लिए पराशर ने मधु, मद्य, श्रवण, दधि, घृत एवं पय को छोड़कर

---

१. वाटर्स, जि० १, पृ० १६८ २. पराशर स्मृति, १, ६८
३. बृहस्पति स्मृति, ५, ५३० पृ० ३०४ ( गा० औ० सि० )
४. मेधातिथि, ३, १५३; ८, ४१५ ५. गृहस्थकाण्ड, पृ० ८६।
६. मनु, १०, १२६ ७. मनु, १०, १२६ पराशर, १, ७६
८. गृहस्थकाण्ड, पृ० २७३

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



अन्य सब वस्तुओं के विक्रय की उन्हें स्वीकृति दी है किन्तु जिन वस्तुओं के बेचने के पक्ष में पराशर नहीं है उन सब वस्तुओं के पक्ष में कालिकापुराण में मत व्यक्त किया गया है।[1] कालिकापुराण संभवतः तांत्रिक ग्रन्थ होने के कारण इसमें ब्राह्मण धर्म की मान्यताओं को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है। इसमें प्रत्येक वस्तु के निरीक्षण का अपना अलग कौलकापालिक दृष्टिकोण है। कथासरित्सागर के समकालीन लक्ष्मीधर ने गृहस्थकाण्ड में स्वयं अनेक मतमतान्तरों का निरीक्षण कर यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया है कि शूद्रों को मद्य आदि वस्तुओं का विक्रय नहीं करना चाहिए।[2] संभवतः कथासरित्सागर के काल में इन्हीं मान्यताओं का प्रचलन रहा होगा।

शूद्र के बढ़ते हुए व्यवसाय से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कथासरित्सागर के समय उनकी स्थिति में सुधार हुआ होगा।[3] इस समय इनको वैश्य के कर्मों का अधिकार मिल गया था। अल्बेरूनी के अनुसार यदि यह प्रमाणित हो जाए कि उसने वेद के मन्त्रों का उच्चार किया है तो इसकी जीभ काट ली जाती थी।[4] अत्रि का कथन अल्बेरूनी के इस कथन से साम्य रखता है।[5] संभवतः शूद्र को जप और होम से वंचित करने की प्रवृत्ति के पीछे द्विजों की श्रेष्ठता की स्थापना की मनोवृत्ति निहित होगी। इसके पीछे धर्मसूत्रकारों का जो भी मन्तव्य छिपा हो स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि शूद्र जप और तप ऐसे जटिल कर्मकाण्डों की चिन्ता ही नहीं करते थे।[6]

कथासरित्सागर के अनुशीलन से पता चलता है कि सामान्यतः शूद्रों के मध्य बौद्ध धर्म अधिक लोकप्रिय था।[7] इस धर्म के अनुयायी को स्नान, शौच आदि से हीन और अपने समय पर भोजन के लोभी, शिक्षा और केशों से हीन कोपीन पहनने वाले तथा विहारों में स्थान मिलने के लोभ से सभी नीच जाति के व्यक्ति बौद्ध धर्म को ग्रहण करते थे। बौद्ध धर्म में तन्त्र-यान के प्रचार से वज्रयान शाखा का जन्म हुआ। पंच मकारों का सेवन धर्म की प्रमुख आवश्यकता थी। जैसे-जैसे बुद्ध की शिक्षाओं का प्रभाव कम होने लगा उसी समय से ही अनेक अवांछनीय तत्त्वों का इस धर्म में क्रमशः समावेश होना प्रारम्भ हुआ। स्वयं तथागत ऐसे तत्त्वों के घोर विरोधी थे। प्राचीन

---

१ विक्रयं सर्ववस्तूनां कुर्वन शुद्रों न दोषभाक्। मधु चर्म सुरालाक्षों मुक्त्वा मांस न च पंचमम्॥ कालिकापुराण, द्रष्टव्य, गृहस्थकाण्ड, पृ० २७०।

२. वही, पृ० २७७

३. वासुदेव उपाध्याय, सो० रि० क० ना० इ०, पृ० ८८

४. साचो, जि० २, पृ० १३६

५. अत्रिसंहिता, १९, १३६

६. बृज नारायण शर्मा, सोशल लाइफ इन ऐशेण्ट इण्डिया, पृ० ५४

७. क० स० सा०, २७, ३०।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



समय से चली आ रही तन्त्र की प्राचीन परम्परा के विशाल अजगर ने निर्बल बुद्धधर्म को प्रारम्भिक मध्ययुग में अपने कुण्डलियों में जकड़ लिया। फलतः हिंसावादी बौद्ध धर्म में मांस, मत्स्य, मैथुन एवं मुद्रा का खुलकर सेवन होने लगा। प्रारम्भ में तो बौद्ध धर्म के संघों में स्त्रियाँ तथा असंयमी व्यक्तियों के निवास की आज्ञा नहीं थी। कालांतर में संघों की आश्चर्यजनक अधिकता तथा बौद्ध धर्म की लोकप्रियता के कारण अधिक लोगों को बौद्ध संघ के जीवन ने आकृष्ट किया। फलतः संघों की संख्या में वृद्धि हुई होगी। अतः परिणाम यह हुआ कि संघ-जीवन के लिए जो योग्य नहीं थे उन्हें भी उसमें स्थान मिला। ये इस जीवन के लिए परिपक्व नहीं थे।[1] इस प्रकार की प्रवृत्ति ने बौद्ध धर्म में तथागत के जीवन काल में ही प्रवेशकर लिया था।[2] भैरवी चक्र के अनुसार सभी द्विजातीय हैं।[3] तांत्रिक बौद्ध धर्म के बहुत से सन्त शूद्र थे। इस संप्रदाय के प्रमुख संत मत्स्येन्द्रनाथ को सामान्यतः बंदर द्वीप का पीवर माना जाता है।[4] कतिपय ऐसे सिद्धाचार्यों के नाम आए हैं जिनमें डोमिया या तैलीया निश्चय ही डोम तथा तेली के कुल के रहे होंगे।[5] तान्त्रिक बौद्ध धर्म का प्रचलन कथासरित्सागर के काल में इसलिए भी शूद्रों के मध्य अधिक लोकप्रिय रहा होगा क्योंकि इसके प्रवर्तक तथा अधिकांश संत शूद्र थे। अतः शूद्रों ने शूद्रों से सम्बन्धित कर्मकाण्डों से रहित तांत्रिक बौद्ध धर्म को अपनाया होगा। इसके मध्य इसकी लोकप्रियता का अन्य कारण कर्मकाण्डों की सरलता को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

कथासरित्सागर के अध्ययन से शूद्र के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय के समाज का शूद्र के प्रति कुछ सुधारवादी दृष्टिकोण हो गया था। यद्यपि इस प्रकार की प्रवृत्ति के कुछ ऐतिहासिक उदाहरण गुप्तकाल में भी देखे जा सकते हैं। पुराणों में वर्णित प्राचीन मान्यता कि शूद्र अपने नाम के अन्त में दास शब्द का प्रयोग करें[6] के नियमों की शिथिलता का दृष्टान्त ब्राह्मण रविकीर्ति के पूर्वज का नाम वाराहदास था[7] से चल जाता है। इस

---

१. विनय तोष भट्टाचार्य, तान्त्रिक कल्चर एमंग दी बुद्धिस्टस, दी कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया, जि० ४, पृ० २६१

२. भट्टाचार्य, एन इन्ट्रोडक्शन टु बुद्धिस्ट एसोट्रिज्म, पृ० २२ और आगे वही, जि० ४, विशिष्ट अध्ययन के लिए द्रष्टव्य।

३. प्रवते भैरवी चके सर्वे वर्णाः द्विजातयः।

४. मत्स्येन्द्र नाथ, काल ज्ञान निर्णय, भूमिका पृ० १७

५. वृजनारायण शर्मा, सोशल लाइफ इन नार्दन इण्डिया, पृ० ५५

६. विष्णु पुराण, २७, ६–९

७. रामशरण शर्मा, शूद्राज इन ऐशेण्ट इण्डिया, पृ० २५४, क० इ० इ०, जि० ३, अ० स०, ३५, पृ० ९–१२

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



प्रकार ऐतिहासिक उद्धरणों की कमी नहीं है। उदाहरणार्थ चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समकालिक सामन्त के पिता का नाम महाराज विष्णुदास था।[1] कथासरित्सागर एवं अभिलेखों के अनुशीलन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्राचीन स्मृतियों में शूद्रों को सेना के कार्य से वंचित रखने की मन्त्रणा दी है[2] किन्तु प्रारम्भिक मध्ययुग के अभिलेखों में शूद्र को सैनिक के रूप में निरूपित किया गया है।[3] स्मृतियों में शूद्र के लिए किसी भी संस्कार का विधान नहीं है[4] किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि शूद्र शिक्षाध्ययन से विमुख रहता होगा। व्यास स्मृति के अनुसार संस्कार बिना मन्त्र से सम्पन्न होते थे।[5] मेधातिथि और विश्वरूप ने शूद्र के अध्यापक होने की स्वीकृति दी है। शूद्र वेद को छोड़कर नाना प्रकार के ज्ञान, विज्ञान, व्याकरण शास्त्र एवं शिल्प कला का अध्यापक हो सकता था।[6] अध्ययन के दृष्टिकोण से भी कथासरित्सागर का काल शूद्र के लिए महत्त्वपूर्ण था।

**कथासरित्सागर में अन्य जातियाँ**

कथासरित्सागर के समाज में शूद्र के अतिरिक्त एक ऐसा वर्ग था जो आर्यों की वर्ण-व्यवस्था के बाहर था। अल्बेरूनी ने उसे अन्त्यज कहा है[7]। शूद्र के बाद समाज में इनका स्थान आता था। ये नाना प्रकार से समाज की सेवा करते थे। ये नगर-सीमा के बाहर रहते थे। फाह्यान ने अपने यात्रा-विवरण में लिखा है कि चाण्डाल और मृतप समाज की अस्पृश्य जातियाँ हैं। जब ये नगर में प्रवेश करते थे तो सूचना देने के लिए लकड़ी से ढोल बजाते थे, जिससे लोग उनके मार्ग से हट जाय तथा स्पर्श बचाकर चलें।[8] य्वान् च्वाङ्ग के अनुसार मछुए, जल्लाद तथा नट आदि की गणना चाण्डालों की कोटि में होती थी। नगर में चलते समय इनको दबक कर चलना पड़ता था।[9] कादम्बरी में बाण ने चाण्डालों को अस्पृश्य बताया है। उसने एक परम सुन्दरी चाण्डाल-कन्या के विषय में लिखा है कि वह न दिखाई देने वाली वस्तु के समान स्पर्शवर्जिता तथा चित्रलिखित वस्तु के समान वर्णनमात्र का फल अवश्य थी ( अमूर्तामिव स्पर्शवर्जितामालोक्यगतामिव दर्शनमात्रफलाम् )[10]। कादम्बरी के वर्णन

---

१. फ्लीट, का० इ० इ०, जि० ३, भाग २, पृ० ११, ; पा० टि० १

२. शुक्रनीतिसार, २, ४२१

३. ए० इ०, जि० ३, पृ० १६ वही, जि० ५ पृ० २६९ वही, जि० ११, पृ० ३१९ वही, जि० २८, पृ० १४३ ४. लघुविष्णु, १,१५

५. व्यास स्मृति, १,६

६. मेधातिथि मनु पर ३, ६७, १२१ ; १५६ ; १०, १२७ याज्ञवल्क्यपर विश्वरूप, १, १३

७. साचो, जि० १, पृ० १०१ मनु, १०, १२

८. ए रिकार्ड आफ बुद्धिस्टिक किंगडम्स, ले० फाहियान ( अनुवादक लीग ), पृ० ४३ (गाइल्स, फाहियान, पृ० ४३ ) ९. वाटर्स, १, १४७ १०. कादम्बरी, पृ० २५

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



से विदित होता है कि इनके रहने का ढंग गर्हित तथा घृणित था।[1]

कथासरित्सागर में निम्नकोटि, असभ्य एवं जंगली तथा अन्त्यज जातियों का उल्लेख हुआ है। इस ग्रन्थ में निम्नलिखित प्रकार के अंत्यजों का उल्लेख हुआ है—

( १ ) **शबर**[2]—कथासरित्सागर में शबर जाति का उल्लेख है। यह एक प्रकार की जंगली जाति थी। आखेट आदि के माध्यम से यह जीविका चलाती थी। साँपों को पकड़ कर उनके प्रदर्शन द्वारा यह मनोरंजन करती थी।[3] इनकी बस्तियां सम्भवतः जंगलों में हुआ करती थी।[4] इनका अपना एक अलग कबीला होता था। उसमें सम्भवतः उन सबका नेतृत्व करने बाला कोई शबराधीश हो जाता था।[5]

( २ ) **पुलिन्द**—अंत्यजों में पुलिन्द का नाम उल्लेखनीय है। कथासरित्सागर में पुलिन्दों को विन्ध्य-उपत्यकाओं में निवास करनेवाली जंगली जाति के रूप में उल्लिखित किया गया है।[6] इनको शक्ति अथवा देवी दुर्गा का अनन्य उपासक के रूप में वर्णित किया गया है। संभवतः विन्ध्याचल की देवी का इन अनार्य जंगली कबीलों के धार्मिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा होगा।

( ३ ) **भील**—कथासरित्सागर में भीलों का उल्लेख एक जंगली जाति के रूप में हुआ है। पुलिन्दों की भाँति ये भी चण्डी देवी के अनन्य आराधक थे। कथासरि-

---

१. वही, पृ० २५ वही, पृ० ४१–४२

२. हरिणाखेटके जातु भ्राम्यन्नुदयोऽथ सः। शबरेण हठाक्रान्तमटव्यां सर्पमैक्षत ॥
क० स० सा०, ९, ७४

ततः स शबरोऽवादीज्जीविकेयं मम प्रभो। कृपणोऽहं हि जीवामि भुजगं खेलयन्सदा ॥
कथासरित्सागर ९।७६

ततस्तया मनोवत्या पत्न्या मित्रेण तेन च। कृतार्थः शबरेन्द्रेण तत्रातिष्ठमहं सुखी ॥
क० स० सा० २२।१५०

अयं च शबरावीशाः स्वयंबरसुहृन्मया। देशान्तरगतेन प्राक्प्राप्तः कृच्छ्रेकबान्धवः ॥
क० स० सा० २२।१२०

विष्णुदत्तो दिनस्यान्ते शबरग्राममाप सः ॥ क० स० सा०, ३२, ५७

स चान्तः शबरो गत्वा दृष्ट्वा भार्यां तथास्थिताम्।
चिच्छेद तस्य सुप्तस्य तज्जारस्यासिना शिरः ॥ क० स० सा०, ३२,६९

३. क० स० सा०, ९, ७६ ४. वही, ३२, ५७ ५. वही, २२, १२०

६. तत्र वत्सेशमित्रस्य विन्ध्यप्राग्भाखासिनः। गृहं पुलिन्दकाख्यस्य पुलिन्दाधिपतेरगात् ॥
क० स० सा० १२, ४५

प्रभोः पुलिन्दकाख्यस्य देवीं पुजयतोऽन्तिकम् ॥ क० स० सा०, २२, ६४

भीतः पान्थाः स्म इत्याह विष्णुदन्तः पुलिन्दपम् ॥ क० स० सा०, ३२, ६८

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



त्सागर में भीलों को चण्डी देवी को बलि के माध्यम से प्रसन्न करते हुए दिखाया गया है।[1]

( ४ ) **निषादराज**—कथासरित्सागर में निषादराज का उल्लेख द्वीपान्तर-यात्रा के सन्दर्भ में हुआ है। उनका ऐसा अनुभव था कि द्वीपान्तर यात्रा में बन्धुजन का मिलना मरुभूमि में अमृत के झरने के समान सुखद होता है।[2]

( ५ ) **नापित**—आलोच्य ग्रन्थ में नापित को क्षौर कर्म करता हुआ वर्णित किया गया है।[3] यह प्रारम्भ से ही धूर्त ओर चतुर होता था।[4] कथासरित्सागर में एक वृद्ध धूर्त नापित का उल्लेख है।[5] क्षेमेन्द्र के अनुसार नापित सदैव रसिक लोगों का मित्र तथा वेश्याओं का शिक्षक होता था।[6]

( ६ ) **बढ़ई**—को कथासरित्सागर में यन्त्रकार कहा गया है।[7] यह नाना प्रकार के लकड़ी के वस्तुओं को बनाता था।

( ७ ) **तन्तुवाय**—का कथासरित्सागर में उल्लेख प्राप्य है।[8] कथासरित्सागर

---

१. देवाग्रतोऽतिमहती भिल्लसेनाभिधाविता। तैर्वरिणा नः पञ्चाशन्मात्रा भिल्ले रणेहताः॥
क० स० सा०, ५१, १६४

सहस्त्रं च पदातीनामश्वानां च शतत्रयम्। अस्मदीयैश्च भिल्लानां द्वे सहस्त्रे निपातिते॥
वही, ५१, १६५

तच्छ्रुत्वा कुपितोराजा पृथ्वीरूपः प्रभाष्य सः। जधाव्य सेनां भिल्लानां कौरवणामिवार्जुनः॥
वही, ५१, १६७

स चिच्छेदैकभल्लेन भिल्लसेनापतेः शिरः वही, ५१, १६८

ततो लब्धजयावृते तत्सैन्ये मिलितेऽखिले। पलाय्य हतशेषास्ते भिल्ला दश दिशो ययुः॥
वही, ५१, १७०

२. अस्ति वारिनिधेर्मध्ये द्वीपमुत्स्थलसंशकम्। तत्र सत्यव्रताख्योऽस्ति निषादाधिपतिर्धनी॥
क० स० सा०, २५।३३

३. नकस्तत्राभ्युपापः स्याद्यत्सुहृन्मेऽस्ति नामितः। इदृग्विज्ञानकुशलः स चेत्कुर्यादिहोद्यमम॥
क० स० सा० ३२।१३५

४. इत्यालोच्यैव सा तस्य नापितस्यान्तिकं ययौ। तस्मै मनीषितं सर्वतच्छशंसार्थसिद्धिदम्॥
वही, १३६

५. ततः स नापितो वृद्धो धूर्तश्चैवमचिन्तयत्। उपस्थितमिदं दिष्ट्या लाभस्थानं ममाधुना॥
वही, १३७

६. समयमात्रिका ( निर्णय सागर प्रेस ) १, ८

७. क० स० सा० ६३।२२१ ८. वही, ५२।९९

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



में एक स्थल पर तन्तुवाय स्वयं कहता है कि मैं कपड़ा बुनने के विज्ञान को जानता हूँ और प्रतिदिन नित्य पाँच जोड़े कपड़ा बुनता हूँ।[1]

( ८ ) **धीवर**[2]—कथासरित्सागर में इन्हें समुद्रजीवी के रूप में अंकित किया गया है। सम्भवतः निषाद की एक विशिष्ट जाति धीवर कहलाती होगी। ये वैश्यों के साथ द्वीपान्तर यात्रा में जाते थे। सम्भवतः समुद्र की यात्रा में धीवर अत्यन्त कुशल थे। कथासरित्सागर के 'धीवराधिप' शब्द से इनके श्रेणी का बोध होता है। सम्भवतः ये एक समुदाय ( संघ ) में रहते थे। उनका एक संघ भी होता था जिसका नेतृत्व धीवरों का ही कोई नेता करता रहा होगा।[3]

( ९ ) **व्याध**—अन्त्यज की कोटि में माना जाता था। ये जंगली पशुओं को मारकर अपनी जीविका चलाते थे।[4] आखेट में समाज के उच्चवर्ग का साथ देते थे।

( १० ) **डोम्ब ( डोम )**[5]—चाण्डाल[6] का कर्म करनेवाले नीच जाति को डोम कहा जाता था। ये चोरी भी करते थे।[7] इनको गोमांस-भक्षण करते हुए निर्दिष्ट किया गया है।[8]

प्रारम्भिक मध्ययुग के कतिपय अभिलेखों में भी कथासरित्सागर के समय की अस्पृश्य जातियों का उल्लेख है।[9] इन अभिलेखों में चाण्डाल के विषय में कोई विशेष उल्लेख नहीं प्राप्य है। इनमें केवल उन्हीं अस्पृश्यता का ही बोध होता है।[10]

पालि तथा जैन साहित्य के आलोक में चाण्डालों का स्पष्ट चित्र उभरता है। इन्हें अछूत समझा जाता था।[11] पालि साहित्य के अनुसार इनसे स्पर्श की हुई वायु भी दूषित हो जाती थी।[12] जातक साहित्य में अंन्त्यजों का वर्णन प्रभूत रूप से हुआ है। एक जातक के अनुसार सोलह बार ब्राह्मणों को चाण्डाल के द्वारा स्पर्श किया हुआ भोजन खा लेने के कारण अपनी जाति से हाथ धोना पड़ा था।[13]

---

१. पञ्चपट्टिकनामाहं शुद्रो विज्ञानमस्ति मे। वयामि प्रत्यहं पञ्च पट्टिकायुगलानियत्॥
क० स० सा०, ५२।९९

२. क० स० सा०, ५०।३२० वही, ५२।३२१

३. क० स० सा०, ५२, ३२०–२१ ४. वही, ५६।१८१

५. वही, १३, ९६ ६. वही, १३, ९६ ७. क० स० सा०, १३।९६

८. क० स० सा०, १६।१५८ ९. चाण्डालपर्यन्त सर्वान सम्बोधयाति
ए० इ०, जि० २०, पृ० १३६ वही, जि० ४, पृ० १७०
ए० इ०, जि० ३१, पृ० १६६ ए० इ०, जि० ३२ पृ० ११८–१२२
इ० ए०, जि० १५, पृ० ३०९ ए० इ०, जि० २०, पृ० १३६

१०. वासुदेव उपाध्याय वही, पृ० ९१ ११. सै० बु० ई०, जि० २, पृ० २, २७

१२. जातक, ३, पृ० २३३ जातक, ४, पृ० ३७६, ३९७

१३. जातक, ४, पृ० ३८७

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



धर्मसूत्र तथा स्मृति लेखकों के अनुसार चाण्डाल प्रतिलोम विवाह के दुःखद परिणाम हैं। ब्राह्मणों का शूद्र के सम्पर्क से चाण्डालों की उत्पत्ति हुई।[1] अत्रि ने सात प्रकार के लोगों को अंत्यजों की कोटि में रक्खा है—

"रज्जकः धर्मकारञ्च नटो बुरुड एव च कैवर्त भेदभिल्लाश्च सप्तेते चान्त्यजा स्मृताः"[2]

वेदव्यास ने बारह प्रकार के अस्पर्शों का उल्लेख किया है[3]—

मुसलमान लेखक इब्न खुरदाब्द ने समाज का विभाजन सात वर्गों में किया है। इस विभाजन के छठवें स्थान पर सदलिया का स्थान है। सदलिया का प्रयोग सम्भवतः चाण्डाल के लिए इब्न खुरदाब्द ने किया हैं। इसके विवरणों के आधारपर यह कहा जा सकता है कि जिसे इसने सदलिया कहा था उनके मुख्य कार्य निम्न स्तर के गीतों से जनता का मनोरंजन करना रहा होगा।[4] इसने इनकी स्त्रियों के रूप-लावण्य की प्रशंसा की है।[5]

इब्न खुरदाब्द का यह उल्लेख निस्सन्देह महत्त्वपूर्ण है। सम्भवतः सुन्दर होने के कारण धनिक एवं उच्च जातियों ने वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किए हों अथवा उन्हें रखेलिन के रूप में रख लिया हो। अतः इस सूचना के आधार पर यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि उच्च वर्ग के वासनात्मक प्रवृत्ति ने समाज में अस्पर्शय जातियों को जन्म दिया। उनकी लिप्सा के शमनार्थ उनके जैविकीय संयोग से जनित सन्तति को समाज ने अस्पृश्य का ठप्पा लगाकर उसे पृथक रक्खा।

अल्बेरूनी संस्कृत भाषा का पण्डित था। इस सन्दर्भ में इसके विवरण महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इसके लेखन के आधार संस्कृत के मूल ग्रन्थ थे। वेदव्यास, अत्रि और अल्बेरूनी के अन्त्यजों के सम्बन्ध में विचार लगभग एक से हैं। अल्बेरूनी ने आठ प्रकार के अन्त्यजों का उल्लेख किया हैं।[6]

राजतरंगिणी में एक चमार के सम्बन्ध में राजा चन्द्रापीड़ के वार्तालाप का

---

१. वशिष्ट धर्म सूत्र, १८, १ वेदव्यास, १, ९
ब्राह्मण्यां शूद्र जनितः चाण्डालो धर्मवर्जितः

२. अत्रि, १९९

३. वेद व्यास स्मृति, १।११, १२

४. इलियट, जि० १, पृ० १६–१७ ५. वही, जि० १, पृ० ७६

६. साचो, जि० १, पृ० १०१–२ रजक ( धोबी )
चर्मकार ( मोची ) नट
बुरुड ( टोकरी और डोलची ) के व्यवसाय का निर्माण करने वाला।
मल्लाह ( नाविक ) कैवर्त ( मछली मारने वाला )
भेद ( बहेलिया ) तंतुवाद ( जुलाहा )

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



अत्यन्त मनोरंजक वर्णन है।[1] एक समय भगवान त्रिभुवन स्वामी का मन्दिर बन रहा था। उस मन्दिर की ही सीमा में एक चमार ( चर्मकृत ) की झोपड़ी पड़ रही थी। उस सीमा के भीतर पड़ने के कारण झोपड़ी लेना अत्यन्त आवश्यक था किन्तु चमार अपनी कुटिया नहीं छोड़ता था। मन्दिर-निर्माण के काम पर नियुक्त अधिकारी उसे बार-बार समझाते थे और उस कुटिया का दाम भी चुकाने को तैयार थे, किन्तु चमार किसी भी प्रकार मान नहीं रहा था। चन्द्रापीड़ ने यह बात सुनकर अधिकारियों को ही दोषी ठहराया। उन्होंने आज्ञा दी या तो मन्दिर-निर्माण का कार्य बन्द कर दो अथवा किसी दूसरी जगह वह काम करो, दूसरे की भूमि छीन कर अपने यश को कौन कलंकित करेगा। राजा चन्द्रापीड के कहने पर मंत्रिपरिषद ने उस पादुकाकार के पास दूत भेजा और इसने वहाँ से लौटकर कहा कि वह चर्मकार महाराज से मिलना चाहता है। उसका यह भी कहना है कि यदि मैं दरबार में आने योग्य न समझा जाऊँ तो कही बाहर मिलने की व्यवस्था कर दी जाय। अगले दिन महाराज ने दरबार के बाहर उस चर्मकार को दर्शन देकर पूछा—तुम मेरे धर्म कार्य में क्यों बाधा डाल रहे हो? यदि तुम्हें वहीं घर पसन्द हो तो मैं उससे और भी अच्छा घर बनवा दूंगा। इतना कहकर जब महाराज चुप हो गये, तब जैसे अपने दन्तद्युतिरूपी मुख से राजा के सत्य को नापता हुआ वह चर्मकार बोला कि महाराज मैं कुत्ते से न्यून नहीं हूँ और आप राजा काकुत्स्य से बड़े नहीं हैं। ऐसी स्थिति में आपके ये सभासद हम दोनों के सम्भाषण से क्रुद्ध क्यों हो रहे हैं यदि आप मेरे यहाँ आकर याचना करे तो शिष्टाचार के नाते मैं आपको अपनी झोपड़ी दे दूं। उसके ऐसे वचनो को सुनकर चन्द्रापीड उस चमार के पास गया और धन देकर उसकी झोपड़ी खरीद ली।

यद्यपि चाण्डाल अस्पर्श है किन्तु यदि उनका स्पर्श किसी न किसी प्रकार से हो जाता था तो इसके लिए प्रायश्चित् का बिधान भी था। यह महत्त्वपूर्ण विषय है कि प्रायश्चित्त का विधान चारो वर्णों के लिए अलग अलग थे।[2] चाण्डाल के स्पर्श हो जाने पर स्नान का विधान था।[3] अंगिरस के अनुसार चाण्डाल के दर्शन मात्र से अपवित्र होने के कारण द्विजों के लिए आचमन के विधान का उल्लेख है।[4] अत्रि ने

---

१. राजतरंगिणी, ४, ५५–७४

२. चाण्डालकूपमाण्डेषु मत्स्ययः पिबते सिजः प्रायश्चित्त कथं तेषां वर्णेपर्वे विनिर्दिशत चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजायत्पे तुमृभिपः तदर्थ तु बैश्यः पांच सर्पः समावेश्तु चाण्डालपटमाण्डत्यं वस्तोथं पिवति शिवः तत्क्षाते क्षिमते यस्तु प्राजायत्येन सुध्यति। आंगिरस, ४–५

३. चाण्डालेन च संस्पृष्टः स्नानमेब विधीयते, अत्रि, २३९
चाण्डाल स्पर्शने चैब सचेलं स्नानमाचरेतु, पाराशर स्मृति, ६–२४

४. आंगिरस, १७

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



चाण्डाल के अन्न-ग्रहण निमित्त चारो वर्णों के लिए अलग प्रायश्चित्त के विधान का वर्णन किया है।[1]

कथासरित्सागर से इनके जीवन के रहन-सहन के विषय में महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। ग्रन्थ में शबर लोगों को शेर की खाल पहने हुए दिखाया गया है। ये अपने शरीर को मोरपंख से अलंकृत करते थे। शबर की स्त्री मोरपंख तथा कण्ठ में घुमची के फलों के बीज, जो आकर्षक लाल और काले छोटे-छोटे बीज होते हैं; उनका कंठहार बनाकर अपनी अल्हड़ जंगली सुन्दरता में चार चाँद लगाती थी। कानों में कुण्डल जैसा आभूषण भी वे उसी फल के बीज का बनाती थी। शबर और शबरी के दाम्पत्य प्रेम की अभिवृद्धि में मुख में ताम्बूल तथा नेत्रों में काजल बहुत सहायक थे। शबर जाति में मदिरा की प्रथा का बहुत प्रचार था, मदिरा पीकर दूर-दूर तक आखेट में वे चले जाते थे। वहाँ मदिरा की अधिकता के कारण वे बेहोश होकर पड़े रहते। शबरी को अपने प्रिय पति के खोजने में अधिक श्रम करना पड़ता था क्योंकि शबर आखेट के लिए दूर जंगलों का भ्रमण करते थे।

पहाड़पुर के उत्खनन में इन जंगली-भिल्ल, शबर, पुलिन्द, किरात जातियों की वेषभूषा पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है[2] ( ८वीं-नवीं शताब्दी )। केवल लज्जा के भाग को वे पत्तों से ढक लेते थे। पुरुषों के मध्य जंगली वृक्षों की पत्तियों के वसनों का प्रयोग प्रचलित था। स्त्रियाँ अपने कमर के चारो ओर पत्तियों के वसन बनाकर पहनती थीं। अपने को अलंकृत करने के लिए आकर्षक केश-विन्यास की संरचना करती थीं; कानों में जंगली बीजों का सुन्दर आभूषण बनाकर पहनती थीं। नागरक के स्त्री के कंठाभरण के स्थान घुमची के बीज के कंठ-आभूषण का उपयोग करती थीं। अतः यह कहा जा सकता है कि उनमें भी सौन्दर्यानुभूति प्रचुर मात्रा में पायी जाती थी। तत्कालीन पुरातत्त्वीय साक्ष्य भी इस निष्कर्ष की सम्पुष्टि करते हैं।

**इस्लामी तत्त्व**—कथासरित्सागर में तुरुष्कों का भी उल्लेख प्राप्य है। सम्भवतः इस समय ये भारतीय हिन्दू सामाजिक संगठन में क्रमशः मिलने लगे। इस ग्रन्थ में कोई बनिया तीन सहयात्रियों को उत्तरापथ की ओर ले जाते दिखाया गया है। वे नगरों, ग्रामों, जंगलों और नदियों को पार करके म्लेच्छों से भरी हुई उत्तर दिशा की किसी नगरी में पहुँचे[3]। वहाँ पर वह अन्य यात्रियों के साथ ताजिक ( म्लेच्छों ) द्वारा पकड़ा जाकर दूसरे ताजिक के हाथ दामों पर बेच दिया गया[4]। उसने भी उन चारों को क्रय कर नौकर के हाथों उपहार-स्वरूप मुखार नामक तुर्क के पास भिजवा दिया[5]

---

१. अत्रि संहिता, १७६-१७७।
२. आ० स० मेम्वायर, नं० ५५
३. क० स० सा०, ३७।३३-३५
४. वही, २७, ३६
५. वही, ३७, ३७

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



किन्तु जब उस ताजिक के नौकर मुखार के पास पहुँचे तब वह मर चुका था। अतः उसने उन्हें उसके पुत्र को सौंप दिया[1]। तुर्क-पुत्र ने उन्हें पिता के लिए उपहार-स्वरूप समझकर इन तीनों वैश्यों को प्रातःकाल उन्हीं की कब्र में गाड़ देने की बात कह कर उन्हें कसकर बाँध कर एक ओर रख दिया[2]। कथासरित्सागर के इस विवरण से पता चलता है कि तुरुष्कों को ताजिक भी कहा जाता था। कुछ अभिलेखों में मुसलमानों के लिए 'यवन' शब्द का भी प्रयोग मिलता है[3]। परन्तु प्रारंभिक मध्ययुग में प्रचलित 'यवन' शब्द को प्राचीन भारत के 'यवन' शब्द से समानता नहीं स्थापित करनी चाहिए। प्राचीन भारत में 'यवन' शब्द का प्रयोग यूनान के निवासियों के लिए हुआ था[4]। मुसलमानों के लिए कथासरित्सागर में म्लेच्छ, तुरुक, यवन तथा ताजिक शब्दों का प्रयोग पाया जाता है।

कथासरित्सागर के विवरण से पता चलता है कि ताजिक लोग यहाँ के कुछ व्यक्तियों को दास बनाकर ले गए थे[5]। उनको ये धनार्जन हेतु क्रय-विक्रय किया करते थे। इस प्रकार तुर्कों से संपर्क स्थापित हो जाने वाले व्यक्तियों के लिए स्मृतिकारों ने उन्हें पुनः अपनी वर्ण-व्यवस्था में मिला लेने के विधान का उल्लेख निर्दिष्ट किया है। इस समय भारतीय संस्कृति में प्रगतिवादी-सुधार-संबंधी धारणा का प्रचलन पाया जाता है। उदार भारतीय संस्कृति ने अस्पृश्य ताजिकों से सम्पर्क स्थापित हो जाने के बाद भी अपने समाज में मिला कर अपनी उदारता का परिचय दिया। इस्लाम धर्म के प्रचार के पीछे उसकी सांस्कृतिक श्रेष्ठता एवं उदात्त दार्शनिक अभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि नहीं थी। इस घटना में सैन्यबल का भयंकर रोग छिपा हुआ था। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि कतिपय आधुनिक इतिहासकार उक्त मत से सम्मत नहीं हैं। उनके अनुसार मुसलमान भारत में सैन्य-विजेता की भाँति नहीं आए थे, प्रत्युत उनका उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार था। भारतीय मुसलमानों के पवित्र जीवन और उनके धर्म के प्रति अनन्य श्रद्धा से प्रभावित हो भारतीयों ने नए इस्लाम धर्म को स्वीकार किया। मुसलमानी विवरण के अनुसार प्रति वर्ष पचास हजार हिन्दू इस्लाम स्वीकार करते थे[6]। श्री गानी ने यह मत ताजिक के एक यात्रा वर्णन को आधार मानकर प्रतिपादित किया है। प्रामाणिक साक्ष्य के अभाव में सहसा इतना महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष स्थापित करने की चेष्टा इतिहास की दृष्टि से भ्रान्तिमूलक होगी। कुछ हिन्दू अवश्य मुसलमान हो गये होंगे। उसके पीछे उनका सैनिक दबाव रहा होगा। इसके अतिरिक्त निम्न

---

१. वही, ३७, ३८
२. वही, ३७, ३९–४०
वही, जि० १३, पृ० १५१
३. ए० इ० जि० ४, पृ० ३१२
वही, जि० ४, पृ० २४७
४. युगपुराण, ५, ७
५. क० स० सा०, ३७, ३८
६. प्रो० आफ ओ० का०, जि० १०, पृ० ४०३

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



जातियों ने इस धर्म को सम्भवतः इसलिए स्वीकार किया होगा कि उनको समाज में अच्छी सामाजिक स्थिति प्राप्त हुई होगी तथा आर्थिक दृष्टि से उन्हें लाभ हुआ होगा। इस प्रकार के व्यक्तियों को अपने धर्म और समाज में पुनः स्थान देने का विधान मिलता है[1] परन्तु उस युग के व्यावहारिक जीवन में प्रतिकूल स्थिति देखने को मिलती है। अल्बेरूनी के विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दुओं ने परिवर्तित हिन्दू-मुसलमानों को पुनः भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्वीकार करने में संकोच किया था[2]। अतः यह कहा जा सकता है कि ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दी के आस-पास भारतीय धर्म और समाज में जटिलताओं ने प्रवेश करना प्रारंभ कर दिया था[3]।

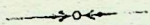

---

१. देवल स्मृति, ४७ अत्रिसंहिता, २००–२

२. साचो, जि० २, पृ० २६२–३

३. उपाध्याय, वही, पृ० १०२

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

2/26 Lucknow

अध्याय ६

# शिक्षा

कथासरित्सागर के सांस्कृतिक पक्ष के अध्ययनार्थ इसके अनुसंधित्सु के लिए अनिवार्य हो जाता है कि वह तत्कालीन शिक्षा की पद्धति, स्वरूप और उसकी उपादेयता पर भी सम्यक् विचार करे। इस समय की शिक्षा-व्यवस्था पर लक्ष्मीधर एवं विज्ञानेश्वर के विवरणों से महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं। किन्तु इनके वर्णन की अपनी सीमाएँ हैं। वे केवल ब्राह्मणों की शिक्षा-प्रणाली पर ही विशेष रूप से प्रकाश डालते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति है। ऐसे शिक्षार्थी को अन्य निम्न उद्देश्य वाली ( धनार्जन एवं युद्ध आदि सम्बन्धी ) शिक्षाओं से श्रेष्ट कहा गया है।[1]

कथासरित्सागर कालीन शिक्षा पर कुछ लिखने से पूर्व यह निर्दिष्ट करना आवश्यक हो जाता है कि इस समय भारत पर तुर्कों के भयंकर आक्रमण हो रहे थे। फलतः देश की राजनीतिक स्थिरता में बाधा पहुँच रही थी। जन-जीवन संक्रान्ति की भयावह स्थितियों से गुजर रहा था। इस परिस्थित से तत्कालीन सामाजिक जीवन प्रभावित हुआ। इसी कारण भारत में इस समय कोई भी वैज्ञानिक अनुसन्धान नहीं हुआ[2]। आक्रमणकारियों ने अनेक शिक्षा के महान केन्द्रों को ध्वस्त किया। इख्तियार उद्दीन मोहम्मद बख्तयार खिलजी ने ओदन्तपुरी,[3] नालन्दा तथा विक्रमशिला के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों को नष्ट किया[4]।

आलोच्य ग्रन्थ के अनुशीलन से पता चलता है कि कतिपय ब्राह्मणों ने परम्परित वेदों के अध्ययन के साथ-साथ समसामयिक संक्रान्ति की राजनीतिक स्थिति में सहयोग देने के लिए युद्ध-प्रिय क्षत्रियों सा जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया था। यह सम्भवतः तुर्क-आक्रमण का ही परिणाम था कि ब्राह्मणों ने भी (जिनका केवल अध्ययन और अध्यापन ही प्रमुख कार्य था ) शस्त्र-ग्रहण किया। इसी लिए कथासरित्सार में ब्राह्मणों के लिए वेदों के अध्ययन के साथ युद्ध की शिक्षा पर भी समान रूप से बल दिया गया है। ये दोनों विषय अनन्य रूप से ब्राह्मणों के अध्ययन के पाठ्य-

---

१. भ. प्र. मजूमदार, सो० इ० हि० ना० इ०, पृ १४५.

२. साचो, जि० १, पृ. १५२.

३. राधा कुमुद मुकर्जी, ऐंशेण्ट इण्डियन एजूकेशन, पृ. ५९५.

४. सो० इ० हि० ना० इ०, पृ. १६३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



क्रम में सलग्न थे[1]। कथासरित्सागर के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण-विद्यार्थियों के लिए सैनिक शिक्षा अनिवार्य रही होगी[2]।

कथासरित्सागर के समय विद्यारम्भ के 'उपनयन' आदि शिक्षा सम्बन्धी संस्कारों का पूर्वकालीन विशेष महत्त्व नहीं रह गया था। विद्या का प्रारम्भ शुभ दिन से किया जाता था[3]। शिक्षा का केन्द्र गुरु-कुल के सीमित आश्रम से हट कर मन्दिर, मठ तथा विश्वविद्यालयों के विशाल प्रांगण में आ गया था। ये अब शिक्षा के क्रमशः प्रमुख केन्द्र होने लग गए थे।

कथासरित्सागर के अनुशीलन से पता चलता है कि शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति और उसकी परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न था। ऐसा धनी व्यक्तियों का उल्लेख है जो स्वाध्याय तथा ज्ञानार्जन के निमित्त बहुशः कष्टों को झेलते हुए अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करते थे।[4] इसके विपरीत कथासरित्सागर में ऐसे लोगों का भी उल्लेख है जिनके विद्याध्ययन का मूल उद्देश्य सांसारिक सुखों का भोग करना था[5]। क्षेमेन्द्र 'दर्पदलन' में कहता है कि जो वास्तव में अध्ययनशील और विद्वान हैं वे मानव-समाज के उत्थान हेतु अपना जीवन होम कर देते हैं। शुचि एवं अशुचि का उन्हें ज्ञान होता है। ऐसे विद्वात् अपनी शिक्षा का विक्रय नहीं करते। वे जादू और टोने में विश्वास भी नहीं रखते हैं। कथासरित्सागर के समय में जादू एवं तन्त्र-मन्त्र में विश्वास बढ़ता जा रहा था[6]।

शिक्षा विद्यार्थियों को निःशुल्क दी जाती थी। अध्ययन की सुविधा के लिए पृथक विभागों की स्थापना की गई थी[7]। विद्यार्थी गुरु-गृह में सेवा करते थे[8]। अध्ययनार्थ देवदत्त वेदकुम्भ नामक गुरु के पास गया था। वहाँ वह गुरु की विधिपूर्वक सेवा करने लगा[9]। गुरु की सेवा की महत्ता से शिक्षार्थी अवगत था। वैदिक गुरुकुलों की भाँति गुरु की सेवा-सुश्रुषा का बृहत्तर भार शिष्यों ने वहन किया था। सूर्यप्रभ बालक-

---

१. कथासरित्सागर, ४८. ३५
२. क० स० सा०, २. ४४; ४, २६–२७, १०४, ८४; ७.५६.
३. वही, ७. ५५.
४. दर्पदलन, विचार ३, पंक्ति २८.
५. हिस्ट्री आफ बंगाल, जि. १, पृ. ६७६.
६. अल्टेकर, एजूकेशन इन ऐशेन्ट इण्डिया, पृ. १४०–१,
७. क० स० सा०, ४, २१.
८. वही, ७. ५६.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



पन में ही गुरुओं की उपासना से सभी विद्याओं और कलाओं में पारंगत हो गया था[1]। उनकी ऐसी अवधारणा थी कि त्याग और तपस्या से ही विद्या की सिद्धि हो सकती थी[2]।

शिक्षक और शिक्षार्थी के पवित्र सम्बन्धों पर अधिक बल दिया गया है। शिक्षक को चाहिए की वह अपने विद्यार्थी के प्रति सहानुभूति रक्खे तथा उसकी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति का भरसक प्रयास करें[3]। गुरु की विद्या एकत्र संचित सामाजिक निधि समझी जाती थी[4]। राजद्रोही एवं भ्रष्ट शिक्षकों से अध्ययन वर्जित माना जाता था। विद्यार्थी का शिक्षक के अन्य परिवार वालों के सम्बन्ध पर सोमदेव तथा लक्ष्मीधर ने प्रकाश डाला है। शिष्य को गुरु-पुत्र के साथ श्रद्धा रखनी चाहिए किन्तु उसके उच्छिष्ट भोजन को ग्रहण नहीं करना चाहिए तथा उसकी परिचर्या भी नहीं करनी चाहिए। गुरु-पत्नी के साथ शिष्य का सम्बन्ध पवित्र होना चाहिए। आलोच्य ग्रन्थ में कतिपय ऐसी गुरु-पत्नियों का उल्लेख है जो पति के शिष्यों के साथ घृणित व्यभिचारपूर्ण प्रस्ताव रखती हैं। किन्तु सौभाग्य से उनके शिष्य इतने प्रबुद्ध थे कि उन्होंने उनके ऐसे घृणित प्रस्ताव को ठुकराकर अनेक यातनाओं का सहर्ष आलिंगन किया[5]। मनु ने गुर्वङ्गना के साथ श्रद्धामय व्यवहार की आज्ञा दी है[6]। यहाँ तक की उन्होंने आचार्य-पत्नी के शरीर के स्पर्श तक की अनुमति नहीं दी है। शिक्षार्थी को गुरु-भार्या के स्नान-व्यापार में सहयोग न देने के विधान का उल्लेख लक्ष्मीधर ने किया है[7]।

कतिपय अध्यापकों की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी रही होगी। एक विद्यार्थी गुरु से गुरु-दक्षिणा के विषय में पूछता है। इस गुरु ने कहा कि तुम मुझे अपने चक्रवर्ती अभिषेक के समय स्मरण करना, यही मेरी गुरु-दक्षिणा होगी[8]। कथासरित्सागर में एक गुरु को दक्षिणा के रूप में एक करोड़ स्वर्ण-मुद्रा की प्राप्ति का उल्लेख है[9]। विद्वानों को राज्य उचित पुरुस्कार दिया करता था। राजकुमार की शिक्षा समाप्त होने पर उनके गुरु को प्रभूत मात्रा में वस्त्र, स्वर्ण, भूमि और ग्राम दक्षिणा के रूप में दिए जाते थे[10]। कल्हण के अनुसार हर्ष नरेश ने अपने शासन के प्रारम्भिक चरण में विद्वानों का सम्मान बहुमूल्य रत्न, छत्र, चामर और अश्व की सवारी से किया करता था[11]। विद्वानों को

---

१. क० स० सा०, ४३. २३.
२. वही, ४३. ३५.
३. आपस्तम्भ, १. ८. २४–८.
४. लक्ष्मीधर, ब्रह्मचारी, पृ. २४०.
५ क० स० सा०, १९. १२५.
६. २. पृ. २१०–१५.
७. ब्रह्मचारी, पृ. २२८–८.
८. क० सा० सा०, ४५. १२७.
९, वही, ४.९३.
१०. मानसोल्लास, पृ. १२, विशंति, ३. १३०४.
११. राजतरंगिणी, ७ ९३४

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



अग्रहार दान तथा भवन दिए जाते थे[1]। सौराष्ट्र-नरेश गोविन्दराज ने विद्वानों तथा ब्राह्मणों को भूमिदान में दिया था[2]। लक्ष्मीधर ने इस प्रकार के दानों के ग्रहण की स्वीकृति दी है[3]।

प्राचीन भारत में विद्वानों के जीविकार्थ तथा विद्या के उन्नयन हेतु अग्रहार दान की एक स्वस्थ प्रशंसनीय परम्परा पायी जाती है[4]। गुरु की ज्ञान-विषयक कीर्ति विद्यार्थी को कोने-कोने से आकर्षित करती थी[5]। कथासरित्सागर के विवरण से पता चलता है कि अध्यापक को 'उपाध्याय' भी कहते थे ( चाहे वह चित्रकला का ही आचार्य क्यों न हो )[6]। इनके कृतियों का उत्तराधिकार स्यात् उसके शिष्य को मिलता था[7]। कथासरित्सागर में विष्णुदत्त नामक ब्राह्मण प्रसिद्ध वेद-विद्या का अध्यापक था। उसकी ख्याति सुनकर सुदूर से शिष्य अध्यनार्थ आते थे[8]।

विरले ही विद्वान होंगे जिन्हें सरस्वती और लक्ष्मी का विलक्षण संयोग सुलभ रहा होगा। शिक्षकों का अधिकांश वर्ग निर्धन रहा होगा। क्षेमेन्द्र ने विद्वानों को सचेष्ट करते हुए लिखा है कि वे धन के मोह में शिक्षा न दें और न उन्हें सहायतार्थ राज दरबार में जाना चाहिए[9]।

वर्तमान मान्टेसरी अथवा नर्सरी शिक्षण-प्रणाली तुल्य तत्कालीन शिक्षा भी अल्पवय ( पाँच वर्ष ) से ही प्रारम्भ होती थी[10]। पहले हरि, लक्ष्मी, सरस्वती, तथा कुल-देवता की आराधना होती थी[11]। प्रारम्भिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम में मात्रिकान्यास और स्वल्प गणित का अभ्यास सम्मिलित था[12]। श्रवण और पठन की प्रणाली से अध्ययन होता था[13]। विद्या की प्राप्ति के लिए कथासरित्सागर में बाह्याडम्बरों की कटु निन्दा की गई है। व्रत और उपवास आदि से विद्या प्राप्त करने को खरगोश की सींग की भाँति असम्भव तथा आकाश में चित्र-रचना के समान व्यर्थ माना है[14]। अक्षर-ज्ञान अध्ययन के लिए अनिवार्य माना गया है[15]।

---

१. वही, ८, २३९५–९७. २. ए० इ०, जि० २, पृ. २२७.
३. राजधर्मकाण्ड, पृ० १६८–७०, शुक्रनीतिसार ( कलकत्ता संस्करण ), १,३६९
४. राजतरंगिणी, ६,८७,८९,९०,९६,९८, कृतकल्पतरु, जि० २ पृ० ७१
५. क० स० सा०, ६,३२,१०४,१७
६. क० स० सा०, ३. २; ५३. ४४. ७. वही, ८. ३२.
८. वही, १९. ११५–६.
९. दर्पदलन, ( काव्यमाला सिरीज ) ३, पद ७ और ४२.
१०. सो० इ० हि० ना० ई०, पृ. १४९. ११. स्मृतिचंद्रिका, पृ. ६६–७.
१२. वही, पृ. १, २६. याज्ञवल्क्य, १. १३१. १३. क० स० सा०, ४०. २०.
१४. क० स० सा०, ४०, २१. १५. वही, ४०. २२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



प्रारम्भिक शिक्षा के अनन्तर समाज में उच्चस्तरीय शिक्षा का भी प्रचलन था। कथासरित्सागर में एक जगह पुत्र पिता से कहता है कि पिता तुम वैदिक धर्म को छोड़कर अधर्म का पालन करते हो। ब्राह्मण को छोड़कर भिक्षुओं की पूजा करते हो[1]। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस समय तक विक्रमशिला विश्वविद्यालय की लोकप्रियता अभिवृद्ध हो चुकी थी। नालन्दा और वलभी विश्वविद्यालयों की भाँति विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना उच्चस्तरीय शिक्षा के लिए राजकीय सहयोग से हुआ था। कथासरित्सागर में बौद्ध धर्म का उपहास किया गया है। एक कथा के अनुसार स्नान, शौच आदि से हीन, भोजन-लोभी, शिखा और केशों को मुड़वाकर केवल कौपीन पहिनने वाले तथा विहारों में स्थान मिलने के लोभ से सभी नीच जाति के व्यक्ति जिस बौद्ध धर्म को ग्रहण करते हैं उससे हमारा कोई प्रयोजन नहीं है[2]।

कथासरित्सागर के अनुशीलन से पता चलता है कि समाज में ज्योतिष-शास्त्र में विश्वास बढ़ता जा रहा था। ज्योतिर्वित् ब्राह्मण पुरोहितों का कार्य मूलतः उपनयन-विवाह आदि संस्थाओं को सम्पन्न कराना था[3]। खगोल शास्त्र के गूढ़ रहस्यों के विरल ज्ञाता अपने उच्च ज्ञान के कारण विशेष रूप से पूजनीय थे[4]।

सोलह वर्ष की अवस्था विश्वविद्यालय के शिक्षा के लिए उचित समझी जाती थी। वसुदत्त ने अपने पुत्र विष्णुदत्त को वलभीपुर के विश्वविद्यालय में अध्ययनार्थ भेजा था[5]। यद्यपि विष्णुदत्त गंगा-घाटी का निवासी था तथा इस कारण नालन्दा एवं वाराणसी उसके लिए समीप पड़ते थे, तथापि वह अध्ययन के निमित्त वलभी आया था। यह घटना विद्या के क्षेत्र में इसकी प्रसिद्धि को प्रमाणित करती है। कथासरित्सागर से ज्ञात होता है कि देश के नाना भागों के विद्यार्थी अध्ययनार्थ वलभी आते थे। वलभी-नरेशों ने यहाँ के विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को ग्रन्थोपचयार्थ प्रभूत धन दिया था।[6]

कथासरित्सागर के युग में उच्च शिक्षा के अतिरिक्त कतिपय ऐसी भी शिक्षाएँ थीं जिन्हें उपयोगितावादी शिक्षा की कोटि में रक्खा जा सकता है। कुछ इस प्रकार की शिक्षाएँ हैं जिनको समय की माँग के अनुसार राज्य निर्धारित करता था।

कथासरित्सागर के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि शल्य-चिकित्सा और ज्योतिष का विषय तत्कालीन विद्या के क्षेत्र में अधिक लोकप्रिय था[7]। राजशेखर के अनुसार

---

१. वही, २६. १८.
२. क० स० सा०, १९. २०.
३. क० स० सा०, ३२, ८३.
४. वही, ३. ४; ३०. ७९ ३९.४.
५. क० स० सा०, ३२, ४२–३
६. इ० ऐ०, ७. ६७.
७. क० स० सा०, १०१, ११८–९

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



यदि कोई कवि भी होना चाहे तो भी उसे वैद्यक पढ़ना पड़ता था[1]। चिकित्सा जगत् में भारत की ख्याति सुदूर तक फैली हुई थी। बगदाद में भारतीय वैद्य के नियुक्ति की सूचना मिलती है[2]।

कथासरित्सागर के अनुसार कुल्हाणी से फाड़ी जाती जाती हुई लकड़ी के टुकड़े घुस जाने से नाड़ीव्रण ( नासूर ) को हिमाचल की औषधि से ठीक कर दिया गया है[3]। रक्त को धोकर ( डेसिंग ) पट्टी बाँध दी जाती थी।[4]

---

१. काव्यमीमांसा, पृ. ७. ११. २६.
२. ईश्वरी प्रसाद, ए शार्ट हिस्ट्री आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, पृ. ३९.
३. क० स० सा०, २७. १६७–९, बृ. क० म०, ८. १७२, १७५, १७९, १९१
४. क० स० सा०, २७. १५९–६०.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अध्याय ६

# नैतिक स्तर

कथासरित्सागर के अनुशीलन से तत्कालीन समाज की नैतिक मान्यताओं पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। नैतिकता का मापदण्ड देश और काल के अनुसार पृथक होता है। अतः किसी निश्चित युग तथा देश की मान्यताओं से तुलना अथवा समता के आधार पर अमुक को श्रेष्ठ और अमुक को नेष्ठ निर्धारित करना सर्वथा अनुचित होगा। समाज की कतिपय ऐसी भी मान्यताएँ हैं जो सदैव एक सी नहीं रहती हैं। उनमें देश और काल के अनुसार परिवर्तन होता है। कुछ ऐसी भी मान्यताएँ हैं जिन्हें देश और काल की सीमाएँ अपने में आबद्ध नहीं कर सकती हैं। उन मान्यताओं के मूल्य परिवर्तनशील नहीं होते। आज भी मानव उन मूल्यों के प्रति उसी भाँति आस्थावान् है और भविष्य में भी रहेगा। इनमें अस्तेय, धोखाधड़ी, उत्कोच, अतिशय विषय-वासना के प्रति घृणित दृष्टिकोण विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सोमदेव की दृष्टि में समाज का अर्धांग चित्र नहीं, पूरा चित्र समाया हुआ है।[1] भले-बुरे, ऊँच-नीच, धनी-कंगाल, धर्मात्मा, गुण्डे सभी के उभरे हुए चित्र उनके ग्रन्थ में पाये जाते हैं। जैसे रत्नाकर सब रत्नों की खान है वैसे ही मानव-स्वभाव विचित्र है। इसका पूरा अंकन सोमदेव ने कथासरित्सागर में किया है। इसके अतिरिक्त चोर, जुआड़ी, धूर्त, वेश्यागामी, चालबाज, कपटी, बदमाश, ठग, लुच्चे, रँगीले भिक्षु आदि की कहानियों की तह जमाने में सोमदेव को अद्भुत सफलता मिली है।[2]

प्रारम्भिक मध्ययुगीन प्रशस्तियों के वर्ण्यविषय आज लज्जास्पद प्रतीत होते हैं। नरेश विजित देश की सुन्दरियों को पकड़ कर रखने में गौरव का अनुभव करते थे। तत्कालीन साहित्य में राजाओं के वासनापूर्ण विलासमय जीवन के उभरे हुए चित्र सुलभ हैं। कथासरित्सागर का अध्ययन निश्चय ही इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण इतिहास दर्शक होगा। राजा सदैव स्त्री, मद्य और आखेट के व्यसनों में निरत रहता था।[3] विजेता नरेश पराजित देश की किसी प्रकार की उन्नति को सहन नहीं कर सकता था। यहाँ तक की उस देश की ललनाओं को वह अपनी पाशविक मनोवृत्तियाँ एवं गर्हित वासनाओं की सम्पूर्ति का साधन बनाता था।[4] राजा अपनी यात्रा के अवसरों पर जगह-जगह रमणियों के कटाक्षों का लक्ष्य ( शिकार ) बन जाता था।[5]

---

१. वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर, प्रथम खण्ड, ( बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, १९६०, पृ० २४ )  २. वही, पृ० २४

३. स्त्रीमद्यमृगयासक्तो, क० स० सा०, १५,८

४. करैराहन्यमानेषु यावत्कान्ताकुचेष्वपि, वही, १९, ९६  ५. क० स० सा०, १९, ९९

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



कथासरित्सागर की कथाओं में प्रारम्भिक मध्ययुग के नरेशों की चारित्रिक दुर्बलता के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ संग्रहीत हैं। राजा का नापित की स्त्री के साथ रमण करने की कथा का उल्लेख है।[1] चेदि देश के नरेश ने वैश्य की भार्या के साथ सम्भोग निमित्त इच्छा व्यक्त की थी।[2]

कथासरित्सागर की एक कथा में अन्तःपुर की रानियों का सम्वाद अत्यन्त रोचक है। इससे उस युग के नरेशों के विलासमय पक्ष का भरपूर चित्र उपस्थित होता है। एक रानी कहती हैं कि आर्य-पुत्र इतने स्त्री-लम्पट क्यों हैं।[3] यह सुनकर उनमें से एक चतुरा स्त्री बोली—'सुनो, राजा लोग बहुत पत्नियों वाले इस लिए होते हैं[4] कि एक ही स्त्री सर्वगुण सम्पन्न नहीं हुआ करती। कर्णाट, लाट, सौराष्ट्र, मध्यदेश आदि की स्त्रियाँ अपनी-अपनी विशेषताओं से पति का मनोरंजन करती हैं, कुछ सुन्दरियाँ शरतकालीन चन्द्रमा के समान मुख से मन-हरण करती हैं, कुछ सोने के घड़ों के समान उठे और घने स्तनों से चित्त रंजन करती हैं, कुछ स्त्रियाँ काम के सिंहासन के समान जघनस्थल से आकर्षण करती हैं[3] और कुछ दूसरे-दूसरे सौन्दर्य से तथा आकर्षक अंगों से मनोहरण करती हैं, कोई तपे हुए स्वर्ण के समान वर्णवाली होती हैं, कुछ प्रियंगु पुष्प के समान साँवले वर्ण की होती हैं और कुछ ललाई लिये हुए गौर वर्ण की होती है, जो देखते ही मन को मोहित कर लेती हैं, कुछ नई अवस्था के कारण सुन्दर होती हैं, तो कुछ यौवन के पूर्ण विकसित होने पर मनोरम हो जाती हैं, कुछ स्त्रियाँ प्रौढ़ता के कारण सरस होती हैं और कुछ अपने हाव-भाव विलास से अपने सौन्दर्य की छटा दिखाती हैं, कोई हँसती हुई प्यारी लगती है, तो कोई क्रुद्ध होने पर मनोहरण करती हैं, कोई गज-गामिनी होती है और कोई हंसगामिनी होने के कारण अच्छी लगती हैं। कुछ स्त्रियाँ मधुर भाषण के अमृत से कानों को रसक्त करती हैं और कोई सहज भ्रू-विलास से देखती हुई अच्छी लगती है, कोई नाचने में निपुण होती है, तो कोई गाने में कुशल होती है, कोई वाद्य कला में पारंगत होने के कारण संग्राह्य होती है, कोई स्त्री बाहरी रति-विलास में दक्ष होती है, तो कोई अन्तरंग रति-विलास में चतुर होती है, कोई शृंगार करने में निपुण होती है तो कोई बात करने में चतुर और कोई पति के चित्त को वश में करके सौभाग्य प्राप्त करती है। इन सब गुणों में से किसी में कोई अपना विशिष्ट गुण होता है। इस कारण भिन्न-भिन्न रसों के आस्वादन लेने के लोभी राजा लोग सदा नई-नई स्त्रियों से विवाह किया करते हैं।[5]

राजा की दासियों के साथ स्त्रैण सम्बन्ध की अनेकों कथाएँ हैं[6]। कथासरित्सागर

---

१. वही, ३२, १४६–४९ २. वही, ३४, १३–१८

३. ब्रूत स्त्रीलम्पटः कस्मादयित्रोबतेदृशः, क० स० सा०, ४७, १०२

४. क० स० सा०, ४७, १०४–११६ ५. वही, ४७, ११७

६. क० स० सा०, ४७, ९९–१००, ५६, २९१, ५७, ५२,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



में व्यभिचारिणी स्त्री उसे कहा गया है जो पर पुरुष के साथ सम्पर्क रक्खे तथा ऐसी स्त्री के साथ गमन करने में कोई दोष नहीं बताया गया है।[१] कुमार सचिव उपकोशा के साथ रमण की इच्छा से आया था।[२] उपकोशा का यह कथन कि पति के प्रवास में रहने पर कुलीन स्त्री का मर जाना अच्छा है किन्तु रूप पर मरने वालों की आँखों पर चढ़ना अच्छा नहीं है, अत्यन्त सटीक है।[३] दण्डाधिप ( कोतवाल ) भी ऐसे कुत्सित कार्यों से अछूता नहीं था।[४] कथाओं में संग्रहीत उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार परदारागमन के अपराधी की सम्पति का राज्य हरण कर उस व्यक्ति को देश से निष्कासित कर देता था।[५] किन्तु विचारणीय प्रश्न है कि क्या ये नियम निर्माताओं के लिए भी लागू थे। इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

कलचुरि-नरेश युवराज देव गौड देश की स्त्रियों के मनोभाव को पूर्ण करता था। कर्नाट का राजा अपने प्रेम की मृगया में हरिणी की भाँति उनका आखेट करता था। काश्मीर की स्त्रियों के उत्तुंग उरोजों के साथ वह केलि करता था। कलिंग देश की रमणियों के मधुर संगीत का लोभी था।[६] इस प्रकार भिलारी अभिलेख में पौत्र ने अपने पितामह के वासनामय जीवन का उल्लेख गौरव के साथ किया है। राजशेखर के अनुसार युवराज ने मगध, मालव, पाञ्चाल, अवन्ति, जालंधर और केरल की राजकुमारियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये थे।[७] सोमदेव सूरी ने उज्जयिनी के नरेश यशोधर का आन्ध्र, चोल, वलभी, केरल, सिंहल, कर्णाट, सुराष्ट्र, कम्बोज, पल्लव और अयोध्या की नारियों के साथ सुरत-सुख प्राप्त करने का उल्लेख किया है।[८] प्रबन्धचिन्तामणि की एक कथा के अनुसार कुन्तलेश्वर परमारदीन एक नीच जाति की नग्न स्त्री का नृत्य देख रहा था।

सोमदेव ने अपनी कथाओं के माध्यम से तत्कालीन युग का सम्पूर्ण चित्र खींचा है। मेरुतुंग के अनुसार लक्ष्मणसेन ने कामान्ध होकर मतंङ्गी नामक एक चाण्डाल-स्त्री से सम्भोग किया था।[९] तत्कालीन साहित्यावलोकन से प्राप्त सूचनाएँ निस्सन्देह समकालीन नृपों के चारित्रिक पतन पर प्रकाश डालती है। प्रबन्धचिन्तामणि में

---

१. तृतीयं पुरुषं प्राप्ता यतस्त्वमसि बन्धकी। परदारागतो दोषो न मे त्वद्गमने ततः॥
क० स० सा०, ३४, ४

२. क० स० सा०, ४, ४९
वरं पत्यौ प्रवासस्थे मरणं कलयोषितः। न तु रूपारमल्लोकलोचनापातपात्रता॥

३. वही, ४, ४१ ४. वही, ४, ३८

५. क० स० सा०, ४, ८४ ६. रे, डा० हि० ना० इ०, जि० २, पृ० ७६०

७. विद्धशालभंजिका, अंक ४ ८. यशस्तिलक चम्पू, पृ० २१–२२ और ३३

९. प्रबन्धचिन्तामणि ( टॉनी का संस्करण ), पृ० १८१

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



वाराणसी के शासक जयचन्द्र ने सहवा नामक एक साधारण स्त्री से अनुचित सम्बन्ध स्थापित किया था। कालान्तर में उसने उसे अपनी राजमहिषी बनाया।[1]

**मद्यपान***—कथासरित्सागर में मदिरा-पान का उल्लेख है, इससे पता चलता है कि तत्कालीन समाज में मदिरा का प्रयोग प्रचलित था, प्रारम्भिक मध्ययुग के अभिलेखों तथा तत्कालीन संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों के अध्ययन से मद्यपान की समाज में लोकप्रियता पर प्रकाश पड़ता है[2]

पेय पदार्थों में मदिरा को प्रमुख स्थान था। सामान्यतः यह श्रीमानों के भोग-विलास की सहचारी थी तत्कालीन समाज में मदिरा का सेवन धड़ल्ले के साथ होता था। इसे कामक्रीड़ा के सहायक उत्प्रेरकद्रव्यों में सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। सुखी व्यक्ति की रसना सदा मद्य में निरत रहती थी। भोग-विलास को मधुर तथा रति-प्रसंग को उर्जमिष बनाने के अतिरिक्त मदिरा का उपयोग चतुर नागरक अपने कार्य सिद्धि के लिये अमोघ अस्त्र के रूप में उपयोग करता था। कथासरित्सार में महावत को अपना काम पूरा करने के लिये अतिशय मदिरा पिला दी गई है,[3] खूब मद्य को पिला कर दूसरों का भेद भी लेते थे।[4]

पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी मद्यपान करती थीं[5] मद्य के प्रभाव के कारण उनके मृग-शावक से सुदीर्घ लोचन झूमने लगते थे यथा वाणी की गति स्खलित होने लगती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मदिरा-पान की प्रथा प्राचीन समय से ही लोकप्रिय थी किन्तु उसे धार्मिक और सामाजिक प्रश्रय नहीं मिल सका। मनु ने इसे पिशाचों का भक्षण माना है[6]। मुसलमान यात्री सुलेमान भारतवासियों की मद्य के प्रति वैराग्य की भावना की सराहना करता है।[7]

**आत्महत्या**—तीर्थ-स्थलों में आत्म-हत्या अपवाद रूप में धर्म-संगत समझी जाती थी। यहाँ तक कि शासक-वर्ग भी इससे अछूता नहीं था। उनकी ऐसी अवधारणा की पृष्ठभूमि में मनोवैज्ञानिक सत्य भी छिपा हुआ है। नरेशों का अधिकांश जीवन कुप्रथाओं के पोषण, अन्याय और दुराचार के मध्य व्यतीत

---

* विशेष विवरण के लिए अध्याय ११ देखें।

१. वही, पृ० १८१ २. ओम प्रकाश, फूड एण्ड ड्रिंक्स इन एशेण्ट इण्डिया, पृ० २२१.

३. क० स० सा०, १३, ८५ ४. वही, १३, २५२ ५, वही. २८, १२१

६. मनु, ११, ९५

७. एशेण्ट एकाउण्टस ऑफ इण्डिया एण्ड चाइना, पृ० ३३, सुलेमान सौदागर, पृ० ७८ (नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित)

टिप्पणी—विशेष विवरण के लिए 'खान-पान' नामक अध्याय देखें।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



होता था। मन से वे अशान्त रहते थे। किये हुए अनाचारों ने ग्लानि को जन्म दिया होगा। उसकी मुक्ति के लिए उन्होंने आत्महत्या को श्रेयस्कर समझा होगा[1] क्योंकि इस प्रक्रिया के माध्यम से मृत्यु के निमन्त्रण में उन्हें अधिक उपक्रम नहीं करने पड़ते थे। कालान्तर में इसे धार्मिक स्वीकृति भी प्राप्त हो गई थी। यह उनका जीवन के प्रति पलायनवादी दृष्टिकोण था।

मनु तथा अन्य धर्मशास्त्रकारों ने इस प्रकार की मृत्यु की कटु आलोचना की है।[2] महाभारत में पृथूदक, हिमालय और प्रयाग में इस प्रकार की आत्म-हत्या के उल्लेख हैं।[3] मत्स्य और कूर्म पुराणों में ऐसी आत्महत्या का वर्णन किया है। लक्ष्मीधर ने वाराणसी, प्रयाग के पावन गंगा-यमुना के संगम पर, अमरकंटक पर्वत से कूदकर अथवा नर्मदा में डूबकर आत्महत्या के फलों का उल्लेख किया है।[4] अल्बेरूनी ने भी प्रयाग में इस प्रकार की आत्महत्या का उल्लेख किया है।[5]

कथासरित्सागर में परलोक सुधारने के निमित्त ऐसी अनेक आत्महत्याओं के उल्लेख हैं। वृद्धावस्था में शरीर त्यागने के लिए उच्च वर्ग के लोग गंगा के पावन तट पर चले जाते थे।[6] उक्त ग्रन्थ के अनुसार जीमूतवाहन ने अपनी भार्या मनोवती एवं मित्र भीलराज के साथ कालंजर पर्वत पर आत्महत्या की थी।[7]

इस प्रकार की मृत्यु को 'शिलापातमृत्युग्रावा' कहते थे। उनकी ऐसी अवधारणा थी कि इस प्रकार की मृत्यु से आगामी जन्म में मनोवाञ्छित सिद्धि होती थी[8]। मत्स्यपुराण में अमरकण्टक पर्वत की शृंखला पर से कूद कर सहर्ष मृत्यु का आलिंगन स्वीकार करने वाले व्यक्ति के लिए कहा गया है कि वह पुनः इस संसार में वापस नहीं आता है[9]। जब व्यक्ति की वृद्धावस्था कानों के पास आकर कहती थी कि शरीर नष्ट होने वाला है, घर में क्या रक्खा है, तब वह स्वर्ग अथवा कैवल्य की कामना करते हुए तीर्थस्थलों पर जाकर आत्म-हत्या करता था। सागर वर्मा ने प्रयाग के संगम तीर्थ पर मानव शरीर का परित्याग किया था। महाराज उदयन ने कालंजर पर्वत से कूद कर आत्महत्या की थी। सम्भवतः इस प्रकार की मृत्यु की प्रथा का प्रचलन वत्स-नरेश के

---

१. क० स० सा०, १२, १०६, २५, ३, ३३, १४०

२. मनु, ५, ८०९, पाराशर, ४, १–२ ३. हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, जि० २, पृ० ९२५

४. तीर्थ विवेचन, पृ० २१, १३८–९ ५. साचो, जि० २, पृ० १७०

६. तदृष्ट्वा जीवितफलं पूर्णं मत्वा च मत्पिता। वृद्धो भागीरथीं प्रयात्सदारो देहमुज्झितुम्॥
क० स० सा०, २२, १५४

७. "ताभ्यां स्वपत्नीमित्राभ्यां सह मुक्तं शरीरकम्" क० स० सा०, २२, १६४–५.

८. अनुवादक की टिप्पणी, कथासरित्सागर ( पटना संस्करण ), जि० १, पृ० ४५१

९. मत्स्य पुराण, १८६, २८–३५.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



समय न रहा होगा किन्तु सोमदेव ने इस कथा में अपने युग की लोकप्रिय मृत्यु प्रणाली का समावेश किया है[1]।

अन्य साक्ष्यों के आधार पर कतिपय समकालीन नृपों की इस प्रकार की मृत्यु की सूचनाएँ मिलती हैं। चालुक्य-नरेश मूलराज (९९६ ई०) प्रथम ने सिद्धपुर में सरस्वती के निकट आत्मदाह किया था[2]। चन्देल राजा धङ्ग ने सौ वर्ष जीकर प्रयाग में प्राण छोड़े थे[3]। कलचुरि-नरेश गांगेय देव ने अपनी स्त्रियों के साथ प्रयाग में आत्महत्या की थी[4]। चालुक्य-नरेश आहवमल्ल ने तुंगभद्रा में प्राण त्यागे थे[5]। जयचन्द्र ने मुसलमान-आक्रमण से उबरने के लिए गंगा में कूद कर प्राण छोड़े थे[6]। काश्मीर के राजाओं में जयपाल, जय चन्द्र, अनन्त और उत्कर्ष ने जीवन की कठिनाइयों से ऊब कर इस विधि से अपनी लौकिक लीला समाप्त की थी[7]। इस प्रकार साहित्य और अभिलेखों के अनुशीलन के आधार पर कहा जा सकता है कि कुछ नरेशों ने जटिल समस्याओं एवं बाधाओं से ऊब कर तथा कतिपय राजाओं ने पारलौकिक सुख की उपलब्धि के लिए अपना जीवन इस भयावह विधि से समाप्त कर दिया।

## उत्कोच और भ्रष्टाचार

उत्कोच एवं भ्रष्टाचार निश्चय ही पतनोन्मुख शासक के लक्षण हैं। कथा-सरित्सागर की सूचनाओं के आधार पर तत्कालीन प्रशासन के भ्रष्ट स्वरूप का अंकन किया जा सकता है। मन्दिर के पुजारी ने लम्बे उत्कोच का प्रलोभन देकर कोतवाल से अपना कार्य सिद्ध किया था[8]। उस समय उत्कोच ऐसा अमोघ अस्त्र था जिसके सम्मुख प्रशासकीय यम-नियम तथा विधान महत्त्वहीन प्रतीत होते थे[9]। लोभी कर्म-चारियों के लिए घूस एकमात्र अचूक औषधि समझी जाती थी[10]। सेवक भी इसके लोभ से फोड़े जाते थे। घूस देकर कायस्थ ( प्रशासकीय लेखा अधिकारी ) से मनोवाञ्छित राज्यादेश लिखवा लेने की सूचना कथासरित्सागर में संग्रहीत है[11]। निम्न कर्मचारियों के अतिरिक्त उक्त ग्रन्थ में मन्त्रियों के भी उत्कोच लेने का उल्लेख है[12]। इस प्रकार उत्कोच के माध्यम से एक चतुर धूर्त ने पाँच करोड़ दीनार कमा लिए थे[13]। क्षेमेन्द्र ने निर्भीकता के साथ राजा को मन्त्रणा दी है कि वह घूस लेने वाले मन्त्री, सेनापति तथा

---

१. क० स० सा०, १११, ८३–४. २. ए० इ०, ४, २११.
३. वही, १, १४.
४. ए० इ०, २, ४. १२, २११. २१, ९४ ज० ए० सो० बं, २१. ११६.
५. ए० के०, १३६. ६. प्रबन्धचिन्तामणि, पृ. १८५–६.
७. राजतंरगिणी, ७. ४४१–७ ७. ८५२.
८. क० स० सा०, १२, १७३. ९. वही०, २४, ८७.
१०. वही, ३२, १०३–४. ११. क० स० सा०, ४२, ९१.
१२. वही, ६६, १२४. १३. वही, ६६, १२९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



पुरोहित को शीघ्र ही निलम्बित करें अन्यथा प्रजा में आक्रोश की भावना का बीजवपन हो सकता है[१]। कल्हण ने काश्मीर के कतिपय भ्रष्ट मन्त्रियों का उल्लेख किया है जिन्होंने अपने दुराचरणों के द्वारा बहुत धन-संग्रह कर लिया था[२]।

शुक्रनीतिसार में इस सामाजिक दूषण को दूर करने की विधि बताई गई है। उसके अनुसार राजकीय पदों की नियुक्ति का चयन वंश क्रमानुगत न हो वरन् व्यक्ति की योग्यता, कार्यक्षमता एवं उसके उच्च चरित्र को अपेक्षाकृत विशेष महत्त्व देना चाहिए[३]। समय-समय पर अधिकारियों का स्थानान्तरण भिन्न विभागों में कर देना उचित है[४]। लक्ष्मीधर ने अपने व्यक्तिगत प्रशासकीय अनुभवों के आधार पर लिखा है कि राजा को सेना, चोर, दुष्ट व्यक्ति तथा लेखकों से सचेष्ट रहना चाहिए[५]।

प्रारम्भिक मध्ययुग में व्याप्त भ्रष्टाचारों के कारणों का अनुसन्धान रोचक है। तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति स्थिर नहीं थी। राजे तथा सामन्त अपने संकुचित स्वार्थ की उपलब्धि कूटिनीति एवं कुत्सित षड्यन्त्र के माध्यम द्वारा करना चाहते थे। राजनीतिक सम्प्रभुता की स्थापना हेतु होने वाले मुसलमान आक्रमणों ने प्रारम्भिक मध्ययुग में अशान्ति तथा निराशा को जन्म दिया। राजनीति के संदर्भ में इस युग में सक्रान्ति का वातावरण छा गया था। राजा के अमात्य तथा अन्य कर्मचारियों का भाग्य उनके राजा के साथ उदय होता था तथा उनके साथ ही अस्त होता था। वीरधवल की चिता के साथ उसके १२० कर्मचारियों ने अपने को होम कर दिया था। उनकी इस विश्वस्तता के साथ-साथ उनके भविष्य की अनिश्चिता का भी बोध होता है। इस स्थिति के परिवेश में कर्मचारी अपने प्रिय नरेश के शासन-काल में ही अधिक धन-संचय की चेष्टा करते थे जिससे कि राजा के शासन की समाप्ति के बाद भी वे तथा उनकी सन्ताने सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें[६]।

**धूर्त वैद्य**—कथासरित्सागर में ठग वैद्यों का उल्लेख हुआ है। ऐसे चिकित्सक जनता के जीवन के साथ खेल किया करते थे[७]। कलश के राज्य-काल में एक सार्थवाह चिकित्सक का कार्य करता था[८]। प्रवञ्चक वैद्य मूर्ख ग्राहकों के साथ ठगी किया करते थे[९]। क्षेमेन्द्र ने इनकी जमकर आलोचना की है। उसने इस कोटि के वैद्यों को चिकित्सा के यथार्थ ज्ञान से वञ्चित निर्दिष्ट किया है[१०]। इससे बचने के लिए राज्य ने योग्य

---

१. दशावतार चरित, १०, १४. नर्ममाला, १–३२.
२. राजतरंगिणी, ७, ५४७–५५. ३. शुक्रनीतिसार, २, ५४–५.
४. वही, २, १०७–१५. ५. राजकाण्ड, पृ० ५३.
६. सुनील चन्द्र रे, अर्ली हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ काश्मीर, पृ० ९६.
७. सो० इ० हि० ना० इ०, पृ. ३६७ और आगे। ८. राजतरंगिणी, ७, २८२.
९. क० स० सा०, ४०, ५४. ६१, २३.
१०. देशोपदेश, अष्टम उपदेश, ३३–५. नर्ममाला, द्वितीय परिहास, ६८

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



चिकित्सकों के राजकीय पंजीयन की सुविधा की व्यवस्था की थी[1]। शुक्रनीतिसार की इस मन्त्रणा की उपयोगिता निस्सन्देह अधिक रही होगी।

**सार्थवाह**—कथासरित्सागर में अनेक ठग सार्थवाहों के उल्लेख प्राप्य है। एक ऐसे अर्थ-पिशाच व्यापारी का उल्लेख हुआ है जिसने अपनी पत्नी को धन के लोभ में बेंच दिया था।[2] व्यापारियों के मध्य दलाल भी होते थे जो दलाली करके धन कमा लेते थे।[3] उक्त ग्रन्थ में हिरण्यगुप्त नामक एक आचरण-भ्रष्ट बनिये की कथा आती है। एक बार उपकोशा ने कुछ धन लाने के लिए उक्त बनिये के पास दासी को भेजा। उसने एकान्त में आकर उपकोशा से कहा कि यदि तुम मेरी सेवा स्वीकार करो तो मैं तुम्हारे पति का गिरवी रक्खा हुआ धन तुम्हे वापस कर सकता हूँ। पक्का साक्ष्य न होने के कारण उसको इस विधि से परेशान किया।[4] कुछ बनियों ने अपने व्यापार की सफलता का रहस्य बताते हुए कहा है कि पैसे का संयम करने वाला ही धन कमा सकता है।[5] ऐसे लोभी वणिकों की कथाएँ भी कथासरित्सागर में संग्रहीत हैं जिन्होंने स्वार्थ-सिद्धि के उपरान्त सहायता करने वाले व्यक्ति के प्रति आभारी होने के स्थान पर उसके ही अनभल की कामना व्यक्त की थी।[6] सार्थवाह बहु-शुल्क ( चुंगी ) से बचने के लिए अपने प्रवहण उचित मार्ग को छोड़कर जंगली पथों से होकर ले जाते थे। इस प्रकार राज्य की आय की हानि होती थी।[7]

कल्हण ने तत्कालीन धोखेबाजों में राज्य कर्मचारी लेखक, वेश्याओं तथा बनियों का उल्लेख किया है।[8] उसके अनुसार बनिया एक बिच्छू की भाँति है। पानी जो सरिताओं द्वारा समुद्र में एकत्र होता है वह पुनः मेघों द्वारा प्राप्त हो जाता है किन्तु बनिये को दी गई वस्तु फिर कभी नहीं प्राप्त होती।[9] सोमदेव और कल्हण की भाँति क्षेमेन्द्र ने भी बनियों की आदर्शहीनता का भण्डाफोड़ किया है। कम सौदा खरीदने वाले व्यक्ति के शब्दों के प्रति वह बहरा हो जाता है और जब कोई उससे अपनी धरोहर माँगने आता है तब वह गूँगा होने का स्वाँग करता है। क्षेमेन्द्र के अनुसार जिस प्रकार शरीर व्याधियों का मन्दिर है उसी प्रकार बनिया धूर्तता का निकेतन है।[10]

---

१. शुक्रनीतिसार, १, ३०४.
२. क० स० सा०, ४३, ८७–८
३. वही, ५४, १९१
४. क० स० सा०, ४, ६४–६
५. वही, ६, २९–२९
६. वही, १८, ३०५–७
७. ययांच स बणिक्सार्थः पुरस्कृत्याटवीपथम्। बहुशुल्क भयन्तल भागन्तिरवनाश्रितम्॥
क० स० सा० २९, १०५–७
८. राजतरंगिणी, ८, ७०६–१०
९. क० स० सा०, ३७–१०५
१०. समयमात्रिका, ५, ६३–७

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



**स्त्री-चरित्र**—सोमदेव ने अनेक दुराचारिणी स्त्रियों की कथाएँ कथासरित्सागर में संग्रहीत की हैं। एक प्रसिद्ध वेद-विद्या-विशारद तथा विख्यात अध्यापक की पत्नी कालरात्रि ने पति के प्रवास के अवसर पर, उसके शिष्य को मोहित कर उससे अनुचित प्रस्ताव किया।[1] इसी प्रकार एक दूसरी कामातुरा गुरु-पत्नी ने हठपूर्वक अपने पति के शिष्य देवदत्त का वरण कर लिया।[2] एक बार वासवदत्ता ने स्वप्न देखा कि प्रातः एक स्त्री अपने पति को पकड़ कर डाँटती-डपटती एवं उसे खींचती हुई तुम्हारे ( उदयन के ) पास निवेदन के लिए आवेगी, किन्तु वह वास्तव में दुराचारिणी है।[3]

ऐसी कथाओं की भरमार है जिसमें प्रायः विवाहित स्त्रियाँ पर-पुरुष के साथ रमण-सुख ले रही हों।[4] ऐसी अनेक दुष्टा स्त्रियों का उल्लेख है। जिन्होंने अपने जार ( प्रेमी ) के लिए स्वयम् अपने पति की हत्या की है[5]। इस प्रकार की कामासक्ता जो स्त्री निर्भय होकर सहवास कर बैठती है वह दूसरों की मुष्टि की तलवार की भाँति अपने कुल को नष्ट कर डालती हैं।[6] मद और काम से उन्मत्त राजदत्ता ने एक वणिक् को पलंग पर बैठा कर उसे लिपटा लिया[6]। वास्तव में स्त्रीत्व, मद्य, एकान्त में पुरुष का मिलन और पूर्ण स्वतन्त्रता जहाँ ये अग्नियाँ एकत्र हों वहाँ चरित्र रूपी तृण स्वतः स्वाहा हो जाता है।[7] काम के वशीभूत नारी में विवेक नहीं रहता।[8] ऐसी चञ्चल स्त्री की रक्षा किसी भी प्रकार से नहीं की जा सकती।[9] जैसे प्रलय-कालीन आँधी हाथों से नहीं रोकी जा सकती उसी प्रकार दुःशीला स्त्री को संसार में कोई नियन्त्रण में नहीं रख सकता[10]। निग्रह-प्रयास स्त्रियों के औत्सुक्य को अधिक बढ़ा देता है। स्त्रियों का चित्त भीतर से विषमय और बाहर से निर्मल दीखता है।[11] स्त्रियों का कोई भी ऐसा क्षण नहीं जाता, जिसमें वे अपनी या किसी अन्य स्त्री की चर्चा न करें[12]। स्त्रियाँ चंचल और दुराचारिणी ही होती हों यह कोई सामान्य बात नहीं है। कतिपय ऐसी वेश्याओं के भी उल्लेख हैं जो सदाचारी थीं[13]। चंचल पारे की भाँति

स्त्रियों को नियन्त्रण में बाँधना कठिन है।[14] स्त्री और लक्ष्मी कभी स्थिर नहीं रही हैं। ये सन्ध्या के समान क्षणिक राग वाली होती हैं[15]। नदी के समान इनका हृदय

---

१. क० स० सा० २०, ११८, १५०–१, १५२–५४,
२. वही, ७, ५७
३. वही, २३, ६–७
४. क० स० सा०, ३२, ६–७.
५. वही, ३४, १८२–८७.
६. वही, ३२, ७७–८.
७. वही, ३२, ८६.
८. वही, ३६, ८६–७.
९. क० स० सा० ३६, ८७.
१०. वही, ३६, ९३.
११. वही, ३६, १३३.
१२. वही, ३६, १३४.
१३. वही, ३७, ८४–५.
१४ वही, ८७, ९७.
१५. क० स० सा०, ८६,२३२. तुलनार्हः—"सन्ध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागा" मृच्छकटिक, अंक, श्लोक.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



कुटिल ( ऊँचा-नींचा ) होता है[1]। नागिन की तरह विषधर तथा विद्युत् की भाँति इनका मन चंचल होता है। स्त्रियों के चरित्र के विषय में सोमदेव की भाँति पाश्चात्य प्राचीन चिन्तकों के भी विचार थे[2]।

स्त्रियों के दूषण चरित्र के पीछे तन्त्र के बढ़ते हुए लोकप्रिय सिद्धान्तों का भी योगदान रहा होगा। काम से विह्वल वैश्य कन्या ने मन्त्र के प्रभाव से सोमस्वामी को मर्कट बना दिया था।[3] स्त्रियों का हृदय अत्यन्त दुर्गम होता है।[4] सोमदेव के अनुसार इनका प्रमुख दोष चंचलता, साहस और डायनपन है।[5] जैसे मधुकरी नित्य नवीन प्रसूनों को चाहती है उसी प्रकार स्त्री नये-नये प्रेमी की कामना रखती है।[6] चारित्रिक शिथिलता स्त्री का सहज गुण है। कान्य-कुब्ज बाह्मण वामदत्त की पत्नी महिष-पालक के साथ रमण करती थी।[7] सोमदेव के अनुसार यदि स्त्री के नाक न हो तो उनके लिए विष्ठा खा लेना भी असम्भव नहीं है।[8] इसीलिए सोमदेव ने ऐश्वर्याकांक्षी व्यक्ति को उपदेश दिया है। अर्थसाध्य वियावान् वन के समान भीषण विलासिनी स्त्रियों के प्रेम में फँसना नहीं चाहिए।[9]

कथासरित्सागर में अशोकवती रानी वीणा-शिक्षक को आकृष्ट करने के लिए सदैव कामुक चेष्टाएँ किया करती थी। एक बार एकान्त में नाखूनों को गड़ाती हुई कामातुरा रानी गुणशर्मा द्वारा रोके जाने पर बोली—हे सुन्दरक ! वीणा बजाने के बहाने से मैंने तुम्हें पाया है। तुम्हारे प्रति मेरा घनिष्ट प्रेम हो गया है। अतः मेरा उपभोग करो। उसके मना करने पर उसने कहा—हे नीरस ! तुम्हारे इस सुन्दर स्वरूप और कला कौशल का क्या महत्त्व, जब तुम मुझ जैसी कामातुरा प्रेयसी की उपेक्षा कर रहे हो[10]। अनंगप्रभा रानी अपने नाट्यशाला में नाट्याचार्य द्वारा भ्रष्ट हो गई[11]। विलासिनी वाराङ्गनाएँ, संसार की स्थिति के समान अन्त में नीरस दुःखदायिनी प्रत्येक क्षण में बदलने वाली और अनित्य सम्बन्ध वाली होती हैं। अनंगप्रभा रानी ने क्रमशः खड्गसिद्ध, हरिवर, नाटचाचार्य, लब्धवर, जुआरी, सुदर्शन, बनिया, धीवराधिप सागर वीर, विजय वर्मा क्षत्रिय पुत्र और राजा मदनप्रभ से विवाह किया।[11] सोमदेव की पैनी दृष्टि ने स्त्रियों के चरित्र का गम्भीर अध्ययन किया था। उनके अनुसार पति वाली स्त्रियों का भी वेश्याओं के समान विश्वास नहीं करना चाहिए।[12] कथासरित्सागर के शक्तियशोलम्बक के द्वितीय तरंग में कुलटा नारियों की कथाएँ ही संग्रहीत हैं। विक्रम-

---

१. वही०, ८६, १४२–३. २. पोलिटिया, १२५४, बो०, १२६०, ए.
३. क० स० सा०, ३७, १०१-४. ४. वही, ३७, १४०-५० ३. वही, ३७, १७०-१.
५. वही, ३७, १७४. ६. वही, ६९, ३९-४४.
७. क० स० सा०, ६२, १०५, १९२. ८. वही, ६२, १७६.
९. वही, ४९, ४८–५३. १०. वही, ५२, २७०.
११. क० स० सा०, ५२, २८७. १२. वही, ५८, ५६.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



सिंह कुमुदिका वेश्या की कथा, दुःशीला और देवदास की कथा, राजासिंहबल-रानी कल्याणवती आदि की कथाएँ अवलोकनीय हैं। रात में उच्च घर की दुष्टा स्त्रियाँ खिड़की के मार्ग से रस्से के सहारे ऊपर चढ़ाकर अपने घर में बुलाकर रमण सुख का आनन्द लेती थी।[1] निर्लज्ज स्त्री ईर्ष्यालु पति को छोड़कर इस प्रकार भागती है जैसे वेगवती नदी बाँध तोड़कर निकल जाती है। सोमदेव ने स्त्री को अपने गुप्त भेद को बताने की सलाह नहीं दी है।[2] ईर्ष्यालु और पागल स्त्री अपने पति का वध तक करा देती है। उक्त ग्रन्थ में ग्यारह पतियों के मारने वाली एक स्त्री की कथा है।[3] धनदेव की स्त्री जहाँ-तहाँ सदैव नए पुरुष के साथ रमण करती थी।[4] उसकी खिड़की में रस्सी से बँधी चमड़े की पिटारी लटकती रहती थी। निशा में जो भी उस पिटारी में घुसता था। उसे ही बुला लेती थी तथा रात के अन्त में उसे उसी विधि से बाहर निकाल देती थी।[5] इसी प्रकार की अनेक कथाएँ शक्तियशोलम्बक के आठवें तरंग में उपलब्ध है। धनदेव सार्थवाह तथा, रुद्रसोम नामक ब्राह्मण स्त्री की कथाएँ द्रष्टव्य हैं। शशी ने अपनी स्त्री को भूगर्भ में चरित्र-रक्षा निमित्त बन्द कर दिया था किन्तु उस दुष्टा के कोढ़ी के साथ रमण करने की घटना का उल्लेख है।[6] बोधिसत्त्व के अंश से उत्पन्न बनिए की दुराचारिणी पत्नी वन में तपस्या के समय काम-वासना से पीड़ित हो कर रुंड पर आसक्त हो गई थी। कालान्तर में उस दुष्टा ने षडयन्त्र रचकर अपने पति को नदी की तेजधार में फिकवा दिया।[7]

कथासरित्सागर के अनुसार माया के बिना पाटलिपुत्र की स्त्रियों का कोई कदम ही नहीं उठता है।[8] प्राचीन समय में दुराचारिणी स्त्रियों को पाटलिपुत्र की स्त्रियों के अनुकरण की संज्ञा दी गई है।[9] पाटलिपुत्र की स्त्रियाँ दुराचारिणी, झूठी बात गढ़ने में निपुण तथा पति एवं स्वजनों को ठगने में प्रवीण होती थीं।[10]

संक्षेप में सोमदेव ने निम्न कर्मोन्मुख चंचल स्त्रियों को धिक्कारा है। गड्ढे में गिरने वाली स्त्रियों की रक्षा सम्भव नहीं है।[11] माया के बिना स्त्रियों की कोई चेष्टा ही नहीं होती।[12]

**वेश्या**—समाज में वेश्या का प्रमुख स्थान था।[13] प्राचीन काल से ही इन्हें राज्याश्रय प्राप्त था। वात्स्यायन ने लिखा है कि चौंसठ कलाओं में पारंगत वेश्याएँ अपने कार्य में दक्ष होंगी तथा उनके लिए उज्जवल भविष्य प्रतीक्षा कर रहा है। राज्य

---

१. वही, ५८, १२४. २. वही, ६१, १४६-७.
३. क० स० सा०, ६४, १००. ४. वही, ६४, १०१.
५. वही, ६४, १२९, १३२, १३६. ६. वही, ६५, १५. ७. वही, ६५, २०.
८. क० स० सा०, ६६, २७. ९. वही, ६६, २८. १०. वही, ६६, ५२.
११. वही, ६४, १४९-५०. १२. वही, ६६, २७.
१३. डा० अल्तेकर, दी पोजीशन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेसन, पृ० १८१.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



उन्हें सम्मान देगा।[१] वैशाली की नगर वधू अम्बपाली बुद्ध के समय की लोकप्रिय गणिका थी।[२] बिन्दुमती मिलिन्द के युग की प्रसिद्ध वेश्या थी।[३] शूद्रक ने भी गणिका को विशेष सम्मान दिया है। आर्य चारुदत्त जैसे शिष्ट व्यक्ति ने भी वसन्तसेना के प्रति उच्च विचार व्यक्त किया है तथा उससे पाणिग्रहण के लिए उद्यत था। क्योंकि वसन्तसेना शुद्ध प्रेम करना जानती थी।[४] गुप्तकाल में गणिकाएँ अपनी सम्पत्ति लौकिक ऐश्वर्य एवं भौतिक भोग-विलास में ही अपव्यय नहीं करती थीं प्रत्युत उन्हें परलोक की भी चिन्ता रहती थी। इसी कारण उनके लोकहित सम्बन्धी सार्वजनिक कार्य एवं धार्मिक दान की सूचनाएँ उपलब्ध हैं।[५] इन विवरणों से स्पष्ट पता चलता है कि समाज में वेश्याएँ सम्मानित थीं। वेश्याओं के गुण, रूप, धन उनकी कलात्मक कुशलता तथा उनके द्वारा अधिकृत समाज में लोकप्रिय स्थान के सम्बन्ध में संस्कृत भाषा के साहित्य से महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं। निस्सन्देह उनका स्थान 'कलासकी' ग्रीस के एसोशियस और फ्रीन्स से कम न रहा होगा।[६] प्राचीन भारत में श्रेष्ठ कोटि की गणिकाओं के अतिरिक्त इसमें सन्देह नहीं है कि कुछ सस्ते किस्म की वेश्याएँ भी रही होगीं।[७]

राज्य की ओर से नृत्य तथा गायन-वादन को प्रोत्साहन प्राप्त था[८]। राज्य दरबार में गायक कन्याओं की नियुक्ति होती थी। इसके अतिरिक्त चामरधारिणी, अंग-रक्षिका, केश-संसाधिका, ताम्बूलिका आदि राजकीय सेवाओं में रक्खी जाती थीं। राजा के सांस्कृतिक मनोरंजन का प्रबन्ध वेश्याएँ करती थीं। ऐन्द्रिय क्रिया-कलापों के अतिरिक्त प्रशासन उनका उपयोग जासूसी के कामों में भी लेता था[९]।

कथासरित्सागर की सूचनाओं से प्रारम्भिक मध्य युग की वेश्याओं पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। सोमदेव ने वेश्याओं को स्वभाव से ही अर्थ-लोलुप निर्दिष्ट किया है। अर्थ के बिना वे कामदेव पर भी प्रसन्न नहीं होती हैं। उक्त ग्रन्थ की एक कथा में ब्रह्मा ने भिक्षुओं का निर्माण करके उनसे लोभ को ले कर वेश्याओं को दे दिया है[१०]। उनका

---

१. कामसुत्र ( निर्णय सागर प्रेस ), ९-३, पृ० ४९-२.
२. पी० थामस, इण्डियन वूमेन न्प्रू दी ऐजेस, पृ० ८४-८.
३. मिलिन्दपन्ह, ४, ९-४८.
४. मृच्छकटिक, अं० ३.
५. चाकलदार, सोशल लाइफ इन ऐशेण्ट इण्डिया, पृ० १९९.
६. डॉ वाशम, वन्डर दैट वाज़ इण्डिया, पृ० १८३.
७. हेस्टिंग्स, इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ रिलिजन एण्ड इथिक्स, जि० १०, पृ० ४०६–८., डब्ल्यू० क्रूक, प्रास्टीट्यूशन इन इण्डिया.
८. पी० के गोद, ए० भ० ओ० रि० इ० ( १९४१ ), पृ. २५–३४.
९. डा० अल्तेकर, वही, पृ. १८२.
१०. क० स० सा०, ३८, ३८–९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



हृदय सद्भावना से विहीन होता है[1]। धनवान अपने पुत्र को सांसारिक चतुराई की दीक्षा के लिए कुट्टिनी के पास भेजते थे। जिससे वे वेश्याओं की भाषा अपने भविष्य के जीवन में पढ़ सके[2]। वेश्याएँ ठगने में व्यस्त रहती थीं[3]। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक मध्य काल में उनका स्तर प्राचीन समय की तुलना में गिर गया था। उनका उद्देश्य अब सस्ते किस्म के मनोरंजन तक ही सीमित हो गया था। वे धन के लिए अपने असामियों की दुर्दशा करने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखती थीं[4]। राज-पुत्रों से लोहजंघ को वेश्या की बूढ़ी माता (कुट्टनी) मकरदंष्ट्रा ने लात और घूसों से मरवाया था। उन राजकुमारों ने मार कर उसे किसी सण्डास ( खातक ) में फेंक दिया था[5]। कुट्टनियाँ अर्थ-पिशाच की मूर्त रूप थीं। सोमदेव के अनुसार वह व्यक्ति मूर्ख है जो वेश्याओं और बालू में स्नेह चाहता है[6] अर्थात् एक से स्नेह ( प्रेम ) और दूसरे से तेल मिलना दोनों ही असम्भव बाते हैं।

कथासरित्सागर में सोमदेव ने कतिपय इस प्रकार की वेश्याओं की कथाएँ भी संग्रहीत की हैं जो बड़े घरों की स्त्रियों से भी अधिक सभ्य, व्यवहार कुशल हैं। ऐसी भी गणिकाओं का उल्लेख है जिन्होंने धन लेकर भी अपने प्रेमी को लौटा दिया था[7]।

सोमदेव ने कुट्टनी के आकार-प्रकार का चित्रात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। वह भोढ़ी टुड्डी, लम्बे दाँत तथा चिपटी नाक वाली होती थी[8]। इसकी कपट-रचना को ब्रह्मा भी नहीं समझ सकता था[9]। दामोदर गुप्त ने अपनी पैनी चित्रग्राहिणी बुद्धि के माध्यम से कुट्टनीमतं काव्यम् के चित्रपट पर कुट्टनी का अत्यन्त साङ्गोपाँग चित्र उभारने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। विकराला ( वाराणसी की कुट्टनी ) संसार के वृत्तान्तों को जानने वाली थी[4]। इसके दाँत प्रायः गिर गये थे और आगे के बचे हुए दांत मुंह से बाहर निकल आए थे, ठुड्ढी झुकी हुई थी, नाक का अग्र भाग मोटा और चिपका हुआ था, बड़े-बड़े चूचुकों से उसके सूखे हुए स्तनों का पता चलता था, जिसका चर्म शिथिल झूल रहा था[10]। उसकी आँखें भीतर धंसी हुई और लाल-लाल थीं। उसके

---

१. वही, ५७, ५३. ४. ५८. तुलनार्ह :—एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतोः—मृच्छकटिक, अंक ४, श्लोक १४.

२. क० स० सा०, १२, ९०–६; ६, ५१–२. ३. वही, ३, ५४.

४. वही, १२, १०३–४; ५. वही, ५७, १२८. ५८, २५५.

६. क० स० सा०., ६, ६३. ७. वही, ३८, ११३.

८. वही, ३८, १६०. ९. तद्गत्वा पृच्छामो विकरालां कलितसकलसंसाराम्
—कुट्टनीमतं काव्यम्, २५

१०. अथ विरलोन्नतदशनां निम्नहनुं स्थूलचिपिटनासाग्राम्।
उल्बणचूचुकलक्षितशुष्ककुचस्थानशिथिलकृत्रितनुम्॥
—कुट्टनीमतं काव्यम्, २७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



कानों की कर्णपाली भूषणहीन और लम्बी थी। कतिपय केश पक गए थे। ग्रीवा स्पष्ट दिखाई पड़ती नसों से भरी और अधिक फैली हुई थी[1]।

क्षेमेन्द्र के अनुसार वेश्याएँ, श्रीमानों के पुत्र, वह युवक जिसके पिता की मृत्यु शीघ्र हुई हो, राजा के मन्त्री, सार्थवाह के पुत्र, शल्य-चिकित्सक जो राजा के मन्त्री की चिकित्सा करता हो, सुप्रसिद्ध गुरु का शिष्य और पुत्र, उत्तेजित कामुक संन्यासी (भिक्षुक, श्रमण), अयोग्य उत्तरदायित्वहीन राजकुमार, ग्राम दिविर, लक्ष्मीवान् और सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ, सार्थवाह जो पहली बार नगर में आया हो, उद्भट विद्वान् और मद्यप को कलप वृक्ष समझती थीं[2]।

**देवदासी**—कथासरित्सागर में देवदासियों का उल्लेख है।[3] रूपणिका नामक चतुर देवदासी देव-मन्दिर में जाती थी।[4] वह अनेक सुन्दरियों से घिरी हुई वीणा के मधुर स्वर से शिव की वन्दना करती थी। उसके सुन्दर रूप से लावण्य की वर्षा होती थी तथा वह अपने याचकों को चन्द्रमा के समान आकर्षित कर लेती थी।[5] काञ्चीपुर के मन्दिर की देवदासी तरुणता के तूफान से उछलती हुई लावण्य सागर के तरंग के समान लग रही थी।[6]

प्रारम्भिक मध्य युगीन अभिलेखों के रचयिताओं ने देवदासियों के शारीरिक सौन्दर्य, सुगठित मांसपेशियों, उन्नत कुचों, भारी भरकम नितम्बों तथा कोमल तन्तुओं से निर्मित मसृण शरीर की मुक्तकण्ठ से काव्यात्मक व्याख्या प्रस्तुत की है।[7]

---

१. गम्भीरारक्तदृशं निर्भूषणलम्बकर्णपालीं च।
कतिपयपाण्डुरचिकुरां प्रकटशिरासन्ततायतग्रीवाम्॥ वही, २८.
तुलनार्ह :—
अस्थियन्त्रशिसतन्त्री लीनान्त्रोदरकृत्तिका।
शुष्ककावयकरङ्काङ्कातेव कटपूतना॥
बहन्ती सुबहुच्छिद्रं शरीरं चर्मबन्धनम्।
अन्तर्गतजगद्व्याजशिक्षाशकुनिपञ्जरम्॥
सुस्पष्टदृष्टदीर्घाग्रदशना भीषणाकृतिः।
प्रसवक्रूरकोपेन संस्थितास्थिरता शुनी॥
उलूकवदना काकग्रीवा मार्जारलोचना।
निर्मित प्राणिनामङ्गैरिवनित्यविरोधिनाम्॥—समयमातृका, चतुर्थ समय.

२. समयमातृका, ६३–७.

३. क० स० सा०, १५, ७६; ५२, १७०-३६९; ५७, ७४-८; १२, ७८-९०४; १२, ८०, ९०१

४. वही, १२, ८०; १२, १५२-१५७; १२, १०१, ५. वही, १२, १०१.

६. वही, ५७, ७५.

७. पीयूषे मधुराधरे नयनयोः प्रान्तेव यासौ स्मरः
कर्णस्तम्भनमोहनादिसुदशां वक्ते नितम्बादिसु

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



सभी प्राचीन धर्मों में, यथा बेबीलोन मिस्र और ग्रीस में वेश्यावृत्ति का सम्मानित स्थान था। धर्म के ठेकेदार पुरोहितों ने मन्दिर की आय-वृद्धि, शोभा-संरक्षण तथा जनाकर्षण हेतु देवदासियों को नियुक्त किया था।[१] इससे पता चलता है कि सामाजिक व्यवसायी वेश्याओं के अतिरिक्त वेश्याओं का एक और वर्ग था।[२] जो मन्दिर में नृत्य, गायन तथा वादन करती थीं। इन्हें देवदासी ( देवता की दासी ) कहा जाता था।

कथासरित्सागर में देवदासियों के विवाह का उल्लेख है।[३] धर्मशास्त्र इस विषय में मौन है। स्ट्रैबो के अनुसार मिस्र के मन्दिरों की देवदासियों को देवता की स्त्री कहा जाता था। वे जब विवाहित हो जाती थीं तो अन्त्येष्टि की भाँति संवेद मनाया जाता था।[४] इसी प्रकार के विचार कथासरित्सागर[५] और राजतरंगिणी में भी संग्रहीत है।[६] जो स्त्री-दशा तथा उनके स्त्री-धन के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण तथ्य है।[७] देवदासियों के विवाह की परम्परा सम्भवतः भारत में मध्य एशिया से आई होगी क्योंकि आर्मेनिया और मिस्र में बहुत पहले से यह प्रथा प्रचलित थी।[८]

---

उपद्रषण वस्तुजातमखिलं भुष्ययंदगाश्रित
तारातास्तेन विडिम्बताम्बर चरी रूपा शिवाय...
—वैद्यनाथ का शोभनेश्वर शिलालेख,
ज० बि० उ० रि० सो०, जि १७ ( १९३१ ), पृ० १२८,

रत्नालङ्कृतिभूषिताङ्गसुषमा देदीप्यमाना दिवः
क्रीडन्त्यस्तडितः स्थिरा इव कुचश्रोणीभरव्याकुलाः
सुन्दर्योक्षिकनीनिकामिव दृशामत्तः प्रविष्टा
नृणामस्मै चञ्चलकर्णजगहनयना दत्तास्तया दारिका
ब्रह्मेश्वर मन्दिर का उद्योतन सूरी का शिलालेख, ज० रा० ए० सो० बं०, जि० १३ ( १९४७ ), पृष्ठ ७१, पद सं० १७.

आ० स० इ० ए० रि०, १९०३-४, पृ० १२३. ए० इ०, जि० १३, पृ० ४९.
वही, ९. ६१-६६. वही, ६, १९८-२०५. वही, ११, २४१.
वही, ११, २६. ज० ए० सो० बं०, ३४, १२८-५४.

१. पी० थामस, वही, पृ० २३६-४०.
२. दशरथ शर्मा, अलीचोहान डायनेस्टीज, पृ० २६०.
३. क० स० सा०, १५, ७६ राजतरंगिणी, ६, १९-११६.
४. स्ट्रैबो, १२, ५५९ ( वोल्टर्स द्वारा प्रकाशित, अमेस्टरडम १७०७ ).
५ क० स० सा० १५, ७६ बृ० क० म०, ३, गुच्छा ९, ३३,
६. राजतरंगिणी, ४, ११.
७. अपर्णा चट्टोपाध्याय, ज० इ० हि०, जि० ४४, भाग ३, ( दिसम्बर १९६६ ), सीरियल न० १३२; केरल विश्वविद्यालय से प्रकाशित, त्रिवेन्द्रम, पृ० ७६१-७६.
८. वही, ज० ओ० इ०, बड़ौदा, जि० १६, ( मार्च १९६७ ), सं० ३, पृ० २२१-२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



**कामुक उत्सव**—कथासरित्सागर में कामुक उत्सवों का उल्लेख हैं। ऐसे उत्सव समग्र नगरों में उत्साह के साथ मनाये जाते थे। समाज के सभी वर्ग तथा प्रत्येक आयु के लोग इनमें विशेष रुचि लेते थे।

ऐसे उत्सवों में इन्द्रोत्सव,[1] वसन्तोत्सव[2] तथा देवयात्रा[3] आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्द्रोत्सव के अवसर पर नागरक नगर की शोभा देखने निकलते थे। इस उत्सव में अविवाहित सुन्दरी कन्याएँ तथा नव युवक विशेष उत्साह के साथ नगर घूमते थे।[4] आलोच्य ग्रन्थ में सोमदेव ने बसंत के आगमन का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। वह मानवती स्त्रियों के मानरूपी हाथी का मर्दन करता हुआ और केसर-पुष्पों की छटा ( गर्दन के केश ) वाला वसन्त-केसरी ( सिंह ) का आगमन हुआ है। इस ऋतु ने कामदेव के, खिली हुई आम्रमंजरी-रूपी धानुषों को भौंरों की पंक्ति रूपी डोरी से सज्जित कर दिया है। काम को उत्तेजित करने वाला मलयानिल बहने लगा। नदियों की बाढ़, वृक्षों क पुष्प, चन्द्र की चाँदनी ये सब नष्ट होकर फिर आते हैं, किन्तु प्राणियों का यौवन जाकर फिर नहीं लौटता, अतः हे सुन्दरियों, मान-कलह को छोड़-कर अपने प्रियतम पतियों के साथ रमण करो—कोकिलों की कूकें प्राणियों को मानों इस प्रकार कह रही थीं। इस ऋतु में रमणियों ने अपने मुखों से नदी के कमलों को, नेत्रों से कुमुदों को, कुचों से चक्रवाक-युगलों को और अपने-अपने गुरु-नितम्बों से गोदावरी के पुलिनों को जीत लिया था। अतः गोदावरी नदी क्रोध से अपनी तरंग-रूपी भौंहे टेढ़ी करके वनिताओं को देख रही है।[5] बसन्तोत्सव की धूम-धाम में नागरिक व्यस्त रहते थे। वसन्त के आगमन की प्रसन्नता के उपलक्ष में यह एक सामाजिक अभिव्यक्ति थी।[6] इस अवसर पर काम के देवता मदन की पूजा होती थी। विशेष रूप से यह नव युवक-युवतियों का उत्सव था। इसका आयोजन बहुत ठाठ-बाट से होता था। नागरिक नगर की सजावट देखने जाते थे। इस लिए उक्त अवसर पर प्रेमी-प्रेमिकाओं के मिलने के अनेक सुअवर प्राप्त होते थे। ऐसी निशा में वसन्तोत्सव की पूर्ण वासन्ती चन्दिका छिटकी रहती थी। इस समय के समग्र वातावरण में रति-विलास और संगीत की प्रधानता होती थी। उक्त अवसर पर प्रिय निकुञ्जों में प्रेयसी के कण्ठ को घने माधवी पुष्पों की माला से सजाता था[7]। मदनोत्सव के अवसर पर धनवान् सैर-सपाटे का आयोजन करते थे। वहाँ वे अपनी प्रेयसी के साथ जल-क्रीडा

---

१. क० स० सा०, ४, ३.

२. वही, ४, ३५; ६, १०८; १०, ८७; १७, ७१; २०, ५४-५.

३. वही, २५, १२१–२; २६, ५९-६०. ४. वही, ४, ३०.

५. शाकुन्तलम्. अंक ६. ६. क० स० सा०, ४, ६५.

७. आ० स० इ० ए० रि०, १९०३–४, फलक सं० ४३ (ए)

८. क० स० सा०, ५५, १०७–१७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



तथा जल-विहार के माध्यम से संतरण का आनन्द लेते थे[1]। मतवाली कामिनियाँ अपने हाथों में पिचकारी लेकर नागर पुरुषों पर रंग डाल रही हैं और वे पुरुष गण कुतूहल से नाच रहे हैं; चारों ओर ताली के शब्दों से गालियाँ मुखरित हो रही हैं। उड़ाये गए गुलाल से दशो दिशाओं का मुख पीत वर्ण का हो रहा है। कुङ्कुम की बुकनी से लाल गुलाल उड़ रहे हैं, जिससे प्रातः काल सा हो रहा है। ऐसा दीख पड़ता है मानों नागरिकों की देह पर सोने का पानी चढ़ा दिया गया हो। चतुर नागरक के पिचकारी के जल के प्रहारों से वेश्याएँ सीत्कार कर रहीं हैं। उड़ाए गए गुलाल से अन्धकार फैल गया है। कामदेव का प्रिय दूत, आम्र वृक्ष को मञ्जरित करने वाला और मान गांठ को ढीला करने वाला दक्षिणानल चल रहा है। इस समय में बसन्त पहले लोगों के हृदयों को मृदुल बनाता है, तब अनङ्ग अवसर पाकर अपने फूल के बाण से उन्हें वेधता है। मतवाली स्त्री के नूपुर दुगनी आवाज कर रहे हैं, कम्प के कारण इसके कलेजे पर डोलता हार प्रहार सा कर रहा है, तथापि यह नाच रही है, और इतनी तन्मयता से नाच रही है कि इसे स्तनभार से झुकी हुई कमर के टूटने की भी चिन्ता नहीं है। उद्यान के वृक्षों की जड़ में तरुणियों द्वारा किये गए गण्डूसमद्य फूलों से वासित किए जा रहे हैं, स्त्रियों के कपोल पर नशे की लाली दौड़ रही है[2]। अशोक वृक्ष पर होने वाले तरुणियों के पाद-प्रहार के समय नुपूर बजने लगते हैं, सद्यः स्थान कर कुसुम्भ रंग की ( लाल ) साड़ी पहन कर काम पूजा करती हुई ऐसी लग रहीं हैं मानो नये पल्लवों से युक्त वृक्ष की लता हो।[3]

मदनोत्सव के अवसर पर उद्यान में मेले लगते थे। ये मेले प्रणय-व्यापार के प्रमुख केन्द्र हुआ करते थे[4]। अविवाहित युवतियाँ कामदेव की अर्चना स्त्री-उद्यान में मनोनुकूल पति के हेतु करती थीं। कामदेव की प्रतिमा उस उद्यान में स्थापित रहती थी[5]। उक्त अवसर पर वेश्याएँ सम्मिलित होती थीं। उनके उभरे स्तन रूपी तटों वाली एवं लावण्य-जल से भरपूर रमणी-नदी से बहाया हुआ व्यक्ति नियन्त्रण खो बैठता था[6]।

इस सन्दर्भ में तान्त्रिक उपासना-पद्धति की लोकप्रियता का उल्लेख करना समीचीन होगा। तत्कालीन समाज की इस प्रकार की उपासना में घोर आस्था थी। कुछ तन्त्र ग्रन्थ तो मैथुन-सम्बन्ध को धार्मिक अनुष्ठान का अंग मानते थे[7]। कालिका पुराण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस अवसर पर जननेन्द्रियों से सम्बन्धित गीत गाये जाते थे। सम्भवतः मैथुन भी होता था। इसमें शारीरिक अंगों का पर्याप्त रूप से

---

१. रत्नावली प्रथम अङ्क, ९–१८.
२. रत्नावली, प्रथम अङ्क, २०
३. क० स० सा०, ६, १०८–९. ५५, ११८–२२.
४. वही, १०, ८७; १७,७१.
५. वही, २०, ५४–५. रत्नावली, अंक १.
६. क० स० सा०, २७, ५९–६०.
७. बी० पी० मजूमदार, सो० इ० हि० ना० इ०, पृ०, ३७७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



सञ्चालन करना पड़ता था तथा उनकी ऐसी धारणा थी कि उक्त नियम का उल्लंघन भगवती को रुष्ट कर देगा[1] ।

---

१. सुवासिनीभिः कुमारीभिर्वैश्याभिर्नर्तकैस्तथा ।
शङ्खतूर्यनिनादैश्च मृदङ्गैः परघैस्तथा ॥ १९ ॥
ध्वजैर्वस्त्रैश्च विविधैर्लाजिपुष्पप्रकीर्णकैः ।
धूलिकर्दमविक्षेपैः क्रीडाकौतुकमंगलैः ॥ २० ॥
भगलिंगाभिधानैश्च भगलिंगप्रगीतकैः ॥ २१ ॥
परैर्नाक्षिप्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपेद्यदि ।
क्रुद्धा भगवती तस्मै शापं दद्यात्सुदारुणम् ॥ २२ ॥
कालिका पुराण

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अध्याय ८

# शृंगार-प्रसाधन

कथासरित्सागर मूलतः कथा-ग्रन्थ है। जिसमें सोमदेव विलक्षण प्रतिभा द्वारा सामाजिक चित्र प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। प्राप्य सूचनाओं द्वारा इस ग्रन्थ में वर्णित तत्कालीन स्त्री एवं पुरुषों के वस्त्र, अलंकरण तथा सौन्दर्य-वृद्धि के प्रसाधनों पर महत्त्व-पूर्ण प्रकाश पड़ता है। भारतीयों की पारलौकिक चिन्ता, दर्शन और धर्मों के प्रति अनुराग का परिणाम यह हुआ कि भौतिक पक्ष का अपेक्षित विकास सम्पन्न होने से रह गया। अज्ञात के प्रति आध्यात्मिक विचार ही केवल भारतीय संस्कृति नहीं है। यह तो उसका एक अधूरा चित्र है। चारों पुरुषार्थों से समन्वयात्मक जीवन ही पूर्णता, गौरव और भारतीय आदर्शमय जीवन का लक्ष्य था।

वस्त्रों का प्रयोग भारत में प्राचीन समय से ही होता था[1]। भारत को समशी-तोष्ण जलवायु ने उसे कम वस्त्र दिए। प्राचीन काल से ही दो प्रकार के वस्त्रों को पहना जाता था; एक अधो वस्त्र ( वासव अन्तरम् ) एवं दूसरा परिधान ( उत्तरीय के रूप में ऊपर का वस्त्र )। वेश-भूषा के इतिहास ( स्वरूप एवं विकास ) के अध्ययन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भ से कुषाणों के आगमन के पूर्व तक लगभग एक ही शैली के वस्त्रों का प्रयोग होता था। परन्तु कुषाण-सभ्यता के सम्पर्क के परिणाम-स्वरूप भारतीय वेशभूषा के क्षेत्र में नवीन परिवर्तन हुए; उदाहरणार्थ लम्बे कोट एवं भारी भरकम जूते का प्रयोग[2]।

कथासरित्सागर में स्त्रियों के कञ्चुक का मनोहारी वर्णन उपलब्ध है। उक्त ग्रन्थ में लावण्य रस को निर्झरी की भाँति बहाते हुए एक तरुणी ने कुम्भ के सदृश उन्नत

---

१. मार्शल, मोहनजोदड़ो एण्ड दी इण्डस सिविलाइजेशन, जि २, पृ० ५८५.
मैके, एक्सकैवेशंस एट मोहनजोदड़ो, जि १, पृ० ५९१.
जे० टरनर एण्ड ए गुलाटी, बुलेटिन न० १७, टेक्नोलाजिकल सिरीज़ न० १२ ( इण्डियन सेन्ट्रल काटन कमेटी बम्बई ).
स्टुअर्ट पिगट, प्री हिस्टारिक इण्डिया, पृ० १५५.
मार्टिमर व्हीलर, दी इण्डस सिविलाइजेशन, पृ० ६८.

२. जयराजभाय, फारेन इन्फ्लुयेन्स इन ऐशेण्ट इण्डिया, ( १९६३, एशिया पब्लिशिंग हाउस ) पृ० १५४ बरजेंस, आर्किटेक्चरल एन्टीक्यूटीज आफ नार्थ गुजरात, १९०३, फ० ५६.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



उरोजों को रंग-बिरंगे कञ्चुक ( चोली ) में कस रक्खा था।[१] रमणियों के 'धवल कञ्चुक' का उल्लेख इस ग्रन्थ में प्राप्य है।[२] इस सूचना के आधार पर यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि वराङ्गनाओं में कञ्चुक ( चोली ) पहनने की स्वाभाविक इच्छा वर्तमान थी। इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि स्त्रियाँ श्वेत कञ्चुक भी पहनती थीं। कल्हण ने जरी के काम की कञ्चुक का उल्लेख किया है ( सुवर्णपद चिह्नित कञ्चुक )।[३] राजा हर्ष देव के पास सदा रहने वाली चञ्चल भृकुटियों से विभूषित सुन्दरियाँ अपने स्तनों को अधबँहियाँ कञ्चुक से ढ़के रहती थीं।[४] स्त्रियों के ऊपर के वस्त्र में केवल चोली ही रहती थी।[५] यह स्तनों को ही ढ़क पाती थी तथा डोरीं द्वारा बाँधी जाती थी।[६] कथासरित्सागर में स्त्रियों के वस्त्रों में आधे बाँह की चोलीं और तंग कसी हुई कञ्चुकी के विवरण उपलब्ध हैं।[७] हर्षचरित में बाण ने राज्यश्री के विवाह की तैय्यारी के समय चमकीले कञ्चुक का उल्लेख किया है।[८] कादम्बरी में महाश्वेता की कञ्चुक का सविस्तार वर्णन सुलभ है।[९] प्रारम्भिक मध्य युग में राजस्थान की स्त्रियों की कञ्चुका को 'कूर्पासक' कहा जाता था।[१०] स्त्रियों की चोली के लिए प्राचीन साहित्य में चोल और कूर्पासक शब्द आये हैं, किन्तु यह नहीं बताया गया है कि इन दोनों में क्या भेद था।[११] कालिदास ने चोली अथवा कंचुक के अर्थ में 'कूर्पासक' शब्द का व्यवहार किया है।[१२] ऋतुसंहार से पता चलता है कि कूर्पासक एक तरह की चोली थी जो स्तनों पर कस के बैठती थी।[१३] स्त्रियों के लिए यह एक चोली के ढंग का था। पुरुषों के लिए यह फतुई या मिर्जई की तरह था। इसकी दो विशेषताएँ थीं, एक तो यह कटि से ऊँचा रहता था, और दूसरे प्रायः आस्तीन-रहित

---

१. स तामालोक्य लावण्यरसनिर्भरनिर्झराम्।
आलक्ष्य कुचुकुम्भाग्रां वलित्रयतरङ्गिताम्॥ — क० स० सा०, ८४, ७.

२. नागीव विस्फुरद्रत्नमूर्धा धवलकञ्चुका।
अब्धिवीचीव लावण्यपूर्णा मुक्तावलीचिता॥ — क० स० सा०, १०४, १६५.

३. स जातु देवीं संवीतसिंहलांशुककञ्चुकाम्।
हेमपदाङ्कितकुचा दृष्ट्वा जज्वाला मन्युना॥ — राजतरंगिणी, १, २९४५.

४. अधराम्बरपुच्छान्तैर्लम्बैश्चुम्बितभूतलाः।
प्रच्छादितार्धदोर्लेखकञ्चुकाङ्कपयोधराः॥ — राजतरंगिणी, ७, ९३०

५ क० स० सा०, ८४, ७. ६. कुमारसम्भव, ७, ६०.

७. क० स० सा०, १०४, १६५. ८४, ६, ८. हर्षचरित, पृ० १७५.

९. कादम्बरी, पैरा २४८. १०. दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डायनेस्टीज, पृ० २६४

११. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेश-भूषा, पृ०, १५८.

१२. ऋतुसंहार, ४, १६, कूर्पासकंपरिदधाति नखक्षतांगी;

१३. वही, ५, ८, मनोज्ञकूर्पासक पीडितस्तनाः।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



होता था।[1] सम्भवतः इसीलिए कूपसिक नाम पड़ा; क्योंकि इसमें आस्तीन कोहनियों से ऊपर ही रहती थी। कूर्पासक भी चीन चोलक की भाँति मध्य एशिया से इस देश में आया।[2]

बाण ने कई रंगों से रंगे हुए कूर्पासक का उल्लेख किया है।[3] कूर्पासक की भाँति की आधुनिक पोशाक वास्कट है लेकिन एशिया के शिष्टाचार के अनुसार वास्कट सबसे ऊपर पहनने का वस्त्र माना जाता है, जब कि पश्चिमी सभ्यता में वास्कट भीतर पहनने का वस्त्र है।[4] समस्त मंगोलिया-प्रदेश, चीनी तुर्किस्तान और पख्तून प्रदेश में भी फतुई पहनने का रिवाज सार्वदेशिक था और वह पूर्ण एवं सम्मानित पहनावा माना जाता था। फतुई या फितूरी, बन्द, कब्जा, चोली एक ही मूल पहनावे के नाम और भेद हैं।[5]

इस युग में कञ्चुक ( चोली ) पहने की प्रथा सर्वत्र प्रचलित थी। बिल्हण[6] और कल्हण[7] ने इसका उल्लेख किया है। समकालीन मूर्तियों और चित्रों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्त्रियाँ साधारणतया दो ही वस्त्र ( वस्त्र युग्म ) धारण करती थीं।[8] देवी-मञ्जुश्री का अधो वस्त्र घुटने के नीचे तक का है। उसके ऊपर का वस्त्र एक स्कार्फ जी भाँति है जो उरोजों को ढकता हुआ दो किनारों पर समाप्त हो जाता है।[9] वनिताएँ एड़ी तक पहुँचती साड़ी पहनती थी[10]। वारविलासिनी स्त्रियाँ केवल जाँघों के मध्य तक की साड़ी ( शाटक ) पहनती थीं। इसका पोत इतना महीन होता था कि शरीर की लुनाई झाँकती हुई सी लगती थी।

स्त्रियाँ प्रारम्भ से ही सौन्दर्य की उपासिका रही हैं। वस्त्रों ने उनकी इस मधुर भावना के प्रसार में सुयोग दिया होगा। उन्होंने वस्त्रों के माध्यम से चित्ताकर्षक तथा श्रृंगार प्रसाधनों के सहयोग से चिर सुन्दर रहने की चेष्टा की थी। स्त्रियाँ विशेष

---

१. वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १५५.

२. 'चोली-दामन का साथ है'। इस मुहावरे का तात्पर्य यही है कि दामन या लहँगा जहाँ से शुरु होता है, ऊपर की चोली वहाँ समाप्त होती है। चोली और दामन दोनों मिला कर पूरा वेष बनता है, अतः दोनों का साथ अनिवार्य है।

वही, पा० टि०, २.

३. नानाकषायकर्बुरै, हर्षचरित, २०६.

४. हेनी हेराल्ड हेन्सन, मंगोल कास्टयूम्स ( कोपेन हेगेन ) पृ० ७०.

५. वासुदेव शरण अग्रवाल, वही; पृ० १५६.

६. विक्रमाङ्कदेवचरित, ८, ४५. मजूमदार, चालुक्याज ऑफ गुजरात, पृ० ३५६.

७. राजतरंगिणी, १, २९४–५.

८. आइकनोग्राफी ऑफ़ ढाका म्यूजियम फ० ७ ( ए ) अल्तेकर, दी पोजीशन ऑफ़ वूमन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० २८१, ९. वही.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



अवसर पर लहँगा पहनती थीं। वे लहँगे के ऊपर शाल ओढ़ लेती थीं।[1] इन रमणियों का स्मित हास्य कपूर की धवलता का स्मरण दिलाता था। इससे सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि ऐसे विशेष अवसर प्रसन्नता सूचक रहते होंगे। उनके लहँगे भूमि को स्पर्श करते थे[2] तथा उनके स्तन अधबहियाँ कञ्चुक से ढके रहते थे।[3] इस प्रकार नाना वस्त्रों से भूषित वे अपने चपल भृकुटियों के विलास का प्रदर्शन करती हुई विचरण करती थीं।[4]

कथासरित्सागर में उच्च वर्ग की स्त्रियों के घर नाना प्रकार के पटों ( पर्दे ) से सुसज्जित दिखाए गए हैं तथा वे अधिकतर उसके अन्दर ही रहती थीं।[5] पर्दे के भीतर की उनकी जीवन-विधि एवं वार्तालाप आदि के विषय में मनोरम सामग्री इस आलोच्य ग्रन्थ में परिपूर्ण है।[6]

कथासरित्सागर में पुरुषों के दो प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख हुआ है।[7] पुरुष एक उत्तरीय अथवा दुपट्टा ऊपर की ओर ओढ़े रहते थे।[8] कल्हण के अनुसार प्राचीन काल में काश्मीर राज्य के राजा को छोड़कर और किसी के सिर पर न तो पगड़ी ही दिखाई देती थी और न कानों में कोई कुण्डल ही धारण करता था।[9] कम्पनेश मदन अपने केश सवाँर कर बाँधे हुए थे और शरीर पर सुन्दर रङ्गीन अँगरखा पहन रखा था जिसके कारण उसे राजा का कोप भाजन बनना पड़ा।[10] किन्तु राजा हर्षदेव ने इस संकुचित मनोवृत्ति की परिचायक परम्परा को सदा के लिये अन्त कर दिया। इस प्रकार उसने मन्त्रियों एवं नागरिकों कों भी श्रृङ्गारिक वेष के धारण की स्वतन्त्रता दे दी।[11] सुन्दर वेश-भूषा से सुसज्जित कतिपय राज्यकर्मचारियों की दर्शनीय सजावट देखकर उक्त राजा ने परिचारिकाओं द्वारा उनकी आरती उतरवाई थी।[12] यद्यपि कल्हण इस वर्णन में कल्पना और अतिरंजना का लोभ-सम्वरण नहीं कर सका है

---

१. क० स० सा०, ५२, ४३. २, राजतरंगिणी, ७, ९३०. ३. वही, ७, ९३०.
४. वही, ७, ९३०. ५. वही, ७, ९३१. ६. कथासरित्सागर, १२, १५८.
७. शशंस रात्रिवृत्तान्तं दापयित्वान्तरे पटम् क० —स० सा०, १२, १६०.
प्रभाते च पटान्तः स्थामेत्य रूपणिकां रहः —क० स० सा०, १२, १६२.
८. गृहाण चाग्निशौचाख्यमिदं वस्त्रयुगं मम।
अनेन प्रावृतेनैव स्वं रूपं द्रतिपत्स्यसे॥ क० स० सा०, ५६, ३५१.
इत्युक्त्वा दत्ततद्वस्त्रयुगे कार्कोटके गते। वही, ५६, २५२.
९. उत्थाय चैकवस्त्रां तां दमयन्तीं विमुच्य सः।
छिन्नं तदुत्तरीयार्धं प्रावृत्य च ततो ययौ॥ वही, ५६, ३१७
प्रावृतार्धपटो दूरं गत्वा दावाग्निमैक्षत॥ वही, ५६, ३४०
१०. राजतरंगिणी, ७, ९२१. ११. वही, ७, ९२३.
१२. राजतरंगिणी, ७, ९२४. १३. वही, ७, ९२५.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



तथापि इससे राजा हर्षदेव के वस्त्र-सम्बन्धी उदार दृष्टिकोण की सूचना प्राप्त होती है। इसके इस विवरण द्वारा सामाजिक जीवन क्षेत्र में कतिपय महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के दृष्टान्त प्राप्त होते हैं।

सोमदेव ने अपनी पैनी दृष्टि से समाज का भरपूर चित्र उभारा है। उनके चित्रों का कैनवास विशाल है तथापि उन्होंने अनेक सूक्ष्म चित्रों को सफलता से अंकित किया है। उन चित्रों की प्रत्येक रेखा विशेष भावों को संजों कर खीची गई है। आलोच्य ग्रन्थ में अंगरक्षक की वेश-भूषा का सटीक वर्णन उपलब्ध है। वे नरेश के चारों ओर शस्त्र लिए हुए, लम्बे-चौड़े मुस्तण्ड़, पंक्तिबद्ध खड़े रहते थे। सोमदेव ने पट-बन्ध के विषय में महत्त्वपूर्ण सूचना प्रदान की है। नरेश यशोवर्मन ने प्रसन्न होकर अपने सेनापति और प्रतीहारी को पट बाँध कर उन्हें रत्नों से भर दिया था।[1] कमर में पटका बाँधने की प्रथा मध्यकाल के बहुत पूर्व गुप्त काल में ही चल चुकी थी। किसी ने किसी रूप में पटका बांधना उदीच्य वेष का, जो शकों के साथ यहां आया, आवश्यक अंग था।[2] उदयगिरि के संख्या छ वाली लेण में द्वारपाल एक धोती, जिसका चुना हुआ भाग खोंसा है और नाभि के नीचे कमर बन्द जो सकरमुद्धीदार पेटी से बंधी है, पहने हुए है। कमरबन्द के दोनों छोर कमर पर पंखे के आकार में सुसज्जित हैं।[3]

सोमदेव ने कथासरित्सागर में गोपाल ( अहीर ) की वेश-भूषा का अत्यन्त सटीक वर्णन प्रस्तुत किया है। वह हाथ में लाठी और कंधे पर काला कम्बल लिए हुए है।[4] इस सूचना के आधार पर ऊनी कपड़े की लोक-प्रियता पर भी महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

कथासरित्सागर में श्रीमानों के स्नान के विवरण उपलब्ध हैं।[5] काम-काज निबटाने के बाद मध्याह्न से पूर्व वह स्नान के लिए उठ जाता था।[6] समवयस्क मित्रों के साथ स्वल्प व्यायाम के अनन्तर स्नानागार में पहुँचता था। वहाँ उनकी परिचारिकाएं उनके आभूषण तथा वस्त्र उतार देती थीं और उन्हें कमर में लपेटने के लिए केवल तौलिया ( अन्तर्वासस ) दे देती थीं।[7] स्नान चौकी पर होता था। यह

---

१. पट्टबद्ध्वा रत्नैरपूरयत् —क० म० सा०, ५३, २३३.

२. वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १५७.

३. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० २०३.

४. एवं कुरु गृहाणेमं मदीयं कालकम्बलम्।
लगुंड चास्व चैवेह तद्दासी यावदेष्यति ॥ क० स० सा०, १०, ११८.
क० स० सा०, २९, १६५.

५. क० स० सा०, ३८, ३६ ६. कादम्बरी, पृ० २८.

७. गृहीत्वा तत्र तस्यान्तर्वस्त्राण्याभरणानि च।
चेलखण्डं तमेकं च दत्त्वान्तर्वाससः कृते ॥ क० स० स०, ४, ५२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



साधारणतः चमकती हुई संगमरमर की होती थी। बहुमूल्य धातु-पात्रों में सुगन्धित जल रखा हुआ रहता था। दासियाँ उनके केशों में सुगन्धित आमलक धीरे-धीरे मलती थीं।[1] स्नानगृह की चौकी पर बैठते ही उनके सिर पर सुगन्धित वारिधारा पड़ने लगती थी। तदुपरान्त वे सर्पनिर्मोक के समान श्वेत और चमकीली धोती पहनते थे। स्नान के बाद शरीर को सूखे कपड़े से सुखाया जाता था।[2] तत्पश्चात् सौन्दर्य-वर्द्धक पदार्थों यथा—केसर, हिना और सन्दल आदि का सेवन होता था। कुमकुम और लोधर का प्रयोग रूप के निखार के लिए करते थे। आल्तक ( आल्ता ) का उपयोग स्त्रियाँ पाद-सज्जा के निमित्त करती थीं।[3] वस्त्र, अङ्गराग (फेनक, तेल, इत्र), आभूषण तथा पान का सेवन शारीरिक कान्ति बढ़ाने के लिए करते थे।[4] नेत्र-सुषमा-संवर्धन के लिए नारियाँ काजल का प्रयोग करती थीं। सोमदेव ने सातवाहन राजा की जल-क्रीडा के माध्यम से रानियों के काजल के धुलने का अत्यन्त मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है।[5] तत्कालीन अन्य साक्ष्यों के अनुशीलन से पता चलता है कि काजल स्त्रियों के श्रृंगार-प्रसाधन के साथ-साथ उनके सौभाग्य का भी सूचक था। एक कलचुरि-अभिलेख के अनुसार पराजिता शत्रुओं की विधवा स्त्रियों ने नेत्रों में काजल लगाना छोड़ दिया था।[6] राजा सातवाहन ने पत्रावली के समान तिलक को पानी के छीटों की धार से धो डाला और पुष्पों के तुल्य उनके आभरणों को उतरवा डाला।[7]

कथासरित्सागर के अनुशीलन से तत्कालीन समाज की अलंकरण-प्रिय मनोवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है। स्त्री और पुरुष दोनों ही हाथों की अंगुलियों में अंगूठी पहनते थे[8]।

---

१. आ शिरः पादमङ्गेषु ताभिस्तत्तैलकज्जलम्।
अभ्यङ्गभङ्ग्या पापस्य न्यस्तं धनमपश्यतः॥ वही, ७।५३

२. मानसोल्लास ( गा० ओ० सि०; जि० ८४ ), पृ० ८१, पृ०, ९३०-५३.

३. तया च तस्य प्राप्तस्य तत्राभिज्ञानसिद्धये।
पुत्रकस्य प्रसुप्तस्य न्यस्तं वासस्यलक्तम्॥ क० स० सा०, ३, ७१.

४. आपणे रत्नमेकं च गत्वा विक्रीतवांस्ततः।
अथ वस्त्राङ्गरागादि क्रीतवान्भोजनं तथा॥ वही, १२, १५०
वस्त्राङ्गरागपुष्पाद्यैरात्मानं तैरभूषयत्। वही, १२, १५१
वस्त्राङ्गरागाभरणैर्ग्रामैश्च सवसन्तकौ। वही, १४, ६०.

५. क० स० सा०, ६, ९९. ६. ए० इ०, जि० २६, पृ० २५४.

७. क० स० सा०, ६, ९२.

८. इत्ययोन्यं प्रतिज्ञाते सा शेते स्म पराङ्मुखी।
स्वाङ्गुलीयमहं चास्याः सुप्ताया अङ्गुलौ न्यधाम्॥
—क० स० सा०, १२४, १६४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



जघन-स्थल के निकट मेखला साड़ी को कसे रखती थीं।[1] उनके सुकोमल कण्ठ के चारों ओर हार लटका करता था[2]। पायल पैरों में शोभा पाती थी। वे कानों में कर्णभूषण तथा कलाइयों में सुन्दर कङ्कण पहनती थी[3]। राजा सहस्त्रनीक के कङ्कणों पर उसका नाम अंकित था[4]। इससे लगता है कि सम्भवतः आभूषण पर नामांकन की प्रथा भी लोकप्रिय रही होगी।

कथासरित्सागर की सूचनाओं से पता चलता है कि बहुमूल्य स्वर्ण आभूषणों में जड़ाई का काम भी होता था। रति-विलास की हल-चल में वणिक-कन्या का मोती से जड़ा हुआ कर्णाभूषण कहीं गिर पड़ा था[5]। राजा मदन वेग को हार और केयूर पहने हुए अङ्कित किया गया है[6]। केयूर को भुजाओं पर पहना जाता था। कल्हण ने पराजित शत्रु-वनिताओं के व्याज से कानों के ताटङ्क ( झुमके ) का बहुत ही मनोरम वर्णन किया है। राजा के भय से शत्रुओं की अंगनाओं के कर्णपूर ( ताटङ्क ) गिर गए थे[7]।

कतिपय समकालीन अभिलेखों में भी कथासरित्सागर में वर्णित आभूषणों का उल्लेख प्राप्य है। विजयसेन एवं वल्लालसेन के अभिलेखों द्वारा कण्ठहार, बहुमूल्य रत्न, बाली, तथा केयूर ( भुजबन्द ) के सम्बन्ध में सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। प्रारम्भिक मध्ययुगीन अन्य साहित्यिक ग्रन्थों—यथा रामचरित[8], त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित[9], राजतरंगिणी,[10] समयमात्रिका[11] और नैषधचरित[12] द्वारा कथासरित्सागर में निर्दिष्ट अलंकरणों के प्रयोग की सम्पुष्टि होती है।

---

१. बबन्ध मेखलां मूर्ध्नि हारं च जघनस्थले।
नुपुरौ करयोस्तस्याः कर्णयोरपि कङ्कणौ॥—वही, ६१, २६.

२. वही.

३. सोऽपि तच्छ्वशुरो दृष्ट्वा स्वसुताकर्णभूषणम्।
तत्तथोपागतं तस्यै संभ्रान्तः समदर्शयत्॥ क० स० सा०, २१, ९०.

४. सहस्रानीकनामाङ्कं चकार कटकं करे, वही, ९, ७३.
विक्रीणानश्च तत्तत्र राजनामाङ्कमापणे, वही, ९, ८४.

५. वही, १०, ८२,

६. क० स० सा०, १२४–५. क० स० सा०, ३३, २११.

७. राजतरंगिणी, ३, ३२६.

८. रामचरित, ३, ३३–४. ९. १, २२९.

१०. राजतरंगिणी, ८, २८३५. ११. वही, ७, १४–७.

१२. १, ३८; ७, ८०; ९, १०४; १०, ११६; १५, ३३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



तत्कालीन मूर्तियों, अभिलेखों एवं वाङ्मय के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक मध्य युग में आभूषण-निर्माण की तकनीकी कला काफी बढ़ी-चढ़ी थी। उस युग के मजे हुए कलाकार दुरूह से दुरूह विधान की संरचना कर लेते थे। यद्यपि भारतीयों की वेष-भूषा सरल थी किन्तु उनके अलंकरण अनेक एवं जटिल थे[1]। उस युग के आभरण उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा के ज्वलन्त प्रतीक हैं।

---

१. घोषाल, दी स्ट्रगल फार इम्पायर, पृ० ४८७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अध्याय ९

# मनोविनोद

राजाओं और सामन्तों के दरबार में उनके मनोविनोद के लिए नर्म सचिव की नियुक्ति होती थी[1]। ये प्रायः राजाओं तथा राजकुमारों के साथ रहते थे। नर्मसुहृत (नर्म सचिव) उन्हें नाना प्रकार के हास-परिहासों से प्रसन्न रखने का भरपूर प्रयास करता था। स्वयं कथासरित्सागर के लेखक सोमदेव भट्ट त्रिगर्त[2] या कुल्लू काँगड़ा के राजा की पुत्री, काश्मीर के राजा अनन्त की रानी[3] तथा हर्ष (काश्मीर) की पितामही सूर्यमती के मनोविनोद[4] के लिए ग्रन्थ की रचना की थी[5]। सोमदेव की इस सूचना के आधार पर कहा जा सकता है कि कथा-श्रवण श्रीमानों के मनोविनोद का प्रौढ़ साधन रहा होगा[6]।

मृगया, कामिनी तथा मद्य ने प्राचीन काल से ही नरेशों के चित्त का अनुरञ्जन किया है[7]। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में उसे विनोद का सर्वोत्तम साधन कहा गया है[8]। मृगया मनोरञ्जन के साथ-साथ उत्तम व्यायाम भी समझा जाता था[9]। सोमदेव ने अपनी बृहत्कथा-मञ्जूषा में अत्यन्त रोचक विधि से मृगया के वर्णन बटोर कर सुरक्षित रखे हैं[10]। राजा गणकों द्वारा पूर्व निर्दिष्ट शुभ लग्न पर आखेट के लिए प्रस्थान करता था[11]। मृगया में गुप्तचरों की नियुक्ति की जाती थी जो राजा को शिकार के प्रकार तथा स्थिति से अवगत कराते रहते थे[12]। कथासरित्सागर की निर्दिष्ट सूचना से पता चलता है कि राजघरानों में आखेट का प्रबन्ध विशाल स्तर पर नियोजित किया जाता था।[13] इस ग्रन्थ के चतुर्थ लम्बक में सोमदेव ने वत्सराज उदयन के मृगया-वर्णन के

---

१. क० स० सा०, ९, ४४; ३४, ११५. २. वही, ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति, श्लोक ४.

३. वही, श्लोक २.

४. वही, श्लोक ४. ५. वही, श्लोक ११.

६. विन्टरनित्स, हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, भाग ३, पृ० ३५३, सुभद्र झा द्वारा अनुदित (१९६३).

७. क० स० सा०, ५०, ११६. ८. स्त्रीमद्यमृगयासक्तो
क० स० सा०, १५, ८.

९. अंक २. १०. दशमकुमारचरित, पृ० २०९ (काले का संस्करण).

११. क० स० सा०, ६,९३. वही, १२, ४५.

१२. वही, १३, १२–३. १३. वही, १३, ६–९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



माध्यम से तत्कालीन आखेट का साङ्गोपांग चित्र खींचा है[1]। शिकार में राजा बहेलियों के साथ हरे पत्तों का वेश धारण कर मृगवनों में जाता था।[2] कीचड़ से सने हुए शूकरों के झुण्डों को वह बाणों से वेधता था। उसका पीछा करने पर भय से भागते हुए कृष्णसार मृग ऐसे प्रतीत होते थे जैसे पूर्वकाल में विजय की हुई दिशाएँ उस पर कटाक्षपात कर रही हों।[3] जंगली भैंसे के रक्त से रञ्जित वन-भूमि ऐसी लगती थी मानों वन-कमलिनी राजा के सेवार्थ उपस्थित हुई हो।[4] भालों में बिंधे हुए मुखों वाले सिंहों को देख कर वह प्रसन्न होता था।[5] मृगया में शिकारी आखेट-पटु श्वानों तथा जाल का प्रयोग भी करता था।[6] लक्ष्यवेध, ( निशानेबाजी ) व्यायाम तथा तत्सम्बधी अस्त्र-शस्त्रों के अभ्यास के लिए सोमदेव ने आखेट की महत्ता का उल्लेख किया है।[7] शाकुन्तल में लेखक ने इसकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि मृगया के कारण चर्बी छँट जाती है तथा परिणामस्वरूप कटि प्रदेश पतला एवं शरीर हल्का और उठाने योग्य हो जाता है।[8]

सोमदेव ने रोचक शैली में नरवाहनदत्त के आखेट का वर्णन सप्तम लम्बक के अष्टम तरंग में किया है। नरवाहनदत्त, पिता वत्सराज एवम् अन्य मित्रों तथा हाथी-घोड़ों के सहित शिकार खेलने के लिए जंगलों में गया। वह रमणीक मृगया-भूमि नरवाहनदत्त के हेतु प्रसन्नता का कारण बन गई। वह आखेटस्थल विशालकाय हाथियों के कुम्भस्थल को फाड़ने वाले मारे हुए सिंहों के नखों से गिरे हुए मोतियों से ऐसी लग रही थी, मानों उसमें बीज बोये गये हैं। वह मृगया-भूमि भालों से मारे हुए बाघों के

---

१. क० स० सा०, २१, ११-१६. २. वही, २१, ११. ३. वही, २१, १४.

४. वही, २१, १४. ५. वही, २१, १५.

७. श्वानः श्वभ्रे वने तस्मिंस्तस्य वर्त्मसु वागुराः।
सा स्वायुधैकसिद्धेऽभूत्प्रक्रिया मृगयारसे ॥—क० स० सा०, २१, १६.
हम्मीरमहाकाव्य, ४, ४८
विक्रमाङ्कदेवचरित, १२९८–१३२८.

८. तस्मात्त्वयापि कर्तव्यो नासंतोषो युधं विना।
काङ्क्षणीयो न चानिष्टो विपक्षोऽपि कदाचन ॥
शस्त्रशिक्षा स्ववीर्यं च दर्शनीयं तवेह चेत्।
योग्यभूमावटव्यां तन्मृगयायां च दर्शय ॥
राज्ञां चाखेटकमपि व्यायामादिकृते मतम्।
युद्धाध्वनि न शस्यन्ते राजानो ह्यकृतश्रमाः ॥—क० स० सा०, २७, १४४–६.
दशकुमारचरित में भी मृगया की प्रशंसा करते हुए इसे सर्वश्रेष्ठ व्यायाम कहा गया है, देखें दशकुमारचरित, पृष्ठ २०९ ( काले )

९. शाकुन्तलम्, अङ्क २.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



बिखरे हुए दाढों से अंकुरित हुई मालूम होती थी। मारे हुए हरिणों के शरीर से निकल कर फैले हुए रक्त से मानों लाल पल्लवों से युक्त सी प्रतीत हो रही थी। बाणों से बींधे गए सूअरों से, मानों गुच्छों से भरी हुई और शरभों के गिरे हुए शरीरों से, मानों वह फलवाली लग रही थी। उस भूमि में भयंकर सनसनाहट के साथ बाण तथा गोफण से गोलियाँ फेंकने ( गुलिका-क्रीडा ) का प्रयास किया जा रहा था। ऐसी वह मृगया-भूमि ( शिकारगाह ) विचित्र शोभा धारण कर रही थी।[1]

आखेट प्रारम्भ से ही धनी वर्गों का प्रिय व्यसन रहा है। प्रारम्भिक मध्य युग में सुप्रशिक्षित श्वान और बाज़ के माध्यम से शिकार करते थे।[2] मछली का शिकार कँटिया लगा कर करते थे।[3]

**द्यूत**—कथासरित्सागर के अनुशीलन से पता चलता है कि द्यूत भी नागरिकों के मनोरञ्जन का एक प्रिय साधन था। आखेट सामान्यतः श्रीमानों के अनुरञ्जन का माध्यम रहा होगा किन्तु द्यूत जनसामान्य का भी लोकप्रिय मनोरञ्जक था। वात्स्यायन द्वारा निर्दिष्ट चौंसठ कलाओं में इसे भी उचित स्थान प्राप्त था।[4] कथासरित्सागर से प्राप्त सूचनाएँ द्यूत की लोकप्रियता पर प्रकाश डालती हैं। उक्त ग्रन्थ में अधिकांश विद्वान ब्राह्मण द्यूत-क्रीड़ा में जमकर भाग लेते हुए दिखाई पड़ते हैं।[5] प्रारम्भिक अवस्था में मालव-नरेश श्रीसेन द्यूत में विशेष अभिरुचि लेता था।[6] वाराणसी के राजा विक्रमचण्ड का विक्रम नामक सेवक जूआ तथा युद्ध में अति निपुण था।[7] आलोच्य ग्रन्थ में धनदत्त[8] और देवदास[9] नमक वणिक को द्यूत का शिकार बताया गया है। एक निर्धन दाई ( धात्री ) का पुत्र जूए का प्रेमी था।[10] इन सूचनाओं के आधार पर धनी-कंगाल, भले-बुरे, ऊँच-नीच, बदमाश-ठग, गुण्डे-लुच्चे आदि सभी वर्गों में द्यूत-क्रीड़ा की लोकप्रियता का पता चलता है। ऊँचे वर्ग के लोग छद्मवेष में द्यूतशाला जाते थे।[11] द्यूत को गर्हित समझा जाता था। इसके दुःखद परिणामों का सोमदेव ने विस्तार के साथ वर्णन किया है।[12] धनदत्त नामक व्यापारी द्यूत के व्यसन में फँसकर अपनी पूरी पूँजी गँवा बैठा था।[13] ब्राह्मण युवक श्री दर्शन दिवंगत पिता की समग्र सञ्चित पूँजी जुए में हार गया था। इस हेतु उसके जीवन का निर्वाह ही दूभर हो गया था।[14] मालव-नरेश श्रीसेन

---

१. क० स० सा० ४३, १–९. २. क० स० सा०, २१, १६.
३. विक्रमाङ्कदेवचरित, १२९८–१३२८; १३२९–१३८०. ४. कामसूत्र, १, ३, १६.
५. क० स० सा०, ७३,७२–४;७३,२०३;७४,२१०;२६,११५–७;२४,५७,५७–९.
६. क० स० सा०, ६३, १८८–९०. ७. वही, २३, ३२. ८. वही, ७७,१७–८.
९. वही, १९, १७. १०. वही, ७५, ९४–५. ११. वही, ७४, १४०–२.
१२. क० स० सा०, ७२, ७५–७; ७७, १८-९; ७३, २०३; ७३, १८९; २४, ५८–९. १२१, ७२–५, ७७. १३. वही, ७६, १८–९. १४. वही, २६, १९७.
कथासरित्सागर में अधिकाशतः ब्राह्मण युवकों को द्यूत-कर्म में संलग्न दिखाया गया है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



को प्रारम्भ में अपने द्यूत–व्यसन के कारण नाना प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ी थीं। कथासरित्सागर में एक नवसिखुए जुआड़ी को अनुभवी द्यूतकारों के द्वारा मूड़ने की रोचक कथा का उल्लेख सोमदेव ने किया है।[1] उक्त ग्रन्थ में जूए से हुई यातना का सबसे वीभत्स रूप उज्जयिनी के ठिण्ठाकराल नामक पात्र को भोगना पड़ा था। इसने महाकाल के श्मशान को अपना निवास-स्थान बनाया। यहाँ के शव–दाह की लकड़ियों से उसने भोजन बनाया तथा श्मशान का घृत उसे भक्षण करना पड़ा।[2] कलिंग की वृद्धा विधवा दाई के द्यूतकर पुत्र की कथा से प्रारम्भिक मध्य युग के हारे हुए जुआड़ियों पर रोचक प्रकाश पड़ता है। वह अपनी वृद्धा माँ के वसनों तक को जुए के दाँव पर लगा कर हार जाता है।[3] द्यूत से उद्भूत अपराधों में सोमदेव ने हत्या एवं मिथ्याभाषण का उल्लेख किया है। एक कथा के अनुसार द्यूत में सब कुछ गवाँ कर धनदत्त चन्दनपुर पहुँचा। वहाँ उसका विवाह किसी धनी व्यापारी ने अपनी कन्या से किया किन्तु उसके हृदय से मानवता पहले ही लुप्त हो चुकी थी। अतः वह जुए के लोभ का संवरण न कर सका। परिणामस्वरूप, अपने अङ्क में सोयी हुई अपनी भार्या रत्नावली की नृशंस हत्या कर उसके आभरणों को ले कर वह चंपत हो गया।[4] सोमदेव ने एक समाज सुधारक की भाँति काम को सभी व्यसनों का मूल निर्दिष्ट किया है तथा तत्कालीन समाज को उससे सचेत रहने की मन्त्रणा दी है।[5]

कथासरित्सागर के अनुशीलन से द्यूत-क्रीड़ा के विस्तार पर महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। इस विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि द्यूत-क्रीड़ा पूर्व में कलिंग[6] से लेकर पश्चिम में लाट[7] तक तथा पूर्वोत्तर दिशा की ओर वर्धमान[8] और वाराणसी[9] से लेकर दक्षिण में उज्जयिनी[10] और मालवा[11] तक लोकप्रिय रही होगी।

कथासरित्सागर के अनुशीलन से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्भवतः प्रत्येक नगर में द्यूतशालाएँ रहती थीं।[12] उक्त ग्रन्थ में अक्षपटल, ( द्यूतफलक ), पाँसा आदि के विषय में कोई उल्लेख नहीं है। प्रवञ्चक ( धूर्त ) जुआड़ियों के उल्लेख इसमें प्राप्त हैं। ऐसे बेईमान जुए के खिलाड़ियों के लिए अर्थशास्त्र में कड़े दण्ड की व्यवस्था निर्दिष्ट की गई है।[13] कथासरितसागर में ऐसे अनेक धूर्त

---

१. क० स० सा०, २४, ५८–९. २. वही, १२१, ७१–५. ३. वही,
४. हत्वाङ्कसुप्तां भार्यां तां तदाभरणसंचयम् क० स० सा०, ७७, ४५.
५. कामं व्यसनवृक्षस्य मूलं दुर्जनसंगतिः–क० स० सा० ७७, १८.
६. वही, ७५, ८४–९५. ७. वही, ७४, १३९–४०. ८. वही, २४, १८–५९.
९. वही, २३,३१–२. १०. क० स० सा, १२४, २०९–११.
११. वही, ७३, १८८–९, १२१, ७२. १२. वही, ६, २६.
१३. अर्थशास्त्र, ३, ११.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



जुआड़ियों की कथाएँ संग्रहीत हैं जिसमें उन्होंने बेईमानी से धन-संग्रह किया है।[१]

जुए के दुष्परिणामों के कारण प्रारम्भिक मध्य युग का समाज इसे बुरी दृष्टि से देखा है। द्यूत अभाग्य का निकेतन है। एक स्थल पर सोमदेव ने द्यूतकर की सामान्य नियति का अत्यन्त सजीव चित्र उभाड़ा है। उसके अनुसार जुआड़ी की भुजाएँ ही उसके वस्त्र हैं, वसुन्धरा उसकी शय्या है, चत्वर (चौराहा) उसका गृह है तथा अभाग्य उसकी भार्या है।[२] निषध-देश[३] के राजा नल के शरीर में कलियुग के प्रविष्ट हो जाने से वह धार्मिक आचार-विचारों को छोड़ कर प्रतिकूल आचरण करने लगा,[४] उदाहरणार्थ द्यूत-क्रीड़ा, दासी-प्रसंग, असत्य-भाषण, रात्रि में जागरण तथा दिन में शयन।[५] वह अकारण क्रोध, अन्याय से धनसञ्चय, सज्जनों का अपमान तथा दुष्टों का सम्मान करने लगा।[६] स्मृतिकारों ने लक्ष्मी-पूजा (कार्तिक शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन) के अवसर पर जूआ-खेलने की स्वतन्त्रता दी है।[७] कथासरित्सागर में ऐसा कोई भी विवरण उपलब्ध नहीं है जिसमें द्यूत के उन्मूलन हेतु कोई राजकीय कदम उठाया गया हो। मालव-नरेश श्रीसेन स्वयं अपनी युवावस्था में इस दुर्गुण का शिकार हुआ था, किन्तु अपने व्यक्तिगत कटु अनुभव के उपरान्त भी उसने जुआड़ियों की सुविधा-निमित्त एक विशाल रमणीय द्यूतशाला की स्थापना की थी।[८] इस गर्हित कर्म के राजकीय संरक्षण के पीछे प्रभूत मात्रा में अर्जित राजस्व का लोभ ही रहा होगा।[९] द्यूत के उन्मूलन हेतु गुजरात के शासक कुमार पाल ने सराहनीय कार्य किया था।[१०]

---

१. क० स० सा०, ७४. १४१–२.

२. बाहू प्रावरणं शय्या पांसवश्चत्वरं गृहम्।
भार्या विध्वस्तता धात्रा कितवस्य हि निर्मितम्॥—क० स० सा०, ७३, ७७.

३, नैषधोऽस्ति नलो नाम राजा—वही, ५५, २४४.

४. तेन देहप्रविष्टेन कलिना स नलो नृपः।
विहाय धर्म्यमाचारमाचचार यथारुचि॥—वही, ५५, २९०.

५. अक्षैरदीव्यद्दासीभिररंस्तासत्यमब्रवीत्।
असेवत दिवा स्वपनं स जजागार रात्रिषु॥ वही, ५५, २९१.

६. चकाराकारणं कोपमन्यायेनार्थमाददे।
अवमानं सतां चक्रे सम्मानमसतां च सः॥—वही, ५५, २९२.
तुलनार्हः—कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः। वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु॥
मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥ मनुस्मृति, अध्याय ७, श्लोक ४६-७.

७. नियतकालकाण्ड, पृ० ४२२.

८. क० स० सा०, ७३, १८९–९०.

९. अर्थशास्त्र, ३, २०.

१०. हेमचन्द्र, महावीरचरित, श्लोक ९८.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



**मल्ल-कला**—मल्ल भारत की प्राचीन कला है। आज भी किसी रूप में मल्लकला भारत में सुरक्षित है। कथासरित्सागर की सूचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज में कुशल मल्लों का सम्मानित स्थान था।[१] मल्ल-द्वन्द्व को नागरिक उत्साह से देखते थे। लँगोट सम्भवतः अखाड़े में बाँधने की परम्परा रही होगी।[२] मल्ल-युद्ध की तकनीकी शब्दावली में 'कृतदाव' मारने को और 'प्रतिकृत' उसे काट देने को कहते थे। कथासरित्सागर में वाराणसी को मल्ल-विद्या के एक प्रसिद्ध केन्द्र के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।[३] आज भी वाराणसी ने अपनी इस प्राचीन परम्परा को असाधारण रूप से सुरक्षित रखा है। उक्त ग्रन्थ में मल्ल अशोकदत्त का उल्लेख हुआ है। अभ्यास के माध्यम से यह इस विद्या में बहुत कुशल हो गया। इस प्रकार दूसरे पहलवान को जीतना दुष्कर हो गया था। एक बार किसी देवयात्रा के मेले के अवसर पर दक्षिण देश का एक विख्यात मल्ल वाराणसी आया और उसने काशिराज प्रतापमुकुट के सभी पहलवानों को उनके सामने ही पछाड़ दिया। अशोकदत्त को देखते ही वह दक्षिणी मल्ल हाथ से भुजाओं पर ताल ठोंकता हुआ अखाड़े में आया। अशोकदत्त ने उस मल्ल का हाथ मरोड़ कर उसे पटक दिया। इस पर काशिराज प्रताप मुकुट ने प्रसन्न होकर उसे रत्नों से लाद दिया।[४]

**नट**—सोमदेव की पैनी दृष्टि ने ग्रामवासियों के मनोरञ्जन का भी उल्लेख किया है। ग्रामों में भिल्ल ( भील ) तथा नट कलाबाजी एवं चमत्कार-प्रदर्शन द्वारा ग्रामीणों का मनोविनोद करते थे।[५]

**जल-क्रीड़ा**—विलासी श्रीमानों के मनोविनोदों में सुन्दरियों के साथ जल-संतरण उल्लेखनीय है। नन्दन-वन में महेन्द्र के समान बहुत काल तक अपनी रानियों से विहार करता हुआ सातवाहन राजा बावली के जल में जल-क्रीड़ा के निमित्त उतरा।[६] जल के फेनिल छींटों से वह राजा रानियों को सिञ्चित करने लगा। रानियाँ भी उसे इस प्रकार सींचने लगीं जैसे हथिनियाँ हाथी को सींचती हैं।[७] जल-क्रीड़ा में रानियों के काजल धुल जाने पर लाल नेत्रों से और पानी से वस्त्रों के अंगों में चिपक जाने में कारण स्पष्ट झाँकते हुए शरीर के भिन्न अवयवों से वे राजा का अनुरञ्जन करने लगीं।[८] वायु के समान राजा ने उन प्रियतमाओं को वन की लताओं के समान कर दिया (वायु, अरण्य में लताओं के पत्र-रूपी तिलक को हटा देता है और पुष्परूपी आभरणों से रहित कर देता है)। उसी प्रकार राजा ने रानियों के पत्रावली-रूपी तिलक को पानी के

---

१. क० स० सा०, ४५, ११९–२६
२. हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत के कलात्मक मनोविनोद, पृ० १६९
३. क० स० सा०, ४५, १२६
४. क० स० सा०, ४५, ११९–२६.
५. क० स० सा०, ६२,२१०–४.
६. वही, ६, १०९.
७. क० स० सा०, वही, ६, ११०,
८. वही, ६, १११–१३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



छीटों की बौछार से धो डाला और पुष्प के समान शोभित उनके आभरणों को उतरवा डाला। विदर्भ-देश के राजा भीम की कन्या दमयन्ती[१] जलक्रीड़ा के लिए तालाब में उतरी।[२] वहाँ उसने राजहंस को देखकर लीलापूर्वक साथ फेंकें हुए अपने दुपट्टे से उसे बाँध लिया।[३]

**विहार**—नागरक अपने नगर-जीवन की शहरी सभ्यता से ऊब कर भ्रमणार्थ विहार को जाते थे। वात्स्यायन ने उद्यानगमन को उद्यान-यात्रा कहा है। कामसूत्र में विभिन्न प्रकार के आभूषणों से अलंकृत (स्वलंकृताः) तथा घोड़े पर चढ़कर (तुरगाधिरूढाः) उद्यानयात्रा के लिए प्रस्तुत नागरिकों का उल्लेख किया है।[४] उद्यानों में फूली हुई लताओं से आच्छादित तरु-समूह प्रियाओं से आलिंगित सुभग जनों की भाँति शोभित हो रहे थे। वहाँ पवनान्दोलित मञ्जरियों से सुशोभित आम के तरु सुजनों की भाँति प्रेमालाप करते प्रतीत होते हैं। पुष्प और फल-भार से समृद्ध वृक्ष-समूह उन सज्जनों की भाँति लग रहे थे जो अपना सर्वस्व दूसरों को देने में प्रसन्न बने रहते हैं। अमृत वल्लरियों पर बैठे हुए भ्रमर हवा द्वारा हिलाई लताओं पर इस प्रकार नाँच रहे थे मानों प्रियतमा के साहचर्य से मदमत्त प्रेमी जन हों। ऐसे उद्यानों में जाकर स्त्री और पुरुष अपना मनोविनोद करते थे।

**सङ्गीत**—इसका प्रचार नागरिकों में विशेष रूप से था। सङ्गीत में गीत के साथ वाद्य का सामञ्जस्य रहता था।[५] वात्स्यायन ने वीणा को प्रियतमा को आकर्षित करने का मूल मन्त्र कहा है।[६] सङ्गीत के माध्यम से धनी वर्ग अपना मनोरञ्जन करता था। वसन्तसेना की सङ्गीतशाला में युवतियों के कोमलकरों से बजाये जाते हुए मृदङ्ग मेघ के समान गम्भीर शब्द कर रहे थे।[७]

कथासरित्सागर में गुरु (उदयन) की आज्ञा से वासवदत्ता सङ्गीतशाला[८] से सरस्वती पूजन की सामग्री लेने चली गयी।[९] इस महत्त्वपूर्ण सूचना के आधार पर कहा जा सकता है कि सङ्गीत में सरस्वती की आराधना की जाती थी। अभिजात कुलों में सङ्गीत-शिक्षा योग्य गान्धर्व शिक्षकों द्वारा दी जाती थी।[१०] आलोच्य ग्रन्थ में चण्डमहासेन ने अपनी पुत्री वासवदत्ता को संगीत-शिक्षा के लिए उदयन को सौंप दिया था।[११] गन्धर्वशाला में वत्सेश्वर के सम्मुख अङ्क में घोषवती वीणा, कंठ में संगीत का

---

१. क० स० सा०, ५५, २३९. २. वही, ५५, २४१. ३. वही, ५५, २४९.
४. कामसूत्र, ४०–१. ५. क० स० सा०, २१, ४. ६. कामसूत्र, ४३.
७. मृच्छकटिक, अङ्क ४. ८. क० स० सा०, १२, ६१-६२
९. वही, १२, ६१-६२. १०. वही, १२, २७.
११. वत्सराजाय गान्धर्वशिक्षाहेतोः समर्थयत्—क० स० सा०, १२, ५७.
तत्र गान्धर्वशालायां वत्सराज उवास सः—क० स० सा०, १२, ३१.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



स्वर और आँखों के सामने वासवदत्ता रहती थी।[१] उदयन वीणा बजाता हुआ रानी वासवदत्ता और पद्मावती के साथ संगीत का सेवन करता था।[२] वासवदत्ता के मधुर संगीत स्वर की एकता ( समता ) होने पर बजाने के लिए चलते हुए अँगूठे से ही दोनों का भेद लक्षित होता था। गायन और वादन का स्वर एक साथ मिलने पर यह प्रतीत नहीं होता था कि रानी गा रही है या वीणा बज रही है।[३]

**चित्राङ्कन**—कथासरित्सागर में चित्राङ्कन के माध्यम से सभ्य स्त्रियों के मनोरञ्जन का उल्लेख मिलता है।[४] इसकी शिक्षा देने वाले आचार्य हुआ करते थे।[५] इसका ज्ञान सभ्य नागरिक का लक्षण माना जाता था। वात्स्यायन ने चौंसठ कलाओं में इसकी गणना की है।[६] कथासरित्सागर में चित्र-सम्बन्धी विवरणों से प्रतीत होता है कि चित्रकला उन्नत दशा में थी। नल तथा दमयन्ती सदृश राजकार्यव्यस्त लोग भी चित्र-विद्या में निपुण थे।[७] भित्तियों पर चित्र बनाने की व्यापक प्रथा थी।[८]

सोमदेव ने समकालीन भारत का समृद्ध रूप प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से कथासरित्सागर भारतीय जीवन का चलचित्र है। समकालीन भारत का अति समृद्ध चित्र संस्कृत साहित्य के काव्य, नाटक, चम्पू और कथासाहित्य से प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी सामग्री किसी शिलालेख या ताम्रपत्र में नहीं लिखी गई है। सोमदेव ने कथासरित्सागर में चित्रकला-विषयक सामग्री का ठाट ही खड़ा कर दिया है। आलोच्य ग्रन्थ में चित्र[९], चित्रपट[१०], भित्तिचित्र ( चित्रभित्तिषु )[११], चित्रशाला[१२] तथा चित्रकार[१३] के विषय में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध हैं।

**झूला**—वन, उपवन एवं रम्य स्थलों में प्रेंखादोला ( झूला ) लगाया जाता था।[१४] छायादार स्थलों में विश्राम के लिए स्थंडिल पीठिकाएँ बनी रहती थीं। वहाँ कान्ताएँ श्रम के कारण अपने चञ्चल[१५] नयन-कमल को मुकुलित करती हुई घने पेड़ों

---

१. अङ्के घोषवती तस्य कण्ठे गीतश्रुतिस्तथा।
पुरो वासवदत्ता च तस्थौ चेतोविनोदिनी॥—क० स० सा०, १२, ३२.

२. क० स० सा०, २१, ४. ३. वही, २१, ५.

४. क० स० सा०, ४४, ५२. ५ वही, ४४, ५२. ६. कामसूत्र, पृ० ३२.

७. चित्रकृच्चित्रविद्यायाम्—नल चम्पू, पृ० १९८. वैचित्र्यं चित्रेषु—नल चम्पू, पृ० १७५.

८. क० स० सा०, ६, १२०. वही, १६, २७
धीर्न चित्रीयते कस्मादभित्तौ चित्रकर्मणा—क० स० सा०, ६, ५०.
चारुचित्रफलके निर्वापयन्त्या दृशम्—नलचम्पू, ८, २३,

९. क० स० सा०, १६, २७; ४४, ५२; ४५, १३५; ५०, १२३-३७; ५०, १४०-१५३.

१०. वही, ५४, ४२-३, ५४; ११. वही, ५३, ४०-१; ५४, ७५-७९.

१२. वही, ६६, ६६-७. १३. वही, ६४, ३७.

१४. ' ' स० सा०, ६६ १३८. १५. नलचम्पू, ६, २३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



की छाया का आश्रय लेती थीं। झूले वर्षा-ऋतु में सुहाते थे। वात्स्यायन ने छायादार वृक्षों की घनी छाया में झूला लगाने को कहा है जिससे वर्षा से बचा जा सके तथा साथ ही साथ प्रगाढ़ प्रेमालाप तथा विभिन्न प्रेम-क्रीड़ाएँ निर्विघ्न हो सकें।

**गोष्ठी**—समान विद्या-बुद्धि वाले नागरिकों के जमघट को गोष्ठी कहा जाता था। यहाँ बौद्धिक वाग्विलास द्वारा वे अपना मनोरञ्जन करते थे। गोष्ठी में परिहास-शील[1] तथा कलामर्मज्ञ[2] व्यक्ति ही जम पाते थे।

कथासरित्सागर की सूचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि विद्वानों की गोष्ठी के अतिरिक्त एक अन्य गोष्ठी भी थी। जिसे 'पान गोष्ठी' कहा जाता था। यह आभिजात वर्ग में लोक प्रिय थी। 'पान-गोष्ठी' वर्तमान काल के 'कॉक टेल पार्टी' की भाँति रही होगी।

**पशुपक्षिपालन**—नागरिकों के मनोविनोद का एक अन्य प्रिय साधन पशुपक्षि-पालन था। स्त्रियाँ अपने मनोविनोद के लिए पक्षियों को पालती थीं। किन्तु आलोच्य ग्रन्थ में विरहातुरा मकरन्दिका को उद्यान, संगीत और सहेलियों के बीच में भी शान्ति नहीं मिलती थी। उसे अब पालतू शुकों की भी विनोदपूर्ण वाणियाँ सुहाती नहीं थीं।[3] तोता पिजड़े में पाला जाता था ( पञ्जरास्थिमादाय )। बोलने में प्रवीण शुक एक ओर मनोविनोद का साथी था तो दूसरी ओर रहस्यालाप का दूत भी। वह जहाँ वियोग का एक मात्र सहारा था वहीं वह संयोग का योजक भी था।

संस्कृत साहित्य में कभी मानिनी को हँसा देने के लिए और कभी अज्ञात प्रिय के संदेशवाहक के रूप में अंकित हुआ है।[4] यदि पक्षियों को संस्कृत साहित्य से निकाल दिया जाय तो वह निर्जीव हो जायेगा। कथासरित्सागर में रमणियों के बन्दर पालने का भी उल्लेख हैं।[5]

**खिलौने**—वयस्कों के मनोविनोद के अतिरिक्त सोमदेव की पैनी दृष्टि ने बालकों के मनोरंजन का भी उल्लेख किया है। बालक काष्ठ-निर्मित कठपुतलियों तथा

---

१. अफसढ़ के लेख में कहा गया है कि आदित्य सेन ( उत्तर गुप्त-वंशी मगध नरेश ) गोष्ठियों में काफी परिहासशील था।
गोष्ठीषु पेशलतया परिहासशीलः—अफसढ़ का लेख, पंक्ति, ४४.

२. कामसूत्र, पृ० १८२, सूत्र ५०–१.

३. क० स० सा०, ५५, २४५

४. शुकानामपि सुश्रावणविनोदवतीगिर—क० स० सा०, ५९, १५०.

५. तदेतं मर्कटशिशुं सम्प्रत्येव करोम्यहम्। क० स० सा०, ३७, ११२.
ततः क्रीडानिभादेतं गृहीत्वा मथुरां व्रज, वही, ३७, ११३.
सख्या मह्यं विनोदाय दत्तोऽसावित्यदर्शयत्, वही, ३७, ११७.
अतुष्यत् स च मां दृष्ट्वा क्रीडनीयं तदङ्कगम्, वही, ३७, ११८.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



विविध यन्त्रमय खिलौनों से मनोरंजन करते थे।[1] कथासरित्सागर में सोमप्रभा कलिंग सेना के मनोविनोद के लिए एक डोलची में लकड़ी की पुतलियों तथा नाना प्रकार के यन्त्रमय खिलौने को देते हुए उल्लिखित है।[2]

**गोली**—बालकों के गोली खेलने का भी इसमें उल्लेख प्राप्य है।[3] इससे पता चलता है कि यह उनका प्रिय मनोरंजक रहा होगा।

---

१. ततः सोमप्रभा प्रातस्तविनोदोपपादिनीम्।
न्यस्तदारुमयानेकमायासद्यन्त्रपुत्रिकाम ॥ क० स० सा०, २९, १.

२. करण्डिकां समादाय सा नभस्तलचारिणी। क० स० सा०, २९, २.

३. स जातु गुलिकाक्रीडां कुर्वन् गुलिकाय छलात्, क० स० सा०, ६५, २१७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अध्याय १०

# अन्न-पान

कथासरित्सागर में खान-पान के विषय में महत्त्वपूर्ण उल्लेख प्राप्य हैं। आलोच्य ग्रन्थ में गेहूँ ( गोधूम ) के प्रयोग का उल्लेख निम्न स्तरीय समाज के सन्दर्भ में हुआ है। इससे आभासित होता है कि इस अन्न का उपयोग जनसाधारण में विशेष रूप से होता होगा। उक्त ग्रन्थ में उज्जयिनी के ठिण्ठाकराल का जुए में सर्वस्व हार जाने के बाद सोमदेव ने उसके दैनिक जीवन का वीभत्स रूप प्रस्तुत किया है। द्यूतकरों ने उसकी दयनीय दशा देखकर उसे सौ कार्षापण ( ताँबे के सिक्के ) दिए ( द्यूतकराः कपर्दकशतं ददुः )। उसने उन पणों ( मुद्राओं ) से गोधूम-चूर्ण ( आटा ) क्रय किया तथा उसे महाकाल के श्मशान में जा कर पकाया।[1]

कथासरित्सागर में भक्त का उल्लेख हुआ है[2]। इस शब्द के दो अर्थ थे, एक तो अन्न तथा दूसरा उबला हुआ भात ( उबला हुआ चावल )[3]। पाणिनि ने भी भक्त का उल्लेख इसी संदर्भ में किया है[4]। सम्भवतः सभी उबले हुए चावल को भक्त (भात) कहा जाता रहा होगा। सोमदेव ने चावलों के प्रकार में शालि-भक्त का उल्लेख किया है[5]। शालि जाड़े में होता था। इसको आज जड़हन कहते हैं[6]। इसके खेत को 'शालेय' कहते थे।

आलोच्य ग्रन्थ के अनुशीलन से प्राप्य सूचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चावल का प्रयोग प्रचुर रूप में होता रहा होगा। तत्कालीन मुसलमान यात्रियों ने भी इसको ( चावल ) भारत का प्रमुख भोजन निर्दिष्ट किया है[7]। सुलेमान ने चावल को ही भारतवासियों के मुख्य भोजन के रूप में वर्णित किया है[8]।

---

१. तेनापणात्स गोधूमचूर्णं क्रीत्वा दिनात्यये। चकारापूपिकाः क्वापि मृदित्वा कर्परेऽम्भसा॥
गत्वा श्मशाने पक्त्वा ताश्चिताग्नावेत्य चाग्रतः।
महाकालस्य तद्दीपघृताभ्यक्ता अभक्षयत्॥—क० स० सा०, १२१, ७४–५.

२. भक्तस्यार्धशरावकम्—क० स० सा०, २९-८८.
खादघृतक्षीरशालिभक्तादिभोजनम्—वही, ४३, ५५.
सक्तून् भक्तमपि स्तोकं मांसव्यञ्जनमल्पकम्—वही, ५४, १७१.

३. वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १२५.

४. वही, पृ० ११५. ५. क० स० सा०, ५४, १७१. ६. अग्रवाल, वही, १२१.

७. ऐंशेण्ट एकाउण्ट्स आफ इण्डिया एण्ड चाइना, पृ० ३४. ८. वही, पृ० ३४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



इब्नमसह के अनुसार गुजरात में चावल और गाय का दूध ही मुख्य भोजन था[1]। प्राकृतपिंगल के आधार पर वही व्यक्ति वस्तुतः भाग्यवान् है जिसकी भार्या हरे पत्तलों में गाय के घी के साथ गर्म चावल और हरी सब्जी परोस कर खिलाती हो[2]। हेमचन्द्र ने भी चावल की लोकप्रियता निर्दिष्ट की है[3]।

कथासरित्सागर में अन्नपान के प्रकरण में भोजन, भक्ष्य, लेह, षड्रस और पेय आदि कुछ पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख हुआ है जिनका स्पष्टीकरण आवश्यक है[4]।

( अ ) **भोज्य**—पाणिनि ने 'भोज्यं भक्ष्ये' ( ७. २. ६९. ) सूत्र में भोज्य को भक्ष्य के अर्थ में लिया है[5]। कात्यायन ने इस पर शंका की है। उनके अनुसार भोज्य में ठोस और तरल दोनों प्रकार के खाद्य पदार्थ आते हैं, लेकिन भक्ष्य दाँत से चबाए जाने वाले भोजन के लिए ही है। भोज्य का अर्थ भक्ष्य की अपेक्षा विस्तृत है। दाँत से चबा कर खाए जानेवाले ठोस ( कड़े ) पदार्थ के लिए भोजन शब्द प्रयुक्त हुआ है। काशिका में कड़े भोजन को भक्ष्य कहा गया है ( खरविशदमभ्यवहार्यं भक्ष्यमित्युच्यते )।

**लेह्य**—लेह्य से तात्पर्य लपसी से है जो जनता का प्रिय भोजन था। पाणिनि ने लेह्य के अन्तर्गत 'यवागू' का उल्लेख किया है जिससे अभिप्राय जौ की लपसी से हैं।[6] ( पाणिनि, ४, २, १३६ )।

**षडरस**[7]—इससे तात्पर्य तिक्त ( कड़ुआ ), मधुर ( मीठा ), खट्टा, कषाय ( कसैला ), नमकीन ( लवण ) आदि रसों से है।

**व्यञ्जन**—व्यञ्जन या उपसेचन की मिलावट भोज्य पदार्थ के लिए आवश्यक समझी जाती है। पतञ्जलि ने दधि को व्यञ्जन या उपसेचक द्रव्य कहा है ( दध्ना उपसिक्त ओदनः दध्योदनः )। काशिका में क्षीरोदनः उदाहरण भी निर्दिष्ट है। उक्त ग्रन्थ के अनुसार दही और घी दोनों व्यञ्जन हैं[8]।

**पेय**—पीनें की वस्तुओं को पेय कहते थे। पेय पदार्थों में क्षीर ( दूध ) तथा मदिरा की प्रथा प्रचलित थी।[9]

---

१. सो० इ० हि० ना० ई०, पृ० २५६.
२. वही, पृ० २५६ ३. देशीनाम माला, ६, ४४.
४. 'तत्तन्नानाविधं भक्ष्यभोज्यलेह्यादि षडसम'—क० स० सा० ४५, २३०.
५. अग्रवाल, वा० श०, पाणिनि कालीन भारतवर्ष ११५-६.
६. संदेशरासक ( अपभ्रंश काव्य ) में इसे रब्बड़िया कहा गया है।
प्रथम प्रकम, पद्य १६. डा० अग्रवाल, वही, पृ० १२२.
७. क० स० सा०, ४५, २३० ८. डा० अग्रवाल, वही, पृ० ११८.
९. "क्षीरस्येकं पलं पपौ"—क० स० सा०, ५४, ९७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



**सक्तू** ( सत्तू अथवा सतुआ ) ( पूर्वी उ० प्र० एवं बिहार में प्रचलित शब्द )—

कथासरित्सागर में अर्थवर्मा नामक एक धनाढ्य सेठ का वर्णन है जो मंदाग्नि के कारण अत्यल्प भोजन करता था। वह एक दिन अपने अतिथि यशोवर्मा के साथ दो तोला घृत में सना हुआ सक्तू ( सत्तू ) खा गया[1]। सत्तू नमक के साथ भी खाया जाता था[2]। इसे हल्का किन्तु पूर्ण भोजन माना जाता था[3]। एक कथा में सुदूर-गामी ब्राह्मण की भार्या ने उसे ( अपने पति को ) पाथेय के रूप में सत्तू दिया था[4]। सत्तू पाथेय के रूप में लोकप्रिय भोजन रहा होगा। भुने सत्तू के लिए मन्थ शब्द का भी प्रयोग मिलता है। इसे दूध में मिलाकर या केवल पानी में घोल कर खाते थे। पानी में घुले सत्तू को 'उदक-मन्थ' कहा जाता था[5]।

सत्तू प्राचीन भारत का लोकप्रिय भोजन रहा होगा। अथर्ववेद की परीक्षित गाथाओं में आया है। राजा परीक्षित के राज्य में पत्नी पति से पूछती है 'आप के लिए क्या लाउँ, दही, दूधिया सत्तू ( मन्थ ) या जौ से चुआ हुआ रस'। इसे थोड़े घी में सानकर ठंडा जल मिलाकर मथानी से मथकर मन्थ बनाया जाता था[6]।

**कृसर**—आलोच्य ग्रन्थ में कृसर ( खिचड़ी ) का उल्लेख भक्ष्य के संदर्भ में हुआ है[7]। इसे नागरक चाव से खाता था। प्रायः जिस दिन जो अन्न खाया जाता था उस अन्न विशेष से उस दिन का नाम पड़ जाना स्वाभाविक है। लोक में खिचड़ी-तिलवा, सतुआन आदि पर्वों का नामकरण सम्भवतः इसी नियम के आधार पर हुआ होगा[8]।

**शाक**—भोजन के अन्य खाद्य पदार्थों में सोमदेव ने शाक-भाजी का उल्लेख किया है। शाक में कटहल[9] और मूलक ( मूली[10] ) का उल्लेख हुआ है। कथा-सरित्सागर के परिशीलन से यह आभासित होता है कि मालवा की मूलियाँ सुप्रसिद्ध रही होगीं[11]। उक्त ग्रन्थ में सुन्दरक को मालवा के राजसेवक ( सिपाही ) कान्यकुब्ज ( कन्नौज ) के हाट में मालवा की मूली बेचने के अपराध में राजा के समीप ले गए[12]।

आलोच्य ग्रन्थ में उल्लिखित हर्म्य ( घर ) के निकट शाकवाट ( सागबाड़ा ) की

---

१. क० स० सा०, ५४, १७१-४. २. वही, ६५, १४१. ३. वही, ६२, १०६.
४. सुत्त भस्त जातक, ४०२. मोहन लाल महतो, जातक कालीन भारतीय संस्कृति, पृ० २१०.
५. अग्रवाल, वही, पृ० १२३. ६. वही, पृ० १२३.
७. कृसरं ब्राह्मणकृते पर्वण्यद्य पचेति—क० स० सा०, ६१, ९९.
८. अग्रवाल, वही, पृ० १२५. ९. क० स० सा०, ४२, २२४.
१०. वही, २०. १४३; १६३, १६६, १६८, ११. वही, २०, १६८.
१२. क० स० सा०, २०, १६८.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



सूचना महत्त्वपूर्ण है[1]। घर के सन्निकट शाकवाटिका से ज्ञात होता है कि हर्म्य के पास नागरक अपने दैनिक उपयोग की वस्तुएँ उपजाते थे। कथासरित्सागर में उज्जयिनी के शाकवाट से सुन्दरक ने मूलकों ( मूलियों ) को उखाड़ा था[2]। इस सूचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आज-कल के लोकप्रिय 'किचेन गार्डन' की उपयोगिता से सोमदेव का समाज भली-भाँति अवगत था। ककड़ी, कन्द, कुटल, कूष्माण्ड, गोलकद्दू, एरण्ड, पुनर्नवा, मूलियाँ, प्याज, बथुआ, जीवन्तिका ( पोय ) और सरसों के उपजाने की सूचना त्रिविक्रमभट्ट के नलचम्पू से प्राप्त होती है। कद्दू नीचे की ओर बैठता, केवल लतिका ऊपर की ओर दीखती है। कूष्माण्ड की लता को लोग घरों पर चढ़ा देते थे या बाँस की टाटी लगा कर चढ़ाते थे। गोल कद्दू उनका प्रिय शाक था। सरसों को सींचने के लिए पूरे खेत में क्यारियाँ बनाते थे। शाकवाटिका की सिंचाई नहरों से होती थी[3]।

**फल**—आलोच्य ग्रन्थ में सुस्वादु मीठे फलों के विषय में सूचना प्राप्त होती है। फलों में आम्र ( आम ), दाडिम, ( अनार ) इत्यादि प्रमुख हैं। नरवाहनदत्त ने सायंकाल एक सुन्दर सरोवर को देखा जो मधुर शब्द करते हुए हंसों से मुखरित हो रहा था। इसका जल अमृततुल्य मधुर और तृप्तिकारक था। इसके रमणीय तट पर आम, अनार और कटहल फल-भार से नम्र (झुके) थे। उसने सरोवर में स्नान कर मार्ग की थकावट को दूर किया और सुगन्धित मीठे एवं तृप्तिकारक फलों का आहार किया।[4] तत्कालीन समाज में फलों का विशिष्ट महत्त्व था। दैनिक जीवन में इनका उपयोग किया जाता था। सोमदेव ने नगरीय फलों के अतिरिक्त कतिपय जंगली फलों का भी उल्लेख किया है। इनका उपयोग ऋषि-महर्षि, अरण्यवासी तथा जंगली जातियाँ—यथा शबर एवं पुलिन्द जातियाँ करती थीं।[5] ऐसे फलों में मूल फल ( कन्दमूल ) प्रमुख था।[6] व्याकरण की दृष्टि से फल का नाम वृक्ष के नाम के अनुसार होता था।[6]

**क्षीर**—क्षीर ( खीर ) उस समय का पूर्ण तथा लोकप्रिय भोजन था। कथासरित्सागर में एक कंजूस बनिये की कथा है जिसने खीर न खिलाने के स्थान पर अपनी जान दे डालना उचित समझा।[7] दूध में गुड़ ( शक्कर ) डालकर चावल के साथ खीर बनाते थे।[8]

---

१. तत्रावतार्यहर्म्यं सा मन्त्रतः शाकवाटके—वही, २०, १४२.
तत्क्षणं च क्षुधाक्रान्तः शाकवाटेऽवतीर्यसः।
तत्र सुन्दरकश्चक्रे वृत्तिमुत्खातमूलकैः॥ वही, २०, १४३.

२. नलचम्पू, छठा उच्छ्वास, पृ० ३८८. ( चौखम्भा प्रकाशन ).

३. क० स० सा०, ४२,२२४-५. ४. क० स० सा०, ६४,२४. ५. वही, ५२,२४३.

६. फले लुक्, अष्टाध्यायी, ४।३।१६३. अग्रवाल, वही, पृ० १२७.

७. क० स० सा०, ६५,१४९–५०. ८. वही, ४९,१४७,४३,५५–६.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



उक्त ग्रन्थ में दूध के अन्य विकारों में दही[1] तथा घृत[2] का उल्लेख प्राप्य है।

**मिश्रीकरण**—ठोस पदार्थों में गुड़, घी तथा अन्य द्रव यथारुचि मिलाते थे। दोनों समान महत्त्व रखते हैं और इनका मिलाना ऐच्छिक होता है। इसे मिश्रीकरण कहते हैं। कथासरित्सागर में तिल और यव का उल्लेख प्राप्य है।[3] काशिका में गुड़, घी और तिल को मिश्रण योग्य माना है।[4] मिश्रीकरण द्रव्य की मिलावट खाने वाले की इच्छा पर निर्भर रहा होगा।

**मिष्टान्न**—कथासरित्सागर में मिष्ठान्न का उल्लेख प्राप्य है। इस सन्दर्भ में 'मोदक' का नाम बहुधा आया है। सोमदेव ने एक कथा में मठाधीशों को पकवान के साथ मोदक को खाते हुए वर्णित किया है।[5] आलोच्य ग्रन्थ में शब्दशास्त्रविदा रानी ने 'मा' शब्द और 'उदक' शब्द की सन्धि न जानने वाले सातवाहन नरेश को जलक्रीड़ा के समय बहुत से मोदकों ( लड्डू ) को मँगवाने पर फटकारा था।[6] कालिदास ने मोदक को चन्द्रमा की भाँति गोल निरूपित किया है।[7] अपूपिका ( मालपुआ ) का उल्लेख इस ग्रन्थ में हुआ है।[8] इसमें नाना प्रकार के मेवों को भरकर इसे सुस्वादु बनाया जाता था। यह भारत का सबसे प्राचीन मिष्टान्न था।[9] आटें में पानी घी मिलाकर या घी में फेंट कर मद्धिम आँच में उतारे हुए पुए को ऋग्वेद में भी 'अपूप' ही कहा गया है।[10] महाउम्मग जातक की एक कथा में पूआ खाने की इच्छा एक कंजूस को सताने लगी थी। अपूप का उल्लेख पाणिनी ने भी किया है।[11] कथासरित्सागर में किसी बटोही ने आठ अपूप ( पूए ) खरीदे। उनमें से छह पूए खा लेने तक उसका पेट न भरा, किन्तु सातवाँ पूआ खाते ही उसका पेट भर गया। यह देख कर वह चिल्लाने लगा कि 'हाय, मैं लुट गया। यदि मैं इस सातवें पूए को पहले ही खा जाता तो, बाकी पूए बेकार न होते। इसी एक से ही पेट भर जाता। यह अपूपमुग्धकथा ( अपूपमुग्ध की कथा ) के रूप में उल्लिखित है। कथासरित्सागर में छोटी कहानियाँ बड़ी कथाओं के सम्पुट में कटहल के कोयों की तरह भरी हुई हैं। सोमदेव ने वर्णन के बीच में अनेक छोटी हास्य कथाएँ डाल दी हैं। आलोच्य ग्रन्थ में इस प्रकार हास्य कथाओं की छौंक ने कथासरित्सागर के वर्ण्य-विषय के स्वाद को बढ़ा दिया है।

**मांस**—आलोच्य ग्रन्थ में मांस खाने का उल्लेख हुआ है। उक्त ग्रन्थ में अर्थवर्मा ने अपने अतिथि ( यशोवर्मा ) के सत्कार में घी, मांस, भात, सत्तू तथा नाना प्रकार के

---

१. वही, ५४,१७०. २. वही, ५४,१७१–७.
३. क० स० सा०, ६१.१०५–६. ४. ६,२.१५४. अग्रवाल, वही, पृ० ११६–७
५. क० स० सा०, ६५, १८६. ६. वही, ६, ११५.
७. विक्रमोर्वशीयम्, अंक ३, ( पृ० १९७ )
८. क० स० सा०, ६२, २०४-६. ९. अग्रवाल, वही, पृ०१२३-
१०. ऋग्वेद १०. ४५. ९; अग्रवाल, वही, पृ० १२३. ११. ५. १. ४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



व्यंजनों से समन्वित भोग का निमन्त्रण (न्यमन्त्र्यत) दिया।[1] मांस-रस के साथ (मांसौदन) भात अधिक खाया जाता था।[2]

मांस आखेट के अतिरिक्त बाजार तथा हाट में खुला बिकता था।[3] वाराणसी नगर के बाहर चत्वर पर मृग-मांस की दूकानें थीं। ऐसी दूकानों के ऊपर गीध मंडराते रहते थे। क० स० सा० में मांस बेंचकर जीवन-निर्वाह करने वाले को व्याध कहा गया है। उक्त ग्रन्थ में एक धर्मव्याध ने कहा—मैं दूसरों के मारे हुए पशुओं का मांस अपनी आजीविका के लिए बेचता हूँ। यह कार्य भी अपना धर्म (कर्तव्य) समझकर करता हूँ, धन कमाने के लिए नहीं।[4] चाण्डाल और बहेलिये गो-माँस भी खाते थे।[5] कोल-भील भैंसा भी खा जाते थे।[6] साधारणतः बकरे का माँस अधिक प्रचलित था।[7]

घृतप्रचुर भोजन के बाद हाथों की चिकनाहट को हटाने के लिए चन्दन की धूल (सन्डल डस्ट) हाथों पर लगाई जाती थी।[8] इसके बाद ताम्बूल दिया जाता था। उक्त ग्रन्थ में नागवासुकि का बड़ा भाई वसुनेमि उदयन के सम्मुख खड़ा होकर कहा—तुमने मेरी रक्षा की है, अतः मुझसे अत्यन्त रमणीय स्वरवाली और श्रुतिमार्गों से विभक्त यह वीणा ग्रहण करो। साथ ही, कभी न कुम्हलाने वाली यह माला तथा तिलक-युक्ति के साथ कभी न सूखने वाली यह पान की लता ग्रहण करो।[9] बृहत्कथा की उत्तरकालीन वाचनाओं की निर्दिष्ट सूचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पान का प्रयोग नाग जाति से सीखा होगा।[10] संस्कृत में पान को सम्भवतः इसीलिए नागवल्ली भी कहा जाता है।[11] कपूर आदि के सुयोग से ताम्बूल बीटक (बीड़ा) को भरसक सुगन्धित बनाने की चेष्टा की जाती थी। इससे मुख सुगन्धित और कान्तिमय हो जाता था।[12] स्वच्छ जल से धुले अंग, ताम्बूलद्युति से जगमगाते होठ और विमल हल्की सी महीन शाटकं (साड़ी)—यही तो विलासिनियों का वास्तविक शृंगार था। दशकुमारचरित में राजकुमार नागदत्त ने राजकन्या अंबालिका के घर चोरी-चोरी पहुँचकर उसका और अपना चित्र अङ्कित किया था। सफेद दीवार पर इस सफाई से पीक फेंकी थी कि उससे चक्रवाक के जोड़े बन गए थे।[13]

---

१. क० स० सा०, ५४, १६९. २. क० स० सा०, ५४, १८०-२.
३. वही, ५६, १८, १८३, १८४, १८५. १८६, १९१, १९२.
४. क० स० सा०, ५५, १८८. ५. वही, २६, १५८-९. ६. वही, २६, १५८;९.
७. वही, ६२, ६८. ८. नलचम्पू, सातवाँ उ०, श्लो० १३.
९. ताम्बूलीश्च सहाम्लानमालातिलकयुक्तिभिः—क० स० सा०, ९, ८१.
१०. बृहत्कथा-श्लोकसंग्रह, ६-१२.
११. विश्वभारती पत्रिका, खण्ड ४, पृ० १६४-५.
१२. बृ० सं०, ७७, ३४-५. १३. दशकुमारचरित., उत्तरपीठिका, द्वितीयोच्छ्वास, ६६.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



**आहार-भूमि**—कथासरित्सागर में महानस (भोजनालय) के लिए 'आहार-भूमि' का शब्द का प्रयोग हुआ है[१]। उक्त ग्रन्थ की निर्दिष्ट सूचना से पता चलता है कि भोजन आहार-मण्डप ( रसोई-घर ) में खाने की परम्परा रही होगी।

**निमन्त्रण**—आलोच्य ग्रन्थ में निमंत्रण शब्द उल्लिखित है।[२] यह उस प्रकार का नेवता था, जिसे स्वीकार करना निमन्त्रित व्यक्ति के लिए आवश्यक हो जाता था;[३] जैसे हव्य या कव्य, अर्थात् यज्ञ और श्राद्ध में ब्राह्मणों को दिया हुआ नेवता। आमन्त्रण की स्वीकृति आमन्त्रित व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर रहती थी। कथासरित्सागर में अर्थ-वर्मा ने भोगवर्मा का आतिथ्य-सत्कार करके उसे भोजन के लिए निमन्त्रण दिया था[४]। भोगवर्मा द्वारा समुचित सत्कार किया गया यशोवर्मा भोगवर्मा से भोजन के लिए निमन्त्रित हुआ[५]। इस विधि निमंत्रित व्यक्ति को उक्त ग्रन्थ में 'पाघुण' कहा गया है[६]। पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार में कथासरित्सागर में प्रयुक्त 'पाघुण' शब्द के लिए 'पाहुन' ( पहुना ) शब्द आज भी लोकप्रिय है।

**मद्य-पान**—कथासरित्सागर से तत्कालीन समाज में मदिरा-पान की लोकप्रियता का पता चलता है। मदिरा मादक पेय पदार्थ था। साधारणतः यह श्रीमानों के भोग-विलास की सहचरी थी। इसको काम-क्रीड़ा के सहायकों में प्रमुख माना गया है। उक्त ग्रन्थ में एक स्थान पर मद्य को देवता का प्रसाद बताकर महावत को खूब पिला दिया गया है[७]। अतिशय मदिरा पिला कर लोग भेद लेते थे[८]। देवस्मिता ने दुष्ट कुट्टनी को धतूरा मिला हुआ मद्य पिलाया था[९]। अधिक मद्यपान से सिर में वेदना होने लगती थी[१०]। सुखी राजा की रसना सदा मद्य में निरत रहती थी[११]। पुरुषों के अतिरिक्त सुन्दरियाँ भी मदिरा पीती थीं[१२]। उदयन अपने महल में, रति और प्रीति के मध्य कामदेव के समान पान-लीला में राजकार्य से बचे हुए दिन को व्यतीत करता था[१३]। वह प्यालों में अनवरत धारा से गिरते हुए मद्य का शत्रुओं के मद के समान पान करता था[१४]। ज्योत्सना—धवल प्रासाद के बारामदे ( हर्म्याग्रे ) में बैठे हुए राजा के लिए सुन्दरियाँ स्वर्ण-मद्य कलशों में राग से उज्ज्वल मधु को ऐसा पहुँचा रहीं थीं, मानों कामदेव के राज्यभिषेक के लिए स्वर्ण के कलशों में तीर्थों का जल लाया गया हो[१५]।

---

१. क० स० सा०, ५९, १०२.
२. क० स० सा०, ५४, १६९, १८८,
३. अग्रवाल, वही, पृ० १२९.
४. क० स० सा०, ५४. १६९.
५. वही, ५४, १८८.
६. वही, ५४, १९५-६.
७. वही, १३, १५.
८. वही, १३, ८५.
९. वही, १३, १५९.
१०. वही, १३, १५२.
११. वही, १४, ९०.
१२. वही, १७. ११४.
१३. वही, १८, २७.
१४. वही, २२, ६.
१५. वही, २१, ७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



वह नरेश ( उदयन ) रानियों के बीच-बैठकर रानियों के मुखों से प्रतिबिम्बित आसव का प्रेमपूर्वक पान करता था[१]। ईर्ष्या और क्रोध के बिना भी ( मद्य के नशे में ) टेढ़ी भौहोंवाली एवं प्रेमपूर्ण रानियों के मुखों को निरन्तर देखते हुए राजा को तृप्ति नहीं होती थी[२]। सुरापूर्ण स्फटिक के अनेक चषकों (प्यालों) से भरी हुई राजा की पानभूमि, प्रभात कालीन सूर्य की लाल किरणों से रक्त और श्वेत कमलों से युक्त कमल-लता के समान सुशोभित हो रही थी[३]। विशेष अवसरों पर घर की स्त्रियाँ भी मदिरा पी लेती थीं[४]। महाराज उदयन अपनी प्रिय भार्या वासवदत्ता के साथ भोजन और आसव पी कर सो जाता था[५]। आलोच्य ग्रन्थ में मदनमाला वेश्या ने पान ( मदिरा-पान ), संगीत आदि से दिन भर राजा के चित्त का अनुरंजन किया था[६]। उक्त नरेश ने आयशोलेखा रानी को प्रणय-व्यापार में अधिक मदिरा पिला दी थी[७]।

कथासरित्सागर से संग्रहीत सूचना के आधार पर कहा जा सकता है कि दिवस-वेला में मदिरा पीकर जाना वर्जित समझा जाता था। इसी लिए गोमुख ने यौगन्धरायण के पुत्र का मजाक उड़ाया था[८]। आलोच्य ग्रन्थ से प्राप्त सूचनाओं के अनुसार आभिजात वर्ग में पत्नी एवं मित्रों के साथ मदिरा पी जाती थी[९]। नरेश पान-गोष्ठी प्रायः अपने मन्त्रिमण्डल के साथ ही करता था[१०]।

मधु-पान की परम्परा स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष-वर्ग में अधिक प्रचलित थी। रति-प्रसंग में कालिदास ने इसका महत्त्व निर्दिष्ट किया है[११]। मालविकाग्निमित्रम् में इरावती निपुणिका से कहती है कि मदिरा पीने से स्त्रियाँ बहुत सुन्दर लगने लगती हैं[१२]। इरावती को मद इतना चढ़ गया था कि वह आर्यपुत्र को देखने की अकुलाहट होने पर भी उसके पैर आगे नहीं बढ़ रहे थे[१३]। मद के कारण उनकी आँखें झूँमने लगती थीं तथा वाणी की गति स्खलित हो जाती थी[१४]। स्त्रियाँ मुख को सुवासित करने के लिए भी मधुपान करती थीं[१५]।

पुरुष मनोरञ्जनार्थ आसव-पान करते थे। सुन्दरी के पिये शेष मधु को उसी पात्र में पीना, अपने मुख में मदिरा भर कर प्रिया के मुख में डालना आदि क्रियाओं को

---

१. क० स० सा०, २१, ८.
२. वही, २१, ९.
३. वही, २१, १०
४. वही, १७, ११४
५. वही, २१, ६–७.
६. वही, ३८, ३३,
७. वही, ३९, २०७.
८. वही, ४०, ४
९. वही, ४०, ११६.
१०. वही, ४४, ५१. ५१. २.
११. रघुवंश, ९, ३६.
१२. माल०, अंक ३, पृ ३०१.
१३. वही, पृ० ३०१.
१४. कुमार०, ४, १२,
१५. ऋतु०, १.३; ४, १२; ५, १०.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



रति-प्रसंग का प्रारम्भिक सोपान समझा गया है[1]। बहुत चाव से स्त्रियाँ ऐसा मधु चाहती थीं और पुरुष भी वकुलदोहद की भाँति स्त्री-मुख-मधु के लिए लालायित रहते थे[2]। समीक्ष्य ग्रन्थ में मद्यपान से उन्मत्त कामान्ध स्त्री को विवेकहीन निर्दिष्ट किया गया है। कथासरित्सागर इस प्रकार के दूषण-स्त्री-चरित-सम्बन्धी कथाओं का बृहत कोश ही है।

समकालीन अभिलेखों से यह बात सुस्पष्ट हो जाती है कि उक्त समाज में मद्य-पान की परम्परा बहुप्रचलित रही होगी। ९ वीं शताब्दी के जोधपुर के अभिलेख से पता चलता है कि क्षत्रिय आसव-पान के अभ्यस्त थे। प्रतीहार नरेश हरिश्चन्द्र के पुत्र को मद्यप के रूप में चित्रित किया गया है[3]। इसी राज्य-वंश के दूसरे अभिलेख में परिवार की स्त्रियों के मधु-पान का उल्लेख है[4]। आलोच्य ग्रन्थ की निर्दिष्ट सूचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज का क्षत्रिय-वर्ग मदिरा का विशेष प्रेमी रहा होगा।

कथासरित्सागर में श्रीमानों के मदिरा चषक ( पेय पात्र ) स्वर्णनिर्मित एवं रत्न खचित होने की सूचना मिलती है ( विचित्रैर्मणिभाजन )[5]। सोमदेव ने वत्स नरेश उदयन के अनेक स्फटिक के चषक का उल्लेख किया है[6]। धनाढ्य के यहाँ मदिरा स्वर्णकलश में रक्खी रहती थी[7]।

**पानभूः**—सोमदेव ने 'पानभूः' का उल्लेख किया है[8]। यह पानभूमि (मदिरालय) रहा होगा। आधुनिक युग के बार ( मदिरालय ) की भाँति प्रारम्भिक मध्य युग में भी 'पान-भूमि' रहे होगें। श्रीमानों के यहाँ आज के आभिजात घरों में एक पान-कक्ष ही अलग रहता होगा जिसमें नाना प्रकार की मदिराएं एवं चषक करीने से सजे रहते थे। यहाँ नागरक अपने विश्वस्त अन्तरंग मित्रों के साथ मदिरा पीता था। उदयन की पान-भूमि अनेक सुरापूर्ण स्फटिक के प्यालों से भरी हुई थी[9]।

---

१. कुमार०, ३. ३६–७. २. रघु०, ८, ६८; १९, १२.
३. ए० इ०, जि० १८, पृ० ९५ ४. वही, जि० १८, पृ० १०८.
५. विचित्ररत्नचषक—क० स० सा०, ११०, १२५. वही, ४५. १३१.
६. स्फटिकानेकचषका, क० स० सा० २१, १०. ७. क० सा० सा०, २१, ७.
८. वही, २१, १०. ९. वही, २१, १०.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

## अध्याय ११

# भूगोल

सुरम्य हिरण्यबाहु कश्मीर के विलक्षण प्रतिभासम्पन्न, कल्पनाशील, मेधावी, तत्त्वेक्षि चक्षु वाले सम्पन्न महान पृथ्वीपुत्र सोमदेव के आख्यान अत्यन्त सजीव और रोचक हैं। इनकी प्रवाहमयी संस्कृत-शैली से ग्रन्थ का रूप छीज कर बिखर नहीं पाया है। लेखक ने यथार्थ ही इसे कथा-रूपी नदियों का सागर कहा है। कथा-तुल्य नदियों की एक सौ चौबीस तरंगों में समस्त प्रारम्भिक मध्य युगीन भारत का नयनाभिरामचित्र बड़े करीने से कथासरित्सागर में सजा है[1]।

आलोच्य ग्रन्थ में प्राप्य भौगोलिक सामग्री प्रारम्भिक मध्य कालीन भारतीय इतिहास के लिए उपयोगी होगी। उक्त ग्रन्थ के अनुशीलन से सोमदेव के बृहत्-भौगोलिक आयाम की सूचना मिलती है। उसके विस्तृत अन्वेक्षणीय भौगोलिक पटल पर देश-विदेश, प्रदेश, द्वीपान्तर-सन्निवेश, तीर्थ, जनपद, नगर, ग्राम, पर्वत, शृङ्खलाएँ, अरण्य, रत्नाकर, नदी—सम्बन्धित अनेक नाम और शब्द आए हैं। कथासरित्सागर की बृहत् मञ्जूषा में फारस ( पारसीक ) से लेकर कलिंग एवं कामरूप तक, तथा काश्मीर से लेकर सिंहल तक के विस्तृत भौगोलिक क्षेत्रों के स्थान-नाम पाए जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जीवन के व्यावहारिक संदर्भ में देश के चारो कोनों का आपस में घना सम्बन्ध था। सोमदेव को इन प्रदेशों के विषय में अच्छी जानकारी रही होगी। कथासरित्सागर से भारत के विशाल भौगोलिक क्षितिज का परिचय प्राप्त होता है। उक्त ग्रन्थ में आए हुए भौगोलिक नामों को अकारादि क्रम में रख कर विवेचना की गई है।

कथासरित्सागर में प्राप्य स्थलों का नामकरण कुछ निश्चित नियमों के आधार पर हुआ है :—

१. स्थान नाम के अन्त में जुड़ने वाले शब्द जैसे पुर, नगर, ग्राम आदि।

२. नगर तथा ग्रामों के नाम निश्चित नियमों पर बनते हैं। पाणिनि ने इसका निर्देश अष्टाध्यायी में किया है[2]।

---

१. लेखक के इस मत का समर्थन प्रसिद्ध रूसी पुराविद् डॉ० आइगर डी० सेरीब्रेकोव ने अपने एक पत्र में किया है।

दृष्टव्य—जर्नल आफ़ इण्डियन हिस्ट्री, जि० ४४, भाग ३, दिसम्बर १९६६, क्रम सं० १३२, त्रिवेन्द्रम, पृ. ७६१.

२. ४. २. ६७; ४. २. ७०.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



( क ) 'तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि'[1] अर्थात् अमुक वस्तु जिस स्थान में होती है उस वस्तु के नाम से उस स्थान का नाम पड़ जाता है। यथा कुसुमपुर, जहाँ पुष्प प्रभूत मात्रा में होते हों। सुवर्णभूमि, वह स्थान जहाँ से सुवर्ण ( धातु ) अथवा धन की उपलब्धि हो।

( ख ) 'तेन निर्वृत्तम्'[2] अर्थात् जिसने यह स्थान बसाया। बसाने वाले के नाम से नगर या गाँव का नाम रखना एक स्वाभाविक और प्राचीन परम्परा रही है। यथा कुशाम्ब की बसाई नगरी कौशाम्बी नाम से विश्रुत हुई।

( ग ) 'तस्य निवासः'[3] रहने वाले या वालों के निवास के नाम पर यथा भृगु के निवास स्थान पर 'भृगुकच्छ'। वाल्मीकि के निवास के आधार पर 'वाल्मीकि ग्राम'।

( घ ) 'अदूरभवश्च'[4] अर्थात् जो स्थान किसी दूसरे के निकट बसा होता है, वह भी उसके नाम से पुकारा जाने लगता है, जैसे विदिशा नदी के समीप बसा हुआ नगर विदिशा हुआ। इक्षुमती नदी के तट पर बसी इक्षुमती नगरी।[5]

( ३ ) जन अथवा कबीले के नाम के आधार पर उसके अधिकार क्षेत्र का नामकरण, यथा काक द्वारा शासित क्षेत्र का नाम काकवाट ( काकों का स्थान = आधुनिक साँची ) अथवा यौधेयवाट ( यौधेयों का स्थान = आधुनिक जोहियाबाड़ )

**अंग**—अंग का उल्लेख कथासरित्सागर में हुआ है।[6] यह वर्तमान भागलपुर के आस-पास का देश था।[7] प्राचीन भारत के सोलह महाजनपदों में इसका प्रमुख स्थान था। राजा दशरथ के मित्र रोमपाद अंग देश के राजा थे और उनके दामाद मुनि ऋष्यश्रृङ्ग उन्हीं के राजभवन में रहते थे। यहीं महाभारत के कर्ण का राज्य था। चम्पापुरी इसकी राजधानी थी। चम्पा के नाम से भागलपुर का पश्चिमी अंश आज भी प्रसिद्ध है। महाभारत कालीन कर्ण नरेश की स्मृति को सजोये हुए कर्णगढ़ आज भी लोकप्रिय है।[8] नलचम्पू[9] और शक्तिसंगम[10] तन्त्र में अंग की सीमा वैद्यनाथ से लेकर आधुनिक पुरी जिले के भुवनेश्वर तक निर्दिष्ट की गई है।

अंग जनपद को धम्मपदट्ठकथा में 'रट्ठ' ( राष्ट्र ) कहा गया है।[11] चम्पेयक

---

१. अष्टाध्यायी, ४, २, ६७. २. वही, ४, २, ६८.
३. वही, ४, २. ६९. ४. वही, ४, २, ७०. ५. क० स० सा०, ३२, ९८:
६. क० स० सा०, १२१, १८१
७, भूगोल, भुवन-कोषाङ्क, ( मई, जून, जुलाई, १९३ ), इलाहाबाद, पृ० १.
८. नलचम्पू ( कैलाश त्रिपाठी, चौखम्भा, वाराणसी, १९६७ ), पृ० ८१.
९. वही, ६, ६. १०. पटल ६.
११. भरत सिंह उपाध्याय, बुद्धकालीन भूगोल, ( हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, १९६१ ), पृ० ३४३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



जातक के अनुसार चम्पा ( वर्तमान चाँदन ) नदी अंग और मगध की प्राकृतिक विभाजक सीमा थी।[1] तथागत ने वाराणसी के बाद ( मगध के साथ ) अंग देश को अपने धर्म-प्रचार का केन्द्र बनाया था। अंग में किये गए उनके प्रचार-कार्य का विस्तृत विवरण विनयपिटक में हैं[2]।

**अहिच्छत्र**—कथासरित्सागर में पुष्करावती नगरी के गूढ़सेन राजा का पुत्र अपने विवाह के लिए अहिच्छत्र नगरी को गया था[3]। महाभारत के आदिपर्व में उत्तर पाञ्चाल की राजधानी अहिच्छत्र या छत्रवती बताया गया है[4]। इसे वर्तमान रामनगर ( जिला बरेली, उत्तर प्रदेश ) से मिलाया जाता है[5]। भागीरथी नदी उत्तर और दक्षिण पाञ्चाल का विभाजन करती थी। अहिच्छत्र का उल्लेख प्राचीन वाङ्मय में बहुशः हुआ है।[6] यह इन्द्रप्रस्थ के पूर्व में स्थित था। य्वान् च्वाङ्ग के समय भी यह एक बड़ा नगर था[7]। इसने यहाँ के नागरिकों की ईमानदारी तथा उनके विद्याध्ययन की प्रशंसा की है[8]।

**अन्तर्वेदी**—प्राचीन समय में अन्तर्वेदी में वसुदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसके पुत्र का नाम विष्णुदत्त था[9]। गंगा-यमुना तथा प्रयाग औरहरिद्वार के बीच का भाग अन्तर्वेदी कहलाता था[10]। इसका उल्लेख मनुस्मृति[11] तथा स्कन्दगुप्त के इंदौर ताम्र[12]-पत्र में भी हुआ है। इस लेख के अनुसार विषयपति शर्व्वनाग गुप्तों के पदाधिकारी के रूप में इस क्षेत्र में शासन कर रहा था। आधुनिक बुलन्दशहर (उ. प्र.) इसी भूभाग में आता था[13]।

**अमरकण्टक**—अमर पर्वत का नाम आलोच्य ग्रन्थ में आया है।[14] पालि साहित्य में नम्मदा ( नर्मदा ) नदी को अमरकण्टक पर्वत से निकल कर पश्चिम में बहती हुई

---

१. वही, पृ० ३४४.

२. जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृ० ६३ ( भारतीय ज्ञानपीठ काशी का संस्करण ); जातक, प्रथम खण्ड, ११२; उपाध्याय, पृ० ३४५-६.

३. क० स० सा०, २८, ११९. महाभारत, आदिपर्व, अ० १६८.

४. बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ. ४१४.

रैप्सन, ऐंशेण्ट इण्डिया, पृ. १६७. ५. वही.

६. वैदिक इण्डेक्स, १. ४६९. महाभाष्य, २. पृ. २३३,

दिव्यावदान, पृ. ४३५. कॉवेल, जातक, २, २३०.

७. स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ. ३९१—२.

८. वाटर्स, आन य्वान् च्वाङ्ग, जि. १, पृ. ३३१.

९. क० स० सा०, ३२, ४. २. १०. भविष्य पुराण, भाग ३, अ० २.

११. वही, पृ० ३२६; मनुस्मृति, २. २१. १२. सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स, पृ० ३१०.

१३. बिमल चरन लाहा, हि० जि० ए० इ०, पृ० ६३. १४. क० स० सा०, ५०,४८-९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



खम्भात की खाड़ी में गिरते हुए निर्दिष्ट किया गया है।[1] टालमी ने इसे विन्ध्य-उपत्यका का एक भाग माना है।[2] स्कन्दपुराण के रेवा खण्ड में इसे ऋषि गिरि का एक भाग बताया गया है।[3] इसकी पूर्वी चोटी विन्ध्य और सातपुरा पर्वतों को मिलाती है। इसका विस्तार मध्य प्रदेश के खैरागढ़ से रीवाँ तक है। नर्मदा के अतिरिक्त सोन और महानदी भी यहीं से निकली है।[4]

**अयोध्या**--सोमदेव नें अयोध्या का उल्लेख महाराज दशरथ[5] तथा नन्द नृप के स्कन्धावार के सम्बन्ध में किया है।[6] समुद्रगुप्त के नालन्दा एवं गया ताम्रलेखों में ( जिनको कतिपय विद्वान जाली लेख मानते हैं ) अयोध्या को गुप्तों के स्कन्धागर के रूप में उल्लिखित किया गया है। अयोध्या भारत का अत्यन्त प्राचीन नगर था। कुछ लोग साकेत और अयोध्या को एक ही नगर मानते हैं किन्तु यह उनकी भूल है। लन्दन और वेस्टमिनिस्टर की भाँति ये समीपवर्ती रहे होगें।[7] परम्परानुसार यह इक्ष्वाकु-वंशियों की राजधानी थी।[8] रामायण में अयोध्या के नागरिकों के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन का आदर्श चित्र प्रस्तुत है।

सरयू नदी के दाहिने तट पर फैजाबाद ( उ० प्र० ) जिले में २६°४८, उत्तर अ० तथा ८२.१२ पूर्व दे० रेखाओं पर स्थित है।[9] प्राचीन उल्लेखों के अनुसार यह नगरी १२ योजन लम्बी और ९ योजन चौड़ी थी।[10] अयोध्या का नाम सात तीर्थों में सबसे पहले आया है।[11] इसे तीर्थ-रूपी विष्णु का मस्तक बताया गया है ( अयोध्या-पुरीं मस्तकम् )[12]। स्कन्दपुराण में अयोध्या को मत्स्याकार बताया गया है।[13] अयोध्या ( अयोज्झा ) का उल्लेख संयुत्त—निकाय के फेठा-सुत्त में है।[14]

**अवन्ति**—यह मध्य भारत का प्रसिद्ध जनपद था। कथासरित्सार में इसका

---

१. उपाध्याय, वही, पृ० १६१. २. रायचौधुरी, वही, पृ० ५८
३. ५. ५१, ४. ४६–८. ४. रायचौधुरी, वही, पृ. ५८.
५. क० स० सा०, ५०. ५९. ६. वही, ६. ९७; ४, १३७; ९. २९; ९, ३५.
७. डेविड्स, बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० ३९,
८ रघु० १३, ६१; विक्रमांकदेवचरित, सर्ग १८, श्लोक ९४.; नलचम्पू १, पृ० ५३.
९. रामायण, बालकाण्ड, ५५.
१०. विविधतीर्थ कल्प, अ० ३४. ११. काञ्चीमाहात्म्यम्, अध्याय १, पृ० ५९.
१२. लाला सीताराम, अयोध्या का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, ( प्रयाग १९३२ ), पृ० २. द्रष्टव्य, इलाहाबाद युनिवर्सिटी स्टडीज, जि० ४.
१३. अ० १, ६४–५. भागवत पुराण में नगर का वर्णन सुलभ है ( ९. ८. १९ ).
१४. संयुक्त-निकाय ( हिन्दी अनुवाद ), प्रथम भाग, पृ० ३३२.
बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० २५२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



उल्लेख हुआ है।[१] इसकी राजधानी उज्जयिनी थी।[२] चित्त सम्भूत जातक में कहा गया है कि अवन्ति राष्ट्र के उज्जयिनी नगरी में अवन्ति-नरेश राज्य करते थे।[३]

पूर्व बुद्ध-काल में अवन्ति की गणना सोलह महाजनपदों में की जाती थी। यह एक समृद्ध और धनधान्यपूर्ण प्रदेश माना जाता था। बुद्ध के समय वह एक राज्य के रूप में विकसित हो गया था। बौद्ध धर्म के प्रचार की दृष्टि से इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। अवन्ति ने आर्य महाकात्यायन—महान साधक और प्रचारक बौद्धधर्म को दिया। यह अवन्ति-नरेश चण्ड-प्रद्योत के पुरोहित के पुत्र थे। इसी ने चण्ड प्रद्योत को बुद्ध-धर्म में दीक्षित किया था।[४] बुद्धवंस में उल्लिखित है कि भगवान बुद्ध के आसन और बिछौने पर स्तूप-रचना अवन्ति राष्ट्र में की गई थी।[५]

श्रावस्ती से प्रतिष्ठान जाने वाले मार्ग 'दक्षिणापथ' पर अवन्तिपुरी (उज्जयिनी या अवन्तिका) एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव थी, जो गोनद्ध और प्रतिष्ठान (पैठन) के बीच स्थित थी।[६] इस प्रकार पता चलता है कि अवन्ति व्यापारिक मार्ग द्वारा भली-भाँति संयुक्त थी।[७]

**आकर्षिका**—कथासरित्सागर में खड़ाऊँ (पादुक) के प्रभाव से क्षण-भर में ही लम्बी यात्रा करके पुत्रक आकर्षिक नाम की सुन्दर नगरी में उतर गया।[८] यहाँ वेश्याएँ अपने असामियों को ठगने में व्यस्त थीं। ब्राह्मण सुन्दरक के पितरों के समान विश्वास-घाती और लोभी थे। वणिक यहाँ स्वभाव से ही धन के लालची थे।[९] पर्वत के उत्तुंग श्रृंग की भाँति ऊँचे महल की खिड़की से प्रवेश कर उसने एकान्त में सोयी हुई पाटली को देखा। वह मानो समस्त संसार के जीतने के श्रम से थक कर सोई हुई कामदेव की मूर्तिमती शक्ति लग रही थी।[१०]

**इरावती**—सोमदेव ने इरावती-नगरी का उल्लेख किया है।[११] महाभाष्य[१२] एवं कालिकापुराण[१३] में भी इरावती-नगरी निर्दिष्ट की गई है। यह नगरी इरावती नदी के तट पर विद्यमान थी।[१४] डा० लाहा ने इस नदी की लम्बाई १३० मील बताई है।[१५]

---

१. क० स० सा०, १०. १९; १०. १८४.

२. वही, १०. १८४; अष्टाध्यायी, ४. २. ८२; ४. २. १७६.

३. उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ. २७७.

४. वही, पृ० २७६.

५. बुद्धवंश, पृ० ७५ (राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश कश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)

६ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० २७६. ७. वही, पृ० २७६.

८. क० स० सा०, ३, ५३. ९. वही, ३, ५४. १०. वही, ३, ६१–२.

११. क० स० सा०, ४२, १४७. १२. २. १. २, पृ० ५३. १३. अ० २४, १४०

१४. वही. १५. लाहा, हि० ज्यो० ए० इ०, पृ. ८६. वही, रिवर्स आफ इण्डिया, पृ० १३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



इसकी समता आधुनिक रावी से की जाती है।[1] यूनानी लेखकों ने इसे हाइड्रातिस, अदरिस तथा रोनाडिस कहा है।[2]

सासनवंस ( जो उन्नीसवीं शताब्दी में वर्मा में लिखी गई है ) के आधार पर बर्मी लोग सूनापरान्त जनपद को अपने देश में स्थित इरावती नदी के आसपास पगान के समीप का प्रदेव मानते हैं।[3] सम्भवतः भारतीय प्रदेश ( रावी-तट पर स्थित सूनापरान्त ) के नाम पर ही पगान का नाम प्राचीन काल में रक्खा गया होगा।[4]

**चन्द्रप्रभ, चन्द्रभागा, इरावती ( रावी )**—सोमदेव ने पंजाब की प्रसिद्ध नदी के रूप में इरावती को निर्दिष्ट किया है।[5] पंजाब का नाम पाणिनि के समय वाहीक था।[6] चन्द्रभागा ( चेनाव ) का नाम वाह्वादि गण के साथ आया है। कालिदास ने राम-लक्ष्मण की जोड़ी की तुलना उद्ध्य और भिद्य नदी से है।[7]

**इक्षुमती**—आलोच्य ग्रन्थ में इक्षुमती नाम की नगरी का उल्लेख हुआ है। इस पुरी के पार्श्व में इक्षुमती नाम की नदी की सूचना सोमदेव ने दी है।[8] इस नदी के तट पर एक महान वन था, जिसमें मंकणक ऋषि, ऊपर पैर करके तपस्या करता था।[9] उसने एक बार मेनका नाम की अप्सरा को आकाश-मार्ग से जाते हुए देखा। गगन-मार्ग से जाती हुई उस मेनका की साड़ी ( चलिताम्बरा ) वात से उड़ रही थी। अतः, उसे अदर्शि देखने के कारण काम-वासना से ऋषि का मन क्षुब्ध हो उठा। फलतः, उस ऋषि के सम्पर्क से एक सर्वांगसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई।[10]

कथासरित्सागर में इक्षुमती नामक नगर और नदी—दोनों को ही मुनि विश्वामित्र की सृष्टि के रूप में उल्लिखित किया गया है ( विश्वामित्रकृते उभे )।[11] भागवत पुराण में इक्षुमती नदी को कुरुक्षेत्र में निर्दिष्ट किया गया है।[12] इस सूचना के अनुसार इक्षुमती नगरी भी इसी के सन्निकट कहीं स्थित रही होगी।

**उत्स्थल द्वीप**—आलोच्य ग्रन्थ में उत्स्थल द्वीप का भी उल्लेख हुआ है[13]।

**उज्जयिनी**—कथासरित्सागर में समस्त भूतल में विख्यात उज्जयिनी पुरी का

---

१. वही. २. वही, हि० ज्यो० ए० इ०, पृ० ८६.
३. मललसेकर, डिक्शनरी आफ पालि प्रॉपर नेम्स, दूसरी जिल्द, पृ० १२११,
४. भरतसिंह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० ४९०.
५. क० स० सा०, ४५, ६५. ६. ४, १, ४५. ७. रघुवंश ११, ८.
८. क० स० सा०, ३२, ९८. ९. वही, ३२. ९९. १०. वही, १००-१०२.
११. वही, ३२, ९८. १२. ५, १०, १.
१३. क० स० सा०, २५. ३०, २६, १३२, २७६.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



वर्णन है।[1] इसे अवन्तिपुरी[2] तथा अवंतिका[3] भी कहा जाता था। श्रावस्ती से प्रतिष्ठान जाने वाले मार्ग 'दक्षिणापथ' पर वह एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव थी, जो प्रतिष्ठान और गोनद्ध के बीच स्थित थी। दीपवंस के अनुसार राजा अच्युतगामि ने उज्जयिनी नगरी की स्थापना की थी।[4]

इसके अन्य नामों में विशाला,[5] पद्मावती, भोगवती एवं हिरण्यवती[6] की भी सूचना प्राप्य है। यह नगर शिप्रा नदी के प्रातः कालीन कमलों की सुगन्धि के भार से युक्त वायु के कारण सुवासित हो उठता था। यह वायु स्त्रियों की संभोग की थकावट को उसी प्रकार दूर कर रहा होगा जैसे चतुर प्रेमी, मीठी-मीठी बातें बनाकर, फूलेल सुंघाकर और पंखा झलकर संभोग से थकी हुई अपने प्यारी की थकावट को दूर कर देता हैं।[7]

**उत्तरापथ**—कथासरित्सागर में भारत के प्रसिद्ध स्थलमार्ग उत्तरापथ का विवरण प्राप्य है।[8] अष्टाध्यायी में उत्तरापथ का उल्लेख है।[9] गन्धार से पाटलिपुत्र के मार्ग को उत्तरापथ कहा गया है। इसका योगदान प्राचीन भारत के व्यापार के सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। यह भारत के वाणिज्य एवं व्यवसाय की महाधमनी थी। मेगस्थनीज-प्रभृति अन्यान्य यवन (यूनानी) लेखकों ने इसे 'नार्दर्न रूट'[10] कहा है, जो उत्तरपथ का ठीक अनुवाद है। उन लेखकों की सूचना के अनुसार इस मार्ग के दो बड़े टुकड़े थे। एक तो वक्षु से काश्पीय सागर तक जो कृष्ण सागर ( ब्लैक सी ) होकर यूरोप तक चला जाता था। दूसरा पुष्कलावती से चलकर तक्षशिला होता हुआ सिंधु, शुतद्री और यमुना पार करके, हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज और प्रयाग को मिलाता हुआ पाटलिपुत्र और ताम्रलिप्ति तक चला जाता था। चीन, पश्चिमी देश और भारत इन तीनों को मिलानेवाला यह उत्तरपथ नामक महामार्ग विश्व के वाणिज्य पथों में सर्वाधिक महत्त्व का था।[11] इसे प्राचीन 'ग्रैंड ट्रंक रोड' कह सकते हैं। राजगृह से चलकर यह मार्ग पहले नालन्दा आता था; फिर पाटलिपुत्र, वाराणसी, प्रयाग,

---

१. अस्तिभूतलविख्याता येयमुज्जयिनीपुरी—क०स०सा०, १८,६९; क०स०सा०, १७-५७-५२; २, ८; ७, ३१; १०, ६५-६८; १९, ७; ११, ३१; ११, ७३; १३, २४; १३, २३; १८, ६९; १८, १०७; १८, १४७; १९, ९८; २४-२५; २७, १३५, ३०, ७२; ७३, ३-१०; ३७-१४०, १४६; ४९, १५९, १९५, ५८, १४, ४६, १२०, ९, २७, ३५; १२९, ५, १८४, २७५. २. मृच्छकटिक, प्रथम अंक,

३. काञ्चीमाहात्म्य, अध्याय १, पृ० ५९. ४. पृ० ५७.

५. काव्यमीमांसा, पृ० ५५. ६. क० स० सा० ( टॉनी ), जि० २, पृ०-२७५.

७. पूर्वमेघदूत, ४०-३४, ८. क० स० सा०, ३७, ३४-५.

९. ५, २, ७७. १०. भारत की मौलिक एकता, पृ० ११५.

११. अग्रवाल, पाणिनि कालीन भारतवर्ष, पृ० ३७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



पतिट्ठान् ( प्रतिष्ठान प्रयाग में ), कण्णकुज्ज ( कन्नौज ), संकाश्य ( फर्रूखाबाद ), सोरेय्य ( सोरों एटा जिला, उ० प्र० ) और वेरंजा होता हुआ मथुरा पहुँचता था। यहाँ से इन्द्रप्रस्थ और सम्भवतः सागल ( स्यालकोट ) होते हुए गन्धार राष्ट्र के तक्षशिला नगर तक पहुँता था। बीच में पड़ने वाली नदियों के घाटों पर नावें तैयार मिलती थीं। राजगृह का जीवक वैद्य सम्भवतः इसी मार्ग के द्वारा राजगृह से विद्या प्राप्त करने तक्षशिला गया था।[1] तथागत ने वेरंजा से सौरेय्य, संकस्स, कणकुज्ज और पयाग पतिट्ठान होते हुए वाराणसी तक की जो यात्रा की थी, वह उत्तरपथ के बीच का एक भाग था।[2]

**कलिङ्ग**—सोमदेव ने कलिङ्ग का भी उल्लेख किया है।[3] गोदावरी से लेकर महानदी तक का प्रदेश बुद्ध-काल में कलिङ्ग-जनपद था।[4] इसके दक्षिण में आन्ध्र और उत्तर में उत्कल प्रदेश था। उड़ीसा का उत्तरी भाग उक्कल ( उत्कल ) और दक्षिणी भाग कलिङ्ग कहलाता था।[5] कलिङ्ग राज्य की राजधानी दन्तपुर थी। दन्तपुर का उल्लेख जातक-कथाओं और निद्देस में हुआ है।[6] इससे ज्ञात होता है कि यह एक सुविदित नगर था। बुद्ध का दन्त-धातु कलिङ्ग देश में ले जाया गया था, जहाँ के नरेश ब्रह्मदत्त ने उस पर एक चैत्य की स्थापना की थी।[7] प्राचीन दन्तपुर वर्तमान जगन्नाथ पुरी है।[8] प्रचीन वाङ्मय में इसका उल्लेख हुआ।[9]

**कनखल**—राजस्थान में आबू पर्वत पर स्थित[10] कनखल तीर्थ का उल्लेख आलोच्यग्रन्थ में प्राप्य है।

**कटाह द्वीप**—कथासरित्सागर में वणिकों के व्यापार हेतु कटाह-गमन की सूचना बहुशः दी गई है।[11] एक कथा में चन्द्रस्वामी नामक सार्थवाह अपने खोये हुए पुत्रों को

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृ० २६७. २. द्रष्टव्य बुद्ध की चारिकाओं का विवरण।

३. क० स० सा०, ३६. १३; १२३. १३९.

४. ज० उ० हि० सो, १५, भा० २, पृ० ३४. १२४. २५, १६९, १७३.

५. ए० इ०, ४. १८७; फ्लीट, इ० ए०, १६, १३२.

६. जातक, जि० २, पृ० २६७, ३७१, ३८१; जि० ३, पृ० २७६,
जि० ४, पृ० २३०, २३१, २३२, २३६; जि० २, पृ० ३७.

७. कनिंघम, एन्शियन्ट ज्योग्रेफी आफ इण्डिया, पृ० ५९०-३.

८. डे०, ज्योग्रेफिकल डिक्शनरी आफ़ एन्शियन् एण्ड मिडीवल इण्डिया, पृ० ५३.

९. अष्टाध्यायी, ४. १. १७०; मत्स्यपुराण, ३. २. २., पृ० १९१; महाभारत, ३. ११४. ४. ११४, १००९६–१०१०७; कुर्मपुराण २, ३९-१९; ए इ., २, ८, १७, ३५, १२३.

१०. डी० आर० भण्डारकर, इन्स्क्रिप्शन्स आफ नादर्न इण्डिया, सं० ४५४, ५, १२६५.
लाहा, हि० ज्यो० ए० इ०, पृ० ३१७.

११. क० स० सा०, १३.७४, १८३; ५६.५६; ५६.६०; ५६.६१–६३. ५६.१४–१५; ६०.२६.
बृ० क० म०, २.१८३.६०. समराइच्चकहा, ( याकोबी ), पृ० १९५–२०६.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



ढूँढ़ने के लिए जहाज में बैठकर कटाह द्वीप पहुँचता है।[1] यह मलय प्रायद्वीप का एक भाग था, जिसे इस समय केडा कहते हैं।[2] राजेन्द्र चोल के लेखों में उसे 'कडारं' कहा गया है। कुमारदास के जानकीहरणकाव्य में कटाह-द्वीप का उल्लेख आया है।[3] कटाह-द्वीप की यात्र में नारिकेल द्वीप एक पड़ाव तुल्य था।[4] यह द्वीप अगरु की लड़की के लिए विख्यात था।[5] कटाह-गमन की यात्रा से सर्व-सम्पदा की प्राप्ति होने का उल्लेख सोमदेव ने किया है।[6]

**कपटेश्वर**—शैवमत के सुविख्यात तीर्थ कपटेश्वर का उल्लेख सोमदेव ने कथा-सरित्सागर में किया है।[7]

**कनकपुर**—प्राचीन काल में गंगा के तट पर गंगाजल से पवित्र नागरिकों वाला कनकपुर नाम का एक उत्तम नगर था। उस नगर में यदि बन्ध था, तो कवियों की वाणी में, नियम और चरित्र में नहीं। यदि छेदन था, तो सजावट ( वन्दनवार आदि ) के पत्तों में, शिर और वृत्ति में नहीं; भंग था तो नारियों के केशों में भङ्ग (टेढ़ापन) था; वचन या प्रतिज्ञा में नहीं। खल ( खलिहान ) सस्य के संग्रह में थे, जनता में नहीं। इस नगर के राजा कनकवर्ष को नागराज वासुकि के पुत्र राजा प्रियदर्शन से यशोधरा नाम की राजकुमारी का जाया निर्दिष्ट किया गया है। वह यश का लोभी था, धन का नहीं, पाप भीरु था शत्रुओं से नहीं, दूसरों की निन्दा करने में मूर्ख था, शास्त्रों में नहीं। उस महात्मा राजा के क्रोध में अल्पता थी, प्रसन्नता में नहीं, और उसकी मुट्टी धनुष में बंधी रहती थी, दान में नहीं।[8]

**कन्यका**—उक्त ग्रन्थ में कन्यका नगरी का उल्लेख है।[9] इसकी ऐतिहासिकता के विषय में कुछ निश्चयात्मक रूप से निर्दिष्ट करना असम्भव है।

**कर्पूरसंभव द्वीप**—कथासरितसागर में समुद्र के पार कर्पूर-संभव नाम के द्वीप का उल्लेख है।[10] इसे उक्त ग्रन्थ में एक नगर के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।[11] अरेबियन-नाइट्स में सिन्दबाद जहाजी की कहानी में कपूर के टापू का उल्लेख आया है।

---

१. वही. ५६.६०.

२. वासुदेव शरण अग्रवाल, कटाहद्वीप इन मलय पेनिनसुला, ज० उ० हि० सो०, जि० १९, पृ० ९५. ३. १. १७. ४. क० स० सा०, ५४. १४–१५.

५. वही, ६१.३. ६. 'अस्ति द्वीपं कटाहाख्यं केवलं सर्वसम्पदाम्, क० स० सा०, १२३.१–५.

७. ५०, ४९. ८. क० स० सा०, ५४, २६–३२ ९. क० स० सा०, १२२, ३८.

१०. अस्ति पारेऽम्बुधि परं नाम्ना कर्पूरसम्भवम् —क० स० सा०, ४२, १६.

वही, ४३, ४, १३४, १९७. वही, ५६, ६२.

११. एहि कर्पूरिकापश्वं पुरं कर्पूरसम्भवम्—वही. ४२, २३.

वही. ४३, १३४. वही, ५६, ६२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



**कनकपुरी**—आलोच्य ग्रन्थ में इसे विद्याधरों का निवास स्थान निर्दिष्ट किया गया है।[१]

**कलाप**—कथासरित्सागर में कलाप ग्राम का भी उल्लेख हुआ है।[२]

**कलशपुर**—समुद्रशूर नामक बनिया स्वर्ण द्वीप को जाते हुए माल-असबाब सहित समुद्र-तट के प्रवहण ( नौका ) पर चढ़ा। तदनन्तर कुछ ही मार्ग शेष रहने पर भीषण बादल आकाश में उठा और समुद्र को क्षुब्ध कर देने वाला भयंकर तूफान भी आ गया। प्रवहण डुब जाने के कारण उक्त वणिक् कमर कसकर समुद्र में कुद पड़ा। वायु के अनुकूल होने के कारण वह सुवर्ण-द्वीप के तट पर पहुँच गया। इस सूचना के आधार पर कलशपुर[३] को सुवर्ण द्वीप का एक नगर कहा जा सकता है।

**कमलपुर**—सोमदेव ने कमलपुर का उल्लेख किया है। इसकी समता प्रमाणाभाव के कारण स्थापित नहीं की जा सकी है।[४]

**कर्णाट**—सोमदेव ने कर्णाट की स्त्रियों को अपनी विशेषताओं से पति का मनोरञ्जन करते हुए निर्दिष्ट किया है।[५] तमिल साहित्य में कर्णाट का उल्लेख एक प्रख्यात नगरी के रूप में हुआ है।[६] इसे धर्ममण्डल भी कहा गया है।[७] शक्तिसङ्गमतन्त्र के अनुसार रामनाथ से लेकर श्रीवङ्ग की सीमा तक का साम्राज्य कर्णाट देश था।[८]

**काश्मीर**—सोमदेव ने काश्मीर का उल्लेख किया हे। कथासरित्सागर में राजा वीरभुज ने रनिवास के अध्यक्ष सुरक्षित को अयशोलेखा रानी की झूठी शिकायत पर, दरबार में बुलाकर क्रोध प्रदर्शित करते हुए कहा 'रे पापी ! मैंने पता लगाया है कि तूने ब्रह्महत्या की है, अतः पापों का नाश करने वाले काश्मीर देश को जाओ। वहाँ विजय क्षेत्र वराह-क्षेत्र और पवित्र नन्दिक्षेत्र हैं। उस देश में बहती हुई जाह्नवी वितस्ता नाम धारण करती है। यहाँ उत्तर-मानस नामक पवित्र स्थल है।[९] भारतीय वाङ्मय में इसका उल्लेख प्रचुरता से हुआ है।[१०] क० स० सा० में वितरस्ता को जाह्नवी कह कर उसके विशेष धार्मिक महात्म्य को प्रतिष्ठापित किया गया है।

---

१. क० स० सा०, २४, ७१; २६, ४०; २६, १३८. २. ४६, ६६.

३. "आरुरोह प्रवहणं तटं प्राप्य महाम्बुधेः" —क० स० सा०, ५३, १०८.

४. क० स० सा०, ५६, ४. ५. क० स० सा०, ४७. १०६.

६. सा० इ० इ०, जि १, पृ० ६९-७०, ८२, १३०, १६०, १६४.

७. भागवतपुराण, ५, ६, ७. ८. पटल ७. मार्कण्डेयपुराण, अ० ५८.

बृहत्संहिता, १४. १३. वसू, दी इनसाइक्लोपीडिया इण्डिका, जि० ४, पृ० १३६.
नलचम्पू, २, पृ० १२७.

९. 'धत्ते नाम वितस्तेति वहन्ती यत्र जाह्नवी—क० स० सा०, ३६–३९. १२०, ७७; १२२.
लाहा, होली प्लेसेज़ आफ़ इण्डिया, पृ० ३०–१.

१०. पाणिनि, ४. २. १३२. पतञ्जलि, ३. २. २, पृ० १८८-९. १. १. ६, पृ० २७६.
बृहत्संहिता, १४. २९. योगिनीतन्त्र, १. ३, २. ९, पृ० ७७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



**काम्पिल्य**—कथासरित्सागर में काम्पिल्य नगर ( विषय ) का उल्लेक है।[१] वहाँ पर उक्त ग्रन्थ में उत्तर पर्वत का उल्लेख है। यह नगर आधुनिक फर्रूखाबाद (उ० प्र०) से उत्तर-पश्चिम की ओर २८ मील की दूरी पर स्थित है।[२] कथाकोष में इसे सभी प्रकार से समृद्ध तथा धनधान्य-पूर्ण निर्दिष्ट किया गया है।[३] वेदों में इसे काम्पिल तथा पालि-साहित्य में कम्पिला कहा गया है। यह दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी थी।[४] रामायण में इसे इन्द्र का निवास स्थान कहा गया है।[५] पाणिनि ने काशिकावृत्ति में इसका उल्लेख किया है।[६] वराहमिहिर की यह जन्मभूमि थी।[७] प्राचीन समय में यह जैनधर्म का प्रमुख केन्द्र था। आज भी यहाँ दो जैन मन्दिर हैं।[८] यहाँ अशोक-स्तम्भ के चिह्न मिले हैं।

**काञ्चनशृंग**—कथासरित्सागर में इसे हिमालय पर सुवर्ण निर्मित नगर के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।[९] इस नगरी का प्राकार हेमनिर्मित था।[१०] काञ्चनशृंग को दिव्य बाग-बगीचों, वापियों और देव-मन्दिरों से युक्त बताया गया है।[११] यह वर्णन आख्यानात्मक लगता है। अन्य सम्भावना यह भी हो सकती है कि इससे तात्पर्य 'कञ्चनजंघा' से हो।

**कार्कोटक**—पूर्व समुद्र के पार कार्कोटक नगरी की सूचना सोमदेव ने दी है।[१२]

**कान्यकुब्ज ( कन्नौज )**—इसके अन्य नामों में कान्यकुब्ज[१३], कन्यकुब्जा,[१४] कन्याकुब्जा,[१५] कन्याकुब्ज,[१६] महोदय,[१७] महोदया,[१८] गाधिपुर,[१९] गाधिनगर,[२०] कुशस्थल,[२१] और कुसुमपुर का उल्लेख प्राप्य है। रामायण के अनुसार इसकी नींव कुश के पुत्र कुशनाभ ने डाली थी।[२२] इसकी कथा के अनुसार पवनदेव के श्राप से कुशनाभ की परम रूपवती, नानागुणसम्पन्ना, यौवनशालिनी सौ कन्याएँ कुबड़ी ( कुब्जत्वं ) हो गई थीं।[२३]

---

१. क० स० सा०, २५. २३. २. नन्द लाल डे, जिओग्रैफिकल डिक्सनरी, ८८.
३. हरिषेण, कथाकोष, सं० १०४ और ११५. ४. महाभारत, १३८, ७३-३.
५. आदि, ३३, ५, १९. ६. ४. १२१.
७. डा० लाहा वाल्यूम, भाग २, पृ० २४०. ८. लाहा, हि० ज्यो० ए० इ०, पृ०९३.
९. क० स० सा०, ३५. १५१-८; ५८. ९. १०. वही, ३५. १५२.
११. वही, ३५. १५८. १२. क० स० सा०, १८. २३४; ३१४.
१३. क० स० सा०, २०, १६८; १८०; २१, ८६. १४. राजतरंगिणी, १. ११७.
१५. काव्यमीमांसा, पृ० ३२. १६. ए० इ०, १. २१९.
१७. रामायण, १. ३२. ६. काव्यमीमांसा, पृ० १६६. १८. वही, पृ० ३२.
१९. कल्पद्रुमकोष, १६, पृ० १०. २०. इ० एन्टीक्वैरी, १५. ४१.
२१. अभिधानसंग्रह, २. १९३. २२. रामायण, १. ३२. ६.
२३. वही, १. ३२. ६, ११, १२, २३; १. ३३. ३४–४५,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



यह पाञ्चाल राज्य में स्थित थी।[1] ग्यारहवीं शती ई० में यहाँ का नरेश कर्णदेव राय था ( १०४०—१०७० ई० )। सुविख्यात गोविन्दचन्द्र की राजधानी यही नगरी थी।[2] इस पुरी का उल्लेख भारतीय वाङ्मय में अधिक हुआ है।[3]

**कामरूप**[4]—यह प्राच्य-नगर था।[5] इसके अन्य नामों में प्राग्ज्योतिषपुर[6] तथा कामाख्या[7] का उल्लेख हुआ है। इसकी समता आधुनिक गौहाटी से की जाती हैं ( प्राक=पहले + ज्योतिषपुर=ज्योतिष का केन्द्र अर्थात् यह नगर पूर्व-काल में ज्योतिष का केन्द्र था)। यह नाम वहाँ शाकद्वीपी ब्राह्मणों के आगमन पर पड़ा होगा।[8] गौहाटी का प्राचीन नाम प्राग्ज्योतिषपुर था।[9] स्कन्दपुराण कुमारिकाखण्ड के अनुसार कामरूप में नवलाख ग्राम थे ( कामरूपे च ग्रामाणां नवलक्षाः प्रकीर्तिताः )।[10] वर्तमान आसाम, कूचविहार, जलपाईगोड़ी और रंगपुर कामरूप के अन्तर्गत आते थे।[11] योगिनीतन्त्र के अनुसार करतोया से दिक्करवासिनी तक कामरूप का विस्तार था।[12] इसकी उत्तर सीमा में कञ्जगिरि, पश्चिम में करतोया नदी, पूर्व सीमा में तीर्थ श्रेष्ठ दिक्षु नदी और दक्षिण में ब्रह्मपुत्र नद तथा लाक्षानदी का संगम-स्थल है। यह सौ योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा था[13]। कालिकापुराण में करतोया इसकी सीमा निर्दिष्ट की गई है[14]। महाभारत की सूचना के अनुसार इसकी सीमा पर किरात एवं चीन देश स्थित थे[15]। यहाँ के सम्राट् भगदत्त ने महाभारत के संग्राम में भाग लिया था[16]। इसकी सेना में चीनी सैनिकों का भी उल्लेख हुआ है। य्यान् च्वाङ्ग ने यहाँ के लोगों को कृष्ण मतावलम्बी निर्दिष्ट किया है[17]।

**कावेरी**—आलोच्यग्रन्थ में उदयन ने कावेरी को लाँघ कर चोलेश्वर की कीर्ति को कलुषित किया था[18]। इस सूचना के अनुसार कावेरी नदी के बाद चोल मण्डल

---

१. ए० इ०, ४. २४६.

२. ए० इ०, भाग २, ( अप्रैल १९४७ ), पृ० ७१. लाहा, हि० ज्यो० ए० इ०, पृ० ९४. त्रिपाठी. हिस्ट्री आफ कन्नौज, पृ० ३.

३. महाभारत, अ० ८७. १७. विनयपिटक, जि० २, पृ० २९९. भागवत पुराण, ६. १. २१. योगिनीतन्त्र, २. ४. वाटर्स, १. ३४१.

४. क० स० सा०, १९. ११३. ५. काव्यमीमांसा, अध्याय १७. बृहत्संहिता

६. प्राग्ज्योतिषाः कामरूपाः, अभिधानचिन्तामणि, ४. २२.

७. कालिकापुराण अ० २८; साचो. १. २०१. ८. साचो. वही. १. २०१.

९. भगवत शरण उपाध्याय, कालिदास का भारत, १. १११. १०. अ० ३७.

११. हिन्दी विश्वकोश, भाग ६. पृ० ४३२. १२. २. ८ पटल.

१३. कालिका पुराण, २. ८. पटल. १४. ३८, १२१ अ० १५. सभापर्व, २५, १००२.

१६. उद्योग पर्व, १८. ५८४. १७. वाटर्स, २. १८६.

१८. उल्लङ्घ्यमाना कावेरी तेन संमर्दकारिणा।
चोलकेश्वरकीर्तिश्च कालुष्यं ययतु समम् ॥ क० स० सा०, १९, ९५

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



प्रारंभ होता होगा। पुराण-कथा के अनुसार कान्त-नरेश की प्रार्थना पर महर्षि अगस्त ने अपने कमण्डल से कावेरी का अनुस्यन्दन किया था[1]। कावेरी मुक्ता और मत्स्य के लिए सुविख्यात थी[2]। पल्लव-नरेश द्वारा उत्कीर्ण अभिलेखों में कावेरी को पल्लव प्रिय निर्दिष्ट किया गया है[3]। भारतीय वाङ्मय में कावेरी का उल्लेख प्रायः प्राप्त है[4]।

**काशीपुरी**—कथासरित्सागर में प्रख्यात नगरी काशीपुरी का उल्लेख किया है[5]। भारतीय वाङ्मय के अनुशीलन से इस नगरी की धार्मिक महत्ता सुविदित हो जाती है[6]। इसके अतिरिक्त यह एक उत्तरी-भारत का सुप्रसिद्ध वाणिज्य एवं व्यवसाय का केन्द्र था[7]। यह प्रयाग से ८० मील दूर स्थित है। वरुणा और आसी नदी के मध्य स्थित होने के कारण इसे वाराणसी भी कहा जाता था। जातकों में इसे १२ योजन विस्तृत निर्दिष्ठ किया गया है[8]। इसकी समता आधुनिक वाराणसी से की जाती है।

**काञ्ची**—अच्छे गुणों से गूँथी गई और वसुधा-वधू की काञ्ची ( करधनी ) के समान अलंकार-रूप काञ्ची नगरी का उल्लेख आलोच्य ग्रन्थ में प्राप्य है[9]। इसकी समता आधुनिक काञ्जीवरम् से की जाती है[10]। यह एक प्रसिद्ध राजनीतिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र था[11]। यह मद्रास से ४३ मील दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित थी[12]। भारतीय साहित्य में इसके उल्लेख प्राप्य है[13]।

---

१. मणिमेखलई, १, ९–१२, २३–४

२. लाहा, रिवर्स आफ इण्डिया, पृ० ५१. हि० ज्यो० ए० इ०, १६२–३.

३. सरकार, से० इ०, पृ० २९. ४. महाभारत, भीष्मपर्व, ९,३२८ वनपर्व, २५, ८१६४–५. रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, ४१, २१, २५. हरिवंशपुराण, २७, १४१६-२२. भागवतपुराण, ५,१९१८; ७,१३,१२,१०, ७९,१४;११,५,४०. पद्मपुराण, उत्तरकाण्ड, श्लोक, पृ० ३५-८. बृहत्संहिता, १५, १३. रघुवंश, ४, ४५. ५. क० स० सा०, १२३, २७२.

६. महाभारत, ८४, ७८ पाणिनि, ४, २, ११६ महाभाष्य, २,१,१, पृ० ३२ स्कन्दपुराण, अ० १, १९-२३ भागवत पुराण, ९, २२, २३; १०, ५७, ३२; १०,६६,१०; १०, ८४, ५५; १२, १३, १७ सौरपुराण, अ० ४. ५, ५ कालिकापुराण, ५१, ५३; ५८, ३५ योगिनीतन्त्र. १।२; २।४. ७. अंगुत्तरनिकाय, १, २१३ दीघनिकाय, २।७५.

८. मज्झिमनिकाय, २,६०८. ९. क० स० सा०, ४३,२०;४४,४४,५७,७३; ५९,२२;५९,८६.

१०. साउथ इण्डियन इंस्क्रिप्शन्स, जि० ३, पृ० २०६. ११. स्कन्दपुराण, अ० १, १९-२३.

१२. लाहा, वही, पृ० १५६.

१३. भागवतपुराण, १०, ७९, १४. वही, भीष्मपर्व अ० ९. दशकुमारचरित, पृ० १५३ ए० इ०, जि० २५, भाग ७, पृ० ३१८. नलचम्पू, प्र० उ०, पृ० ३९. तोडलतन्त्र. नवम उल्लास, बृहन्नीलतन्त्र. ५ वां पटल।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



**कालन्जर**—इस ग्रन्थ में कालन्जर गिरि का उल्लेख मिलता है।[1] इसमें प्राप्य वर्णन के द्वारा इसकी भौगोलिक स्थिति अथवा समीकरण पर कुछ प्रकाश डालना उपकर है।

**कुसुमपुर**—सोमदेव ने इसे गंगा के तट पर निर्दिष्ट किया है।[2] विशेष विवरण के लिये कृपया पाटलिपुत्र विवरण देखने का अनुग्रह करें।

**कोसल**—कोसल देश के प्रसेनजित्[3] तथा धर्मदत्त नामक राजा का उल्लेख सोमदेव ने किया है।[4] बुद्ध-पूर्व सोलह महाजनपदों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान था।[5] कोसल देश की राजधानी बुद्ध के समय सावत्थि ( श्रावस्ती ) थी।[6] आचार्य बुद्धघोष के अनुसार ५७ लाख परिवार उस समय श्रावस्ती में रहते थे और उसकी आबादी १८ करोड़ थी।[7] कोसल राज्य के पूर्व या दक्षिण-पूर्व में मगध और पश्चिम में पहले पांचाल और फिर कुरु जनपद थे। उसके उत्तर-पूर्व में मल्ल और वज्जि-संघ थे। दक्षिण में चेदि और वंस राष्ट्र।

**अपरान्त ( कोंकण )**—पश्चिमी समुद्र-तट पर बम्बई या महाराष्ट्र के आसपास से लेकर सुराष्ट्र या अधिक से अधिक कच्छ तक का प्रदेश बुद्ध-काल में अपरान्त नाम से पुकारा जाता था। जिस प्रदेश को अपरसोयन के लोगों ने बसाया उसी का नाम बाद में उनके नाम पर[8] अपरान्त पड़ गया।[9] अशोक के पाँचवें शिलालेख में इसका उल्लेख है।[10] यह वेणवा नदी के तट पर स्थित था।[11]

**कौशाम्बी**—सोमदेव ने उदयन तथा उसके पुत्र नरवाहनदत्त की नगरी कौशाम्बी का अधिक उल्लेख किया है।[12] यह जनपद की राजधानी थी। कौशाम्बी की पहचान कोसम नामक ग्राम से की जाती है, जो प्रयाग से ३० मील की दूरी पर स्थित है।

**कौतुकपुर**—कथासरित्सागर की सूचना के अनुसार यह एक प्राचीन नगर था। यहाँ के नरेश का नाम बहुसुवर्ण था।[13]

---

१. सदारश्च गतोऽभूवं गिरिं कालञ्जरं ततः। क० स० सा० २२, १६१.

२ क० स० सा०, २४, २०६. ३. वही. ४. वही, २७,७९.

५. अंगुतरनिकाय, १,२१३. विष्णुपुराण, अ, ४, ४.

६. लाहा, ट्राइब्ज इन ऐंश्येण्ट इण्डिया, भ० २८.

७. परमत्थजोतिका, जि० १, पृ० ३७१. समन्तपासादिका, जि० ३, पृ० ६३६.

८. क० स० सा०, ४४, ४३. ९. बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० १५३.

१०. सरकार, से० इ०, पृ० २३. ११. माक० पुराण, २५.

१२. क० स० सा०, १,६३; २,३०; ४१८; ९,१०; ९,१०; १०,२१०; ११,१९; १२,३५–६; १७,१५५; १८,९–२७; १८,६४; २०,२२२–३; २३,७८–८५; ३०,५६–७; ३२,२; ३५,१३५; ४३,१८७; ४३; २४१–२; ४४,४८; ५१, १; ५३, ६३–४।

१३. क० स० सा०, ५४, १५२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



**गंगा**—आलोच्य ग्रन्थ में पूर्णतोया गंगा का उल्लेख प्रायशः हुआ है।[1] प्राचीन-काल में इसके तट पर शरीर त्याग को महान् धार्मिक कृत्य समझा जाता था।[2] इसे जाह्नवी भी कहा गया है।[3] भागवतपुराण में इसे अलकनन्दा कहा गया है।[4] प्राचीन वाङ्मय में गङ्गा का वर्णन उपलब्ध है।[5]

हरिवंशपुराण में पुरुरवा और देव वाराङ्गना उवर्शी के मन्दाकिनी के तट पर रहने की सूचना मिलती है।[6] मार्कण्डेय पुराण में गङ्गा को त्रिपथगामिनी कहा गया है।[7] पद्मपुराण के अनुसार गंगासागर संगम को एक पवित्र तीर्थ-स्थल के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।[8] ब्रह्मपुराण में विन्ध्यपर्वत के दक्षिण में बहने वाली गंगा को गौतमी गंगा तथा उत्तर में प्रवाहित गंगा को भागीरथी गंगा कहा है।[9] महाभारत में सप्तगंगा की भी सूचना दी गयी है।[10]

**गंगासागर**—सोमदेव ने गंगासागर का उल्लेख किया है। यहीं पूर्णतया भागीरथी का सागर से संगम होता है।[11]

**गोकर्ण**—सोमदेव ने दक्षिण भूमि के गोकर्ण नामक नगर के साथ वहाँ के कुल-भूषण तथा विद्वान् श्रुतसेन नामक राजा का उल्लेख किया है।[12] स्वयंभू ने आठ पवित्र महामानवों को जन्म दिया। इनमें से एक गोकर्ण में गोकर्णेश्वर था।[13]

**गोदावरी**—आलोच्य ग्रन्थ में गोदावरी का उल्लेख प्राप्य है।[14] भारतीय

---

१. क० स० सा०, ४,१३७; १२,११२; २०,१७३; २२,१५५; २७,१८८; २८,३७; ४०, १८, ४६, ३२, ५४, २६।  २. वही, २२, १५६.

३. वही, २८, २६.  ४. ४,६,२४; ११, २९, ४२.

५. ऋग्वेद, १०,७५, ५; ६, ४५, २१. शतपथ ब्राह्मण, १३, ५, ४, ११. तैत्तरीय संहिता २, २०. लुडविग, अथर्ववेद की वर्णावती सम्भवतः गंगा नदी है। ट्रान्सलेशन आफ दी ऋग्वेद।. महाभाष्य, १, १, ९, पृ० ४३६. १, ४, २, पृ० ६७० ब्रह्माण्डपुराण, २, १८, २६–४२, ५०–५२. रघुवंश, ७, ३६; ८, ९५, १०, २६, ६९. जाह्नवी और भागीरथी कहा गया है।  ६. अ० २६, ५–७.

७. पृ० २४२–३.  ८. अ० २१.  ९. अ० ७८, श्लोक, ७७.

१०. महाभारत, ८४, २९. लाहा, रिवर्स आफ इण्डिया, पृ० १७ और आगे।. वही, ज्योग्रेफिकल ऐसेज, ८४ और आगे।. वही, हि० ज्यो० ए० इ०, पृ० ७८.

११. ५१, १७.

१२. अभूदक्षिणभूमौ प्राग्गोकर्णाख्ये पुरे नृपः।
श्रुतसेन इति ख्यातः कुलभूषाश्रुतान्वितः॥ क० स० सा०, ३३, २५.

१३. लाहा, ज्योगैफिकल एसेज, पृ० ४६.

१४. क० स० सा०, ६, २७; १९, ९७; ५४, ११५.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



वाङ्मय में इसे दक्षिण की प्रसिद्ध सरिता के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।[1]

**चक्रपुर**—कथासरित्सागर में चक्रपुर नामक नगर का वर्णन प्राप्य है। यहाँ के धनाढ्य ब्राह्मणों का उल्लेख सोमदेव ने किया हैं।[2] प्रमाणाभाव के कारण इस नगर की भौगोलिक एकता नहीं निर्दिष्ट की जा सकी है।

**चित्रकूट**—आलोच्य ग्रन्थ में चित्रकूट के नरेश रत्नवर्मा को अतुल सम्पदा वाला निर्दिष्ट किया गया है।[3] इसकी समता बुन्देलखण्ड के काम्यनाथगिरि से की गई है।[4] यह पयस्वनी या मन्दाकिनी के तट पर बसा था। भारतीय साहित्य में इसका उल्लेख बहुलता के साथ प्राप्त है।[5] यह प्रयाग से दक्षिण-पश्चिम पर स्थित है।[6]

मस्त साँड़ के समान यह चित्रकूट पर्वत अति रमणीक था। इसकी गुफा ही इसका मुख है इससे निकलनेवाली जल की धारा का शब्द ही साँड़ की डकार है, इसकी चोटी ही उसकी सींग है और उस पर छाये हुए बादल ही मानो सींगों पर लगी हुई कीचड़ हैं। चित्रकूट पर्वत के नीचे बहती हुई मन्दाकिनी ऐसी जान पड़ती है मानों पृथ्वी-रूपी नायिका के कण्ठ में मोतियों की माला पड़ी है।[7]

**चिन्तामणिपुर**—नरवाहनदत्त चिन्तामणिपुर के माहात्म्य को राज्यधर से सुनकर चकित रह गया।[8] इस स्थान के समीकरण के विषय में भी हम अन्धकार में हैं।

**चिरपुर**—पूर्वकाल में चिरपुर नगर का राजा विलम्ब से वेतन देने के लिए बदनाम (कुख्यात) था।[9] प्रमाणाभाव के कारण इसका समीकरण दुर्लभ हो जाता है।

**चीन**—कथासरित्सागर में सूर्यप्रभ और सुलोचना का पाणिग्रहण संस्कार वर्णित है। कोकण के नरेश सुभट ने सभी आये हुए बराती राजाओं को भाँति-भाँति से स्वागत सत्कार किया। उक्त अवसर पर चीन के राजा सुरोह ने भी चन्द्रप्रभ के समीप दूत

---

१. महाभारत, ८५, ३३; ८८, २; ८३, ६४. भागवतपुराण, ५, १९, १८.
मत्स्यपुराण, २२, ४६. पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, श्लोक, ३५–८.
ब्रह्माण्डपुराण, १, १२, १५. रामायण, आरण्यक काण्ड, १५, श्लोक १८, २४.
रघुवंश, १३, ३३. सुत्तनिपात, पृ० १९०.

२. क० स० सा०, १२३, २१३. ३. वही, ५७, ५४; ३५, २; ५७, १७३; २८, ५१.

४. लाहा, हि० ज्या० ए० इ०, पृ० २०.

५. रघुवंश १३, ४७. पद्मपुराण, अ० २१. भगवती टीका, ७, ६.
रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग ५४, ५, २८.

६. ज० रा० ए० सो०, अप्रैल (१८९४) पृ० २३९.

७. रघुवंश, १३, ४७–८. ८. क० स० सा०, ४३, ६४.

९. 'चिरदातेत्यभूत पूर्व राजा चिरपुरेश्वरः'. क० स० सा०, ५४, १३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



भेजा था।[1] चीन नरेश की कन्या विद्युन्माला का परिणय चन्द्रप्रभ के साथ हुआ। विवाह के अनन्तर चन्द्रप्रभ आदि सुरोह से भव्य सेवा सत्कार प्राप्त करते हुए कुछ दिनों तक चीन में रहकर आनन्द से रहे।[2] मिलिन्दपण्हो में चीन के साथ भारतीय सार्थवाहों के व्यापारिक सम्बन्धों की बात कही गई है।[3]

**चेदि**—अपनी सेनाओं के साथ सहायतार्थ आए हुए पद्मावती के भाई सिंहवर्मा को सम्मानित करके उदयन ने चेदि देश ( चेदिविषयं ) का राज्य दे दिया।[4] यह वत्स जनपद के दक्षिण में यमुना नदी के पास, उसकी दक्षिण दिशा में, स्थित प्रदेश था।[5] इसके पूर्व में काशी जनपद, दक्षिण में विन्ध्य पर्वत, पश्चिम में अवन्ति और उत्तर-पश्चिम में मत्स्य एवं सूरसेन जनपद थे। चेदि जनपद का विस्तार आधुनिक बुन्देलखण्ड और उसके आस-पास के प्रदेश के बराबर माना जा सकता है।

**चोल**—सोमदेव ने वत्सराज ( उदयन ) के दक्षिण दिशा की ओर किए जाने वाले दिग्विजय-प्रयाण के संदर्भ में चोल का उल्लेख किया है। भीषण संघर्ष करने वाले उदयन ने, कावेरी का उल्लंघन करके उसे तथा चोल देश के राजा की कीर्ति को कलुषित कर डाला।[6]

अशोक के द्वितीय शिलालेख में सुदूर दक्षिण के जनपदों में चोल का उल्लेख हुआ है।[7]

**जलपुर**—सोमदेव ने इसे समुद्र के किनारे बसा हुआ नगर बताया है।[8]

**तन्मलयपुर**—तरङ्ग-संख्या १२२ में तन्मलयपुर को 'महापुरम्' के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।[9]

**ताम्रलिप्ति**—इस सुविख्यात नगर का उल्लेख सोमदेव ने पूर्व में समुद्र के निकट किया है[10] ( पूर्वाम्बुधेरदूरस्थां नगरीं ताम्रलिप्तिकाम् )। विनयपिटक की अट्ठकथा में

---

१. 'प्रजिवाय सुरोहाऽपि दूतं चीननरेश्वरः' क० स० सा०, ४४, १५९–१७१.

२. वही, ४४, १७२–१८३, ३. पृ० ३५१ ( बम्बई विश्वविद्यालय, संस्करण )

४. क० स० सा०, १९, ५८.

५. डा० मललसेकर ने चेदि जनपद को यमुना के समीप उसके पूर्व की ओर स्थित बताया है ( जि० १, पृ० ९११ )। वस्तुतः यह यमुना के दक्षिण में था क्योंकि पूर्व में तो वत्स जनपद था।

६. उल्लङ्घ्यमाना कावेरी तेन संमर्दकारिणा।
चोलकेश्वरकीर्त्तिश्च कालुष्यं ययतुः समम्॥ क० स० सा०, १६, ९५.

७. दिनेश चन्द्र सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स, पृ० १८-१९.

८. भ्रमन्नब्धेस्तटे प्राप्य नाम्ना जलपुरं पुरम्। क० स० सा०, ५६, ५१.

९. दृष्टं माया तन्मलयपुरं नाम महापुरम्। क० स० सा०, १२२, ७९.

१०. क० स० सा०, १३, ७२-३; १८, २९१; ३६, ३७; ३६, ४८, १३२, ४४, ५७, ६४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



इस नगर की सूचना मिलती है। संघमित्रा बोधिवृक्ष की शाखा को लेकर पाटलिपुत्र से नाव में बैठकर गंगा के मार्ग से ताम्रलिप्ति पहुँची थी और वहाँ से समुद्र के मार्ग द्वारा लंका गई थी।[1] ताम्रलिप्ति से समुद्र-मार्ग द्वारा सिंहल की यात्रा का उल्लेख दीपवंस[2] और महावंस[3] में भी प्राप्य है।

**तारापुर**—तारापुर का उल्लेख छप्पनवे तरंग में प्राप्य है।[4] प्रमाणाभाव के कारण इसकी एकता नहीं निर्दिष्ट की जा सकती है।

**तुम्बवन**—तरंग उनचास में इस नगरी का उल्लेख प्राप्य है। इसे दक्षिण का नगर निर्दिष्ट किया गया है।[5] यह उस तुम्बवन (आधुनिक तुमैन) से विभिन्न है जहाँ से ४५५ ईसवी का एक गुप्त-कालीन लेख उपलब्ध है।

**तक्षशिला**—इसको सोमदेव ने एक प्रसिद्ध विद्या केन्द्र के रूप में उल्लिखित किया है।[6] इसे कथासरित्सागर में वितस्ता के तट पर स्थित निर्दिष्ट किया गया है।[7] यहाँ के शासक कलिंगदत्त का उल्लेख उक्त ग्रन्थ में प्राप्य है।[8]

**तुरुष्क**—उन्नीसवें तरंग में उत्साही व्यक्तियों के लिए तुरुष्कों का देश हाथ भर का निर्दिष्ट किया गया है।[9] चीनी तुर्किस्थान को तुरुष्कों का देश कहा जाता था।

**दक्षिणापथ**—भारत के सुविख्यात 'उत्तरपथ' महापथ के अतिरिक्त सोमदेव ने दूसरे महामार्ग 'दक्षिणपथ' का भी उल्लेख किया है।[10] बुद्धघोष ने दक्षिणापथ को गंगा के दक्षिण वाला जनपद निर्दिष्ट किया है।[11] सुत्तनिपात की अट्ठकथा में (परमत्थ-जोतिका)[12] में दक्षिण-जनपदा-गामी मार्ग को 'दक्षिणापथ' कहा गया है। बावरि के शिष्यों ने संभवतः गोदावरी-तट वर स्थित अपने गुरु के आश्रम से श्रावस्ती तक का रास्ता दक्षिणापथ से ही तय किया होगा।[13] विनयपिटक में दक्षिणापथ के विषय में सूचना मिलती है।[14] सामान्यतः हम विन्ध्याचल से दक्षिण के भाग को दक्षिणापथ कह सकते हैं। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में इसका उल्लेख इसी अर्थ में हुआ है।

**द्वारकापुरी**—कथासरित्सागर में इसे द्वारवती[15] कहा गया है। सोमदेव ने इसे वाणासुर की कन्या उषा और भगवान कृष्ण के पौत्र यदुवंशीय अनिरुद्ध की नगरी

---

१. समन्तपासादिका, जि० १, पृ० ९०. २. पृ० २८

३. ११, २३-४ ११, ३८-९ १९, ६ (हिन्दी अनुवाद)

४. एकदा नृपतेर्मन्त्री तारापुरनिवासिनः' क० स० सा० ५६, ४१.

५. अस्ति तुम्बवनं नाम स्थानं दक्षिणदिग्भुवि' क० स० सा०, ४९, १७५.

६. २७, १०-१३; २८,१; ३१, ५५. ७. १७, १२. ८. २७, ७२.

९. क० स० सा०, १६, १०९. १०. वही, ५१, ९६, २५६.

११. 'गंगाय दक्खिणतो पाकटं जनपदं' सुमंगलविलासिनी, जि० १, पृ० २६५.

१२ जि० २, पृ० ५८०. १३. भरतसिंह उपाध्याय, वही, पृ० १५७.

१४. विनय पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृ० २१२. १५. क० स० सा०, ३१, २०.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



बताया है।[१] यह समुद्र के तट पर स्थित थी।[२] यह नगरी समुद्र के मध्य ऊँचे-ऊँचे भवनों से सुशोभित थी जो पर्वत-शिखरों के समान उत्तुंग भवनों से समुद्र-मन्थन के लिए पुनः समुद्र में फेंके हुए मन्दराचल के शिखर का भ्रम उत्पन्न कर रही थी।[३] महाभारत के सभापर्व में इन चोटियों को अमृत के फेन के समान धवल निर्दिष्ट किया गया है।[४] इन भवनों के कारण द्वारकापुरी सफेद बादलों के द्वारा जिस प्रकार आकाश मण्डल रमणीक लगता है उसी विधि यह नगरी सुशोभित थी।[५] शिशुपालवध का वर्णन इस नगर के संबंध में अवलोकनीय है।[६] इस नगरी का धार्मिक महात्म्य पुराणों में विशेष रूप से प्राप्य है।[७]

**देवागार**—कथासरित्सागर में देवागार स्थान का उल्लेख प्राप्त है।[८] यह नगरी सम्भवतः दौलताबाद के पर्वत पर रही होगी।[९] सोमदेव ने यहाँ स्तम्भशालभंजिका निर्दिष्ट की है।

'शाल भञ्जिका' शब्द का इतिहास बहुत प्राचीन है। अष्टाध्यायी में प्राच्यां कीडायां ( ६, ७, ७४ ), नित्यक्रीडाजीविकयोः ( २, २, १७ ) और संज्ञायां ( ३, ३, १०९ ) सूत्रों के दृष्टान्तों में शालभञ्जिका, उद्दालकपुष्पभञ्जिका आदि अनेक क्रीड़ाओं के नाम आए हैं। ये पूर्वी भारत में लोकप्रिय थीं। यह आरंभ में स्त्रियों की एक क्रीडा थी। खिले हुए साल वृक्ष के नीचे एक हाथ से उसकी डाल झुकाकर पुष्प चयनकर स्त्रियाँ परस्पर यह क्रीडा करती थीं। तथागत की माता मायादेवी लुम्बिनी-उद्यान में इसी प्रकार की शालभञ्जिका की मुद्रा में खड़ी थी, जब बुद्ध का जन्म हुआ। कालान्तर में इस भाँति, खड़ी हुई स्त्री के लिए शालभञ्जिका शब्द रूढ़ हो गया। साँची, भरहुत और मथुरा में तोरण की बडेरी और स्तम्भ के बीच में तिरछे शरीर से खड़ी हुई स्त्रियों के लिए तोरणशालभञ्जिका, शब्द चल गया था। इसी मुद्रा में खड़ी हुई स्त्री-मूर्तियाँ मथुरा के कुषाणकालीन वेदिका-स्तम्भों पर बहुशः मिलती हैं। उनके लिए स्तम्भ-

---

१. वही, ३१, ११-२०; ३१, ३२.

२. वही, ३१, २५, हरिवंशपुराण, अ० ५८, पंक्ति ९७. ३. वही, ३१, २५.

४. अध्याय ५७, पं० १९ और ४२-३. ५. हरिवंश पुराण, विष्णुपर्व, अ० ९८, पं० ७५.

६. शिशुपालवध, सर्ग ३, ३५, ३८-४०; ४३.

७. गरुड़ पुराण, अध्याय ८१, पंक्ति ५ स्कन्दपुराण, अ० २२०, २८
वराहपुराण, पृ० ८२५ पं० ४५.

८. देवागारकृते स्तम्भे भव त्वं सालभञ्जिका। क० स० सा०, १२१, १४५.
एकवा नीयमादनञ्च देवागारेक्षणाय सः। वही, १२१ १६९.
अस्थाने कुमुहूर्ते च देवागारमिदं त्वया। वही, १२१, १७८.

९. बाम्बे गजेटियर, जि० १, भाग २, पृ० ५०१ और ५३४.
रायचौधरी, स्टडीज इन इण्डियन एन्टीक्यूटीज, पृ० १३२।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



शालभञ्जिका शब्द रूढ़ हो गया। यह शब्द गुप्त-काल में चल पड़ा था। हर्षचरित में लक्ष्मी को सुभट के भुजा के जयस्तम्भ पर शोभित होनेवाली शालभञ्जिका कहा शया है।

**नग्न देश**—सोमदेव ने नग्नदेश का उल्लेख किया है। प्रमाण के अभाव में इसकी समता स्थापित नहीं की जा सकती हैं।[1]

**नर्मदा**—नर्मदा का उल्लेख सोमदेव ने दक्षिण की प्रसिद्ध नदियों के संदर्भ में किया है।[2] इस नदी के तट पर माहिष्मती नगरी की सूचना रघुवंश से प्राप्य होती है।[3]

**नागपुर**—सोमदेव ने नागपुर का उल्लेख किया है।[4] इसका नाम पाठक को कुछ वर्तमान नागपुर का स्मरण दिलाने लगता है। कथासरित्सागर के अनुसार इस पुर में देवागार और उसके प्रांगण में स्तम्भ शालभञ्जिका निर्मित थी।[5]

**नागस्थल**—सोमदेव ने मथुरा पुरी के निकट नागस्थल ग्राम का उल्लेख किया है।[6] सम्भवतः यह वही ग्राम है जहाँ पौराणिक आख्यान के अनुसार भगवान कृष्ण ने कालिन्दी नदी ( यमुना ) में कालिया नाग का दर्प-दमन किया।

**नारिकेलद्वीप**—महासमुद्र के मध्य में बहुत सम्पन्न और विशाल सुंदर द्वीप है, जो जगत् में नारिकेलद्वीप से विख्यात है। इसमें चार पर्वत मेनाक, वृषभ, चक्र और बलाहक हैं, जो दिव्य भूमिवाले हैं।[7] किसी प्रकार ताल-मेल बैठाकर वणिक् विष्णु-धर्मा ने जलयान से नारिकेलद्वीप की यात्रा की थी।[8]

**पाटलिपुत्र**—कथासरित्सागर में पाटलिपुत्र को भारतवर्ष के एक प्रधान नगर के रूप में निर्दिष्ट किया गया है[9]। इस नगर की उत्पत्ति के विषय में आलोच्य ग्रंथ में एक महत्त्वपूर्ण कथा का उल्लेख किया गया है[10]। इसे गंगा के तट पर पृथ्वी के अलंकरण के रूप में दिखाया गया है[11]। यह प्राचीन समय से ही भारत का प्रमुख विद्या का केन्द्र था[12]। प्राचीन साहित्य में इसके कतिपय अन्य नाम भी आते हैं, यथा-कुसुमपुर[13], पुष्पपुर[14],

---

१. क० स० सा०, १८, ३१४.

२. ६ ७६; १९, ९८. ३. रघुवंश, ६, ४३. ४. क० स० सा०, १२१, १४५.

५. 'तद्गच्छ नरसिंहेन राज्ञा नागपुरे पुरे।
देवागारे कृते स्तम्भे भवत्व सालभञ्जिका' ॥ वही, १२१, १४५, १.
गत्वा नागपुरं देवगृहस्तम्भाग्रपुत्रिकाम्' वही, १२१, १४९.

६. क० स० सा०, १०,१५७-१५९. ७. वही, ५३,१४-१५. ८. वही, ५३, ५४,५६.

९. क० स० सा०, २, ४७-९ ; २१, ५८ ; २९, ९६ ; ३८, ४, ४७, ७४, १०१; ५७, २५; १२२-६४; १२३, १५७, २०८, २९४, ३०७, ३१०, ३१७; १२४, १३१, २०२, २३३।

१०. वही, ३, ३, २०, ५८ ; ४, १९ ; १७, ६४. ११. वही, ३, ७५ ; ३५, ५४.

१२. वही, १७, ५६. १३. वाटर्स, २, ८७. १४. युगपुराण, पृ० ३३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



पुष्पवती[1], पुष्पाह्वपुर[2], श्रीनगर[3], पुष्पपुरी[4], पाटलिपुत्र[5], पाडलिपुत्त[6], पोलिबोध[7], पालिमबोथ[8] तथा प-लियेन[9] फु।

**पारसीक**—कथासरित्सागर में पारसीक का उल्लेख प्राप्त है[10]। हर्षचरित में इसको बित्ता भर छोटा निर्दिष्ट किया गया है[11]। पश्चिम में सासानी युग का ईरान प्रदेश पारसीकों का देश कहलाता था। कालिदास ने रघुवंश में पारसीकों का उल्लेख कियाहै[12]। त्रिविक्रम के नलचम्पू में पारसी ( पर्सिया ) से भारत में पक्षी लाए जाने की सूचना निर्दिष्ट की गई है[13]।

**पथप्रदेश**—प्राचीन काल में पद्यदेश में सुप्रसिद्ध अग्निदत्त नाम का ब्राह्मण था, जो राजा के द्वारा दान दिए गए अग्रहार ( ग्राम ) से जीवन-निर्वाह करता था[14]।

**पत्रपुर**—कथासरित्सागर में पत्रपुर को समुद्र के तट पर निर्दिष्ट किया गया है[15]।

**प्रयाग**—हिन्दुओं के एक धार्मिक तीर्थ के रूप में सोमदेव ने प्रयाग को निर्दिष्ट किया है[16]। यहाँ सित ( गंगा ) और असित ( यमुना ) नदियाँ एक दूसरे से मिलती है[17]। प्रचलित अवधारणा के अनुसार यहाँ के स्नान से स्वर्गलोक में उच्च स्थान प्राप्त होता था[18]। प्रयाग का वर्णन अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलता है[19]।

---

१. महावस्तु, ३, २३१. २. सरकार, से० इ०, पृ० २५६.
३. ए० इ०, १७, ३१०. ४. दशकुमारचरित, पृ० १.
५. दीघनिकाय, २, १६, १, २६. ६. आवश्यकचूर्णि.
७. मेक्रिण्डिल, ऐंशेण्ट इण्डिया, पृ० ६५ ८. वही, पृ० १६९.
९. बील, रिकार्डस् आफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड, १, ४.
उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, पृ० १४९–१६७.
वही, स्टडीज इन ऐंशेण्ट इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ० ९२–१०६.
१०. क० स० सा०, ११९, १०९;
११. अग्रवाल, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १६८. १२ रघुवंश, ४, ६०.
१३. नलचम्पू, ३, पृ० १६८. १४. क० स० सा०, २०. ७.
१५. ५०, १२८, १७३, १९२. १६. क० स० सा०, २० १७२ ; ५१, ३८६–८.
१७. ऋग्वेद, १०, ७५. स्कन्दपुराण, ७, ५४. १८. वही, १०, ७५.
१९. महाभारत, ८५, ७९–८३. रामायण, अयोध्या काण्ड, सर्ग ५४, पं० २–५.
अग्निपुराण, अ० १११. ब्रह्मपुराण, अ० २८.
मत्स्यपुराण, १०९, १५, १, ४, ५, ८ १, ४५, १०. वाटर्स, १, ३६६ ; २, ३७०.
रघुवंश, १३, ५५–५८. कर्मपुराण, अ० ३७. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अ० ८४.
पद्मपुराण, अ० ४५. राजतरंगिणी, ४ ३१४–१८.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



**पापशोधन**—चेदि देश में सुप्रसिद्ध पापशोधन तीर्थ था[1]। यहाँ के दर्शन मात्र से पापों का निवारण हो जाता था।

**प्रतिष्ठानपुर**—बृहत्कथा की उत्तर कालीन काश्मीरी वाचनाओं के अनुसार गुणाढ्य का गंगा और नर्मदा के तटों पर स्थित दोनों प्रतिष्ठानपुरों से अच्छा सम्पर्क रहा होगा[2]। कथासरित्सागर में दक्षिण के प्रतिष्ठानपुर का नरेश नरसिंह था[3]। पेरिप्लस की निर्दिष्ट सूचना के अनुसार भृगुकच्छ से पैठन बीस दिनों में पहुँचा जा सकता है। पद्मपुराण में प्रतिष्ठानपुर का उल्लेख है[4]। गंगा के पूर्ववर्ती तट पर स्थित प्रतिष्ठानपुर ( आधुनिक झूँसी ) पर सुविस्तृत विचार परिच्छेदान्तर में किया जा चुका है।

**पुष्कर**—सोमदेव ने तीर्थों का भी उल्लेख किया है। उनका भौगोलिक ज्ञान सुविस्तृत रहा होगा। मध्य भारत के सुविख्यात पुष्कर तीर्थ का उल्लेख आलोच्य ग्रन्थ में प्राप्य है[5]। इसकी समता अजमेर ( राजस्थान ) के आधुनिक पोखर से की गई है। यहाँ आज भी एक पुष्कर है। भारतीय परम्परा के अनुसार इस पोखरे के स्नान से स्नानार्थी के महापातक तक दूर हो जाते हैं और वह कालान्तर में स्वर्गगामी होता है[6]। भारतीय वाङ्मय में इसके उल्लेख प्राप्य हैं[7]।

**पुष्करावती**—यह उत्तर भारत का नगर था तथा प्राचीन समय में गान्धार महाजनपद की राजधानी थी[8]। यह सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर स्थित था। इसकी समता वर्त्तमान पारसदा की जाती है[9]। इसकी स्थापना भरत के पुत्र तथा राम के भतीजे पुष्कर ने की थी[10]। इसे पुष्कलावती भी कहा जाता था। बृहत्संहिता में इसे एक सम्पन्न नगर के रूप में निर्दिष्ट किया गया है[11]।

**पौण्ड्रवर्धन**—कथासरित्सागर में पौण्ड्रवर्धन की सूचना प्राप्य है[12]। इसका सभी-

---

विक्रमाङ्कदेवचरित, सर्ग १८, श्लोक ९१. अग्रवाल, मत्स्यपुराण ए स्टडी, पृ० १८२.
उदय नारायण राय, दी सिटी आफ प्रयाग इन लीजेण्ट एण्ड हिस्ट्री, दी जर्नल आफ इलाहाबाद हिस्टारिकल सोसायटी, १९६२ का अंक, पृ० १०–११.
वही, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, पृ० ९८–१०७.
वही, स्टडीज इन ऐशेंण्ट इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ० १७२–२३३।

१. क० स० सा०, ३४, ११
२. वही, ३८, ५, ३८, ८६–७ ; ५०, ११७ ; ५८, २ बृ० क० म०,
३. क० स० सा०, ३८, ५ ४. अ० १७६, श्लोक २० ५. ४५, ८३
६. स्कन्दपुराण, अ० १, १९–२३ ७. बृहत्संहिता, १६, ३१,
८. क० स० सा०, ३७, ३२; ३७, १८०.
९. आ० स० इ० ए० रि०, भाग २ ( १८७१ ), पृ० ९० और आगे।
लाहा, ऐ० जि० इ०, पृ० ५७. १०. विष्णु पुराण, जि० ४, अ० ४.
११. १४, २६. १२. क० स० सा०, १८, २५४, ३९० ; १९, १७ ; २४, ७१.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



करण हम गुप्तवंशीय अभिलेखों के पुण्ड्रवर्धन—भुक्ति से कर सकते हैं जो आधुनिक उत्तरी बंगाल का तत्कालीन प्रतिनिधि था।

**बदरिकाश्रम**—वैष्णव तीर्थों में सुविख्यात बदरिकाश्रम का उल्लेख सोमदेव ने किया है[१]। यहाँ व्यक्ति के आत्म-हत्या करने की सूचना सोमदेव के ग्रन्थ में उल्लिखित है[२]। आलोच्य ग्रन्थ में तपस्यार्थ आने वालों को निर्दिष्ट किया गया है[३]। स्नान के माध्यम से तीर्थयात्री अपने पापों को धोकर अपने देह को विमल बनाता था[४]। पद्मपुराण में इसे बदरिका भी कहा गया है[५]। बाण की कादम्बरी के अनुसार यहाँ अर्जुन और कृष्ण आए थे[६]। स्कन्दपुराण के अनुसार बदरिकाश्रम के दर्शन मात्र से ही पापियों के पाप का निवारण हो जाता है।[७] आज भी यह बर्फानी इलाके में स्थित होने के कारण छह मास तक कोई अर्चना-उपासना संभव नहीं है[८]। महाभारत और योगिनीतन्त्र में भी इस तीर्थ का उल्लेख हुआ है[९]।

**बहुसुवर्ण ग्राम**—बहुसुवर्ण ग्राम में एक सन्यासी के रहने की सूचना इस ग्रन्थ में मिलती है[१०]।

**भरुकच्छ**—कथासरित्सागर में नर्मदा के तट पर भरुकच्छ को एक प्रसिद्ध विषय बताया गया है[११]। यह अन्य नामों से भी प्रसिद्ध था, उदाहरणार्थ भृगुपुर, भरुकच्छ तथा भृगुतीर्थ[१२]। विदेशी लेखकों ने इसे बेरुगाजा[१३], वैरीगाजा[१४] तथा वेर्गोसा[१५] कहा है। कूर्मपुराण के अनुसार भृगु ने यहाँ तपश्चर्या की थी[१६]।

समुद्र तट पर इसका सन्निवेश होने के कारण[१७] भरुकच्छ ( भृगुकच्छ ) की ख्याति वाणिज्य एवं व्यवसाय के क्षेत्र में अधिक थी। दक्षिण में ताम्रपण द्वीप के साथ भरुकच्छ के व्यापारियों का समुद्री मार्ग द्वारा घनिष्ठ सम्पर्क था। सुसन्धि जातक में यहाँ के वणिकों की सुवर्ण-भूमि तक जाते हुए निर्दिष्ट किया गया है[१८]। इस नगर की एकता आधुनिक भड़ौंच से की जाती है।

**मगध**—तृतीय लम्बक के प्रथम तरंग में मगध का उल्लेख आता है।[१९] इस ग्रन्थ में प्रद्योत को इसका स्वामी कहा गया है (मगधेश्वरः)।[२०] यह उल्लेख एक ऐतिहासिक

---

१. क० स० सा०, १७, २६; ५१, ३१३. २. वही, ५, १३२. ३. वही, ७, ५२.
४. वही, ५, १३९. ५. ८५, १३, अ, २१. ६. पृ० ९४. ७. अ० १, ५३–९.
८. पद्मपुराण, उत्तराखण्ड, २, १, ७.
९. महाभारत, ९०, २७-३४. योगिनीतन्त्र; २, ६, १६७ और आगे।
१०. क० स० सा०, ७, ४९.
११. 'अस्तीह भरुकच्छाख्यो विषयों नर्मदातटे'. क० स० सा०, ६,७६. वही, ६, १६६.
१२. अल्टेकर, ऐं० टा० सि० गु० का०, पृ० ३३. १३. वही, पृ० ३३.
१४. वही, पृ० ३३. १५. स्ट्रेबो; ३, ११९. ३६. २, ४१. १७. बील. २, पृ० २५६.
१८. जातक, जिल्द ३, पृ० १८८. १९. क० स० सा०, १५, १९; २९, ७१.
२०. परिपन्थी च तत्रैकः प्रद्योतो मगधेश्वरः. क० स० सा० १५, १९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



भूल के रूप में लिया जा सकता है। सुप्रसिद्ध प्रद्योत अवन्ति नरेश था जिसकी राजधानी उज्जयिनी में प्रतिष्ठित थी। भारतीय साहित्य में मगध का उल्लेख अन्यत्र प्राप्त है।[1]

**मद्रदेश**—कथासरित्सागर में मद्रदेश का उल्लेख प्राप्य है।[2] मद्रदेश की राजधानी शाकल में वर्त्तमान थी।[3] ब्राह्मण ग्रन्थों में इसे शाकल, बौद्ध में सागल तथा यूनानी लेखों में इसे सडल कहा गया है। एरियन, कर्टियस तथा डियोडरस ने इसकी प्रचुर प्रशंसा की है। मिलिन्दपण्हों में इसे योनकानं नगरम् कहा गया है क्योंकि मिलिन्द की राजधानी यहीं स्थिति थी। नागर समृद्ध, नारियां शिष्ट एवं नगरश्री अन्वेक्षणीय थी।[4]

**मथुरा**—मथुरा का उल्लेख कथासरित्सागर में हुआ है[5]। यह सूरसेन देश की राजधानी थी। राम के भाई शत्रुघ्न ने यहाँ के शासक यादव दलन का वध करके इस नगर की स्थापना की थी[6]। यह यमुना के तट पर स्थित है। कौशाम्बी से सीधे उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर २१७ मील की दूरी पर स्थित है। इसके अन्य नामों में मधुकरी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यूनानी लेखकों ने इस नगर को देवताओं का पुर कहा है तथा उसे मेथ्रा और मेडाम्रा की संज्ञा से निर्दिष्ट किया है। सोमदेव ने मथुरा को एक प्रमुख धार्मिक केन्द्र के रूप में उल्लेख किया है[7]। इसे नानाविधि—धनधान्य एवं रत्नों में समृद्ध अंकित किया है[8]। सोमदेव की निर्दिष्ट सूचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मथुरा में रूपणिका नामक एक देवदासी थी। वह अन्य पुरुषों के साथ समागम को छोड़कर एकमात्र लोहजंघ से प्रेम करने लगी। कन्या की यह रीति देखकर नगर की समस्त वेश्याओं की शिक्षिका मकरदंष्ट्रा ने अत्यन्त दुखी होकर एकान्त में अपनी कन्या रूपणिका से कहा—बेटी तुम इस दरिद्र से क्या प्रेम कर रही हो। अच्छे व्यक्ति मुर्दे को भी छू लेते हैं गणिका निर्धन को भी नहीं छू सकती। कहाँ

---

१ अष्टाध्यायी, ४, १, १७० महाभारत, १, १२ पृ० ५६. दशकुमारचरित, प्रथम अङ्क
रघुवंश, सर्ग १, ५, ३१. सरकार, से० इ०, भाब्रू लेख, पृ०.
भागवतपुराण, ९, २२, ४५; १०, २, २; १०, ५२, १४.
१०, ७३, ३३; १०, ८३, २३।

२. ४४, १७, ६१, १०३. ३. अग्रवाल, पाणिनि कालीन भारतवर्ष, पृ० ४१.

४. लाहा, सं० जि० इ०, पृ० ३६८. ५. क० स० सा०, १०, १०५, १५७
१२, ७८ ( कृष्ण की जन्मभूमि निर्दिष्ट किया गया है )
१२, १४९ ) बौद्ध विहार की सूचना प्राप्त होती है )
३७, १००. ३४, ६८. ३२, १७९. १२, १८४. ६०, १२.

६. पार्जिटर, ऐंशेण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन, पृ० १७०.

७. १२, ७८, ९०, ९६, १२, १४९, १७९. ८. १५, ८५ ; ३४, ६८ ; ३७, १००

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



सच्चा प्रेम और कहाँ वेश्या-वृत्ति, क्या तुम वेश्याओं के इस सिद्धांत को भी भूल गई। बेटी, स्नेह करनेवाली वेश्या सन्ध्या के समान अधिक देर तक नहीं चमकती। वेश्या को तो केवल धन के लिए अभिनेत्री के समान प्रेम दिखाना चाहिए[1]। इस सूचना के आधार पर यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि मथुरा वाराणसी के तुल्य एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक केन्द्र के अतिरिक्त वेश्याओं, विट और दलालों का भी अड्डा रहा होगा[2]।

**मन्दराचल**—तरंग उन्नीस में मन्दर ( मन्दराचल ) को शिव-पार्वती के निवास-स्थान के रूप में उल्लिखित किया गया है[3]।

**मध्यदेश**—सैंतालीसवें तरङ्ग में मध्यदेश तथा वहाँ के राजा रसवर्मा का उल्लेख प्राप्य है।[4]

**माकन्दिका**—गंगा के तट पर माकन्दिका नगरी को निर्दिष्ट किया गया है।[5] सम्भव है कि इससे तात्पर्य आधुनिक कन्नौज के मकरन्द नगर से हो।

**मानसर**—हिमालयान्तर्गत सुप्रसिद्ध मानसर की सूचना आलोच्य ग्रन्थ में प्राप्य है।[6]

**मुक्तापुर**—सोमदेव ने इस नगर को हिमालय के शिखर पर स्थित बताया है।[7]

**मुक्तिपुर द्वीप**—इस द्वीप का उल्लेख कथासरित्सागर में प्राप्य है।[8] प्रमाणाभाव के कारण इसकी समता स्थापित नहीं की जा सकी है।

**मुलिपुर**—सोमदेव ने मुलिपुर नगर का उल्लेख किया है।[9] इसे वारिधि के तट पर स्थित एक द्वीप के रूप में उनके ग्रंथ में निर्दिष्ट किया गया है।[10]

**मुरल**—राजा उदयन ने करों ( करः ) से मारे हुए मुरल देश के राजाओं के सिरों की उन्नति को ही सहन नहीं किया, प्रत्युत करों से विताडित उस देश की स्त्रियों की कुचोन्नति को भी सहन नहीं किया।[11] सोमदेव ने इसका उल्लेख उदयन के दक्षिण देश के विजयों के अन्तर्गत किया है। संभवतः यह दक्षिण का कोई प्रदेश रहा होगा।

---

१. पूजाकाले सुरकुलं स्वनियोगाय जातु सा। गता रूपणिका दूरादें कं पुरुषमैक्षत॥
क० स० सा० १२, ८० वही, १२, ९०–९६.

२. प्राचीन धार्मिक केन्द्रों में आज भी उसी के समानान्तर अनिवार्य रूप से वेश्याओं के अड्डे भी पाए जाते थे। सम्भवतः इसका श्रेय देवदासी परम्परा को दिया जा सकता है। मन्दिरों में देवता के ठाट-शृंगार के लिए इनकी नियुक्ति की जाती थी।

३. इतीव इद्गआधूतवनोडवेमत मन्दरः १९, १०५.

४. क० स० सा०, ४७, १०६; ३२, १०५. ५. वही, १५, ३०.

६. 'हिमाद्रौ मानसं सरं' वही, ५६, २०६. ७. वही, ४२, १९२–२००.

८. ५०, १२०. ९. क० स० सा०, ५०, १२९, २२०; १५१ १५६.

१०. वही, ५०, १२८. ११. वही, १९, ९६.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



**मालव**—मालव का उल्लेख कथासरित्सागर में प्राप्य है ।[१] इस भूखण्ड का उल्लेख भारतीय साहित्य में अनेकत्र उपलब्ध होता है। उज्जयिनी का सुप्रसिद्ध नगर इसी क्षेत्र में स्थित था, जिसका स्थान भारतवर्ष के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में सदियों तक महत्त्वपूर्ण था। कालिदास के मेघदूत से लेकर पद्मगुप्त के नवसाहसांकचरित तक के भारतीय साहित्य में इस पुरी का मनोरम वर्णन प्राप्य है।

**यमुना**—यमुना नदी का उल्लेख तरंग संख्या ६० में प्राप्य है।[२] श्याम ( काला ) जल के कारण इसे कालिन्दी भी कहा गया है।[३] इसका उद्गम स्थान यमुनोत्तरी पर्वत है।[४] रघुवंश में उल्लिखित है कि जब राधा सुषेण जल-विहार करते हैं उस समय इनकी रानियों के स्तनों पर लगा हुआ चन्दन जल में मिलकर यमुना में बहने लगता हैं। सित (श्वेत–राधा) एवं असित (कृष्ण) के मेल के कारण उस समय गंगा एवं यमुना नदियों के संगम का भ्रम हो जाता है। इसे रघुवंश में कालिन्दकन्या भी कहा गया है।[५] भारतीय साहित्य में यमुना का उल्लेख बहुशः प्राप्य है[६]।

**रत्नकूट द्वीप**—सोमदेव ने समुद्र के मध्य में रत्नकूट द्वीप का उल्लेख किया है।[७]

**रत्नपुर**—सब नगरों में श्रेष्ठ रत्नपुर का उल्लेख सोमदेव ने किया है।[८]

**रत्नाकर**—रत्नाकरपुर का उल्लेख सोमदेव ने किया है। यहाँ के राजा का नाम ज्योतिष्क्रम था। वह समुद्रपर्यन्त पृथवी पर सफलतापूर्वक शासन करता था।[९]

**लंका**—कथासरित्सागर में लंका को सुवर्णमयी निर्दिष्ट किया गया है[१०] तथा यहाँ के राजा विभीषण का उल्लेख प्राप्य है।[११] एक बार विभीषण से कौतुक के साथ

---

१. वही, १०, ७०; १९; ९९, २०, १६६; ५२, ८९; १२०, २६.

२. ६०, ६३. ३. रघुवंश, ६, ४८. कादम्बरी, पृ० ६२. क० स० सा०, २५, ७४.

४. लाहा, हि० ज्यो० ए० इ०, पृ० १३६.

५. यस्यावरोधस्तनचन्दनानां प्रक्षालनाद्वारिविहारकाले।
कलिन्दकन्यका मधुरां गताधि गंगाभिसंसक्तजंतव भाति ॥. रघुवंश, ६, ४८.

६. ऋग्वेद, १०, ७५ ; ५, ५२, १७ ; ७, १८–९ ; १०, ७५, ५.
लाहा, ए० ज्यो० इ० पृ० ४२९–३०.। अथर्ववेद, ४, ९, १०.
ऐतरेय, ब्राह्मण, ८, १४, ४. पञ्चविंश ब्राह्मण, ९, ४ ; २, १२; १५, १०–२४, १३, ४
सांस्थायन श्रौयसूत्र, १३ २९, २५, ३३. कात्यायन श्रौतसूत्र, २४, ६, १०, ३९.
लात्यायन श्रौतसूत्र, १२, ६, २८. कालिकापुराण, अ० १५, ८

७. क० स० सा०, २६, ३ ; ३६, ५६, ५७, ६८.

८. वही, २४, ८२ ; १२३, २४९, २८५, २८६, ३२५, ३३८.

९. वही, ५९, ५९ ; १२३ २३५.

१०. वही, १२, १२४ ; ४५, १५० ; १२१, २४०, २४२. ११. वही, १२, १२४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



लोहजंघ ने पूछा कि महाराज यह लंका काष्ठमय क्यों दिखाई पड़ती है।[1] विभीषण ने इसका रहस्योद्घाटन करते हुए कहा कि गरुड़ ने कल्पवृक्ष की शाखा को समुद्र-तट पर लाकर रख दिया। उसी की पीठ पर लंका नगरी निर्मित हुई। इसी कारण यहाँ की भूमि काष्ठमयी है[2]।

**लावाणक**—कथासरित्सागर में लावाणक का उल्लेख हुआ है[3]। भास ने 'स्वप्न-वासवदत्ता' में इसको लावाणक ग्राम के रूप में वत्स जनपद के अन्तर्गत निर्दिष्ट किया है[4]। इसको समता इलाहाबाद ( उत्तर प्रदेश ) के करछना तहसील के अन्तर्गत आधुनिक 'लावायन' ग्राम से कर सकते हैं।[5] यह ग्राम गंगा के दाहिने तट पर प्रयाग से १२–१४ मील की दूरी पर स्थित है। ग्राम एक प्राचीन टीले ( खण्डहर ) पर बसा हुआ है। इस ग्राम के पृष्ठतलीय सर्वेक्षण के आधार पर इसकी प्राचीन ऐतिहासिक महत्ता पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। यहाँ बृहत सर्वेक्षण एवं उत्खनन् से महा जनपद-युगीन इतिहास के अनेक महत्त्वपूर्ण पक्षों की सूचना की संभावना की जा सकती है।

**लाट**—सोमदेव ने लाट को पश्चिमी भारत का विषय निर्दिष्ट किया है[6]। यहाँ से विद्यार्थी तक्षशिला में शिक्षा-प्राप्त करने के लिए जाते थे[7]। लाट देश का उल्लेख महावंस में प्राप्य है[8]। इसे केन्द्रीय गुजरात से समीकृत किया जाता है। इस विषय का रमणीक वर्णन मालव-संवत् ५२९ ( ४७२ ई० ) के मन्दसौर-शिलालेख में हुआ है[9]।

**लौह नगर**—लौह नगर के सम्बन्ध में कथासरित्सागर से सूचना मिलती है[10]। यहाँ के स्त्रियों के चञ्चल स्वभाव का उल्लेख सोमदेव ने किया है। यह सम्भवतः उज्जयिनी के निकट कहीं रहा होगा क्योंकि कथासरित्सागर में वणिक की वधू अपने जार के साथ भाग कर उज्जयिनी ही पहुँची थी[11]।

**वलभी**—तरंग संख्या २२ एवं २९ में वलभी का उल्लेख वैभवशाली धन-धान्य-पूर्ण एवं प्रतिष्ठित शिक्षा-केन्द्र के रूप में हुआ है[12]। गुप्त-काल में इस नगर के आर्वि-भाव की सूचना मिलती है। इसकी स्थापना भटार्क ने की थी। यह मैत्रकों की राज-धानी थी। य्वान-च्वाङ्ग ने वलभी नगर को अपने यात्रा-विवरण में निर्दिष्ट किया है। इसके अनुसार उपज, जलवायु, निवासियों की वेष-भूषा, रहन-सहन, अन्न-पान, मालवा

---

१. वही, १२,१३६. २. वही, १२,१४१–३. ३. क०स०सा०, ४४, १७०. ४. अंक १.

५. एस० एन० प्रसाद, ए नोट आन दी आइडेन्टीफिकेशन ऑफ लावाणक ऑफ भासाज़ स्वप्न-वासवदत्ता, जर्नल ऑफ ओरिएन्टल इन्स्टीटयूट, बड़ोदा, जि० २६, १९७६, पृ० ५९.

६. क० स० सा०, १९, १०४; ४७, १०६.

७. जातक, जि० १, पृ० ४४७ ८. महावंस ६।३५, ८।६-७ ( हिन्दी अनुवाद ).

९. "कुसुमभरानततरुवर-देवकुल-सभा-विहार-रमणीयात्।
लाट-विषयान्नगावृत-शैलाज्जगति प्रथितशिल्पाः"
सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, पृ० २९०.

१०. क० स० सा०, २७, १८८. ११. वही, २७,१९८. १२. वही, २२,६०; २९,७५.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



के तुल्य थी। यहाँ अनेक बौद्ध मठ स्थापित थे जिनमें हीनयान मतावलम्बी अनेक भिक्षु रहते थे। य्वान-च्वाङ्ग ने बौद्धेतर अनुयायियों की भी प्रभूत संख्या निर्दिष्ट की है। कान्य-कुब्ज-नरेश हर्ष का दामाद वहीं का शासक था। यहाँ के नागरिक सम्पन्न थे। हाटों में सुदूर से असाधारण वस्तुएँ विक्रय-निमित्त आती थीं[1]।

यह नगर शिक्षा के क्षेत्र में नालन्दा का प्रतिद्वन्द्वी था। कथासरित्सागर से ज्ञात होता है कि देश के नाना भागों से विद्यार्थी यहाँ अध्ययनार्थ आते थे। इसके अनुसार वसुदत्त का पुत्र अन्तर्वेदी से वलभी अध्ययन के लिए आया था[2]। इस समय इसकी अवस्था केवल १६ वर्ष की थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि विष्णुदत्त गंगा-घाटी का निवासी था तथा उसे नालन्दा एवं वाराणसी समीप पड़ते तथापि वह अध्ययन-निमित्त वलभी आया था। इससे वलभी की असाधारण विद्या-बिषयक ख्याति की सूचना मिलती है।

**वाराणसी**—वाराणसी नगरी का उल्लेख इस ग्रन्थ में बहुशः प्राप्य है[3]। इसमें उदयन के समकालीन यहाँ के नरेश ब्रह्मदत्त का उल्लेख मिलता है[4]। उक्त ग्रन्थ में वाराणसी नरेश विक्रमचन्द्र के भृत्य को युद्ध ( रणेष्विव ) और द्यूत में 'सर्वेषुजयी' कहा गया है[5]। दामोदर गुप्त के 'कुट्टनीमतं काव्यम्' में वाराणसी नगरी का भव्य वर्णन उपलब्ध है। इसे समस्त भू-मण्डल की अलंकारभूता ऐश्वर्य गुणों से युक्त, ब्रह्म-ज्ञानी और विद्वानों से सेवित वाराणसी नामक नगरी कहा गया है[6]। इसमें शरीर धारी समग्र उपभोगों का अनुभव करते हैं तथापि उन्हें चन्द्र-खण्ड से विभूषित शरीर ( भगवान शंकर ) में लीन होना दुर्लभ नहीं है[7]। यहाँ बहुत ऊँचे देव-मन्दिरों ( अति-तुङ्गसुरनिकेतन ) के शिखरों पर फहराई हुई और हवा से लहराती हुई वैजयन्तियों ( पताकाओं ) से आकाश मन्जरित हुआ जैसा लगता है[8]। यहाँ रमणियों के आभरणों की आवाज से समस्त दिग्भाग और आकाश इस प्रकार भर जाते हैं कि आचार्यगण त्रुटित उच्चाकरण करते हुए अपने शिष्यों का वरण नहीं कर पाते[9]। इन्द्र की नगरी अमरावती जिस प्रकार नन्दन वन से अभिराम, विबुधों ( देवताओं ) से अध्युषित, नाकवाहिनी ( देवीसेना ) से सेवित है उसी प्रकार यह नगरी आनन्दप्रद वनों से अभि-राम, विबुधों (विद्वानों) से अध्युषित, नाकवाहिनी से (गंगा) से सेवित होने के कारण मानों दूसरी अमरावती बना दी गई हो[10]।

---

१. अल्टेकर, ऐ० टा० सि० गु० का०, पृ० ५९. २. क० स० सा०, ३२, ४२–३.
३. वही, ३, २७; १९, ६१; २३, ३१–२, ४४; २४, ७१; २५, ७९; १२२, २६९-९, २९४; ३७, ९७–९९, १५०; ४०, २६.
४. वही, ३, २७–८; १९, ६१. ५. वही, २३, ३१–२.
६. कुट्टनीमतं काव्यम्, ३. ७. वही, ५. ८. वही, ६.
९. वही, ८. १०. वही, १७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



**विक्रमपुर**—तरंग संख्या ५३ में विक्रमपुर नाम के एक महान पुर की सूचना मिलती है। उक्त ग्रंथ के अनुसार इस पुर का शासक विक्रमतुङ्ग था[1]।

**विटङ्कपुर**—सोमदेव ने समुद्र तट पर विटंकपुर नगर की सूचना दी है। प्रमाण के अभाव में इसकी समता स्थापित नहीं की जा सकी है[2]।

**विजय पर्वत**—विजय पर्वत का उल्लेख उनचासवें तरंग में सोमदेव ने किया है[3]।

**वियोगपुर**—तरंग संख्या ५२ में इसका उल्लेख प्राप्य है[4]। प्रमाणाभाव के कारण इसकी एकता नहीं निर्धारित की जा सकती है।

**वितस्ता**—काश्मीर में वितस्ता को जाह्नवी भी कहा जाता था[5]। अलोच्य ग्रन्थ के अनुशीलन से ऐसी अवधारणा की सूचना मिलती है कि उत्तर भारत में गंगा की भाँति वितस्ता ( झेलम ) के साथ भी एक पूजनीय धार्मिक विचारधारा संलग्न थी। यह सिकन्दर के इतिहासकारों की 'हाइड्रेस' और टालमी की विडेपस नदी है[6]। भारतीय साहित्य में वितस्ता का उल्लेख प्राप्य है[7]। सोमदेव ने वितस्ता ( झेलम ) के तट पर तक्षशिला को निर्दिष्ट किया है[8]।

**विन्ध्यारण्य**—सोमदेव ने पर्वतों में विन्ध्यारण्य का उल्लेख सर्वाधिक किया है[9]। बृहत्कथा की उत्तरकालीन वाचनाओं में विन्ध्यारण्य के बहुशः उल्लेख से यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि गुणाढ्य इससे सुपरिचित रहा होगा। काश्मीरी वाचनाओं में गुणाढ्य के विन्ध्यारण्य में निवास की सूचना का भी उल्लेख इस दिशा में महत्त्वपूर्ण है। आलोच्य ग्रन्थ में इसे पुलिन्द[10] तथा लुटेरों[11] के निवास-स्थान के रूप में भी निर्दिष्ट किया गया है। आखेट-स्थल के रूप में विन्ध्यारण्य प्रारंभ से ही लोकप्रिय था[12]।

**वाल्मीकि-ग्राम**—कथासरित्सागर में आदि कवि वाल्मीकि के ग्राम का उल्लेख प्राप्य है[13]। अमर कृति रामायण के लेखक का आश्रम कानपुर ( उत्तर प्रदेश ) से

---

१. अस्तीह विक्रमपुरं नाम्ना पुखरं महत्। तत्र विक्रमतुङ्गाख्यो बभूव नृपतिः पुरा॥
क० स० सा०, ५३, ८६.

२. वारिधेस्तीरतिलकं तद्विटङ्कपुरं परम्। क० स० सा०, २५, ३८.

३. 'एकदा सा कररुहैर्विध्यन्ती विजेन मुहुः।' क० स० सा०, ४९, ४९.

४. 'दूरं सा नगरं प्राप वियोगपुरसंज्ञकम्', वही, ५२, २७८. ५. क० स० सा०, ३९, ३७.

६. हि० ज्यो० ए० इ०, पृ० १३५.

७. ऋग्वेद, १०, ७५५, निरुक्त, ९, २६, पाणिनि पर काशिकावृत्ति, ९, ४, ३१, भागवत-पुराण, ५, १९, १८. ८. २७, १०; ३७, ५४.

९. क० स० सा०, २, १९; ३, ३८, ४५; ५, १२७, १४१; ६, २, ७८; १०, १४२, १५०-१, १८७; ११, ९४, १२, ४५; १३, ३४; २४, १, २३, ८३; २४, ६, ४२, १११; ४५, ८८; ५१, १६१; ५३, १००; ५३, २०७; ५५, ११९। १०. वही, १२, ४५.

११. वही, १०, १८७. १२. वही, १२, ४५. १३. वही, ४६, ५३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



१४ मील दूर वर्तमान बिठूर में स्थित था। यहीं सीता ने लव-कुश को जन्म दिया था। रामायण[1] में वाल्मीकि की कुटिया को गंगा और तमसा ( वर्तमान टोंस ) के संगम तट पर निर्दिष्ट किया गया है[2]।

**शीतोदा**—शीतोदा का उल्लेख इस ग्रन्थ के अठारहवें तरंग में प्राप्य है[3]।

**शैलपुर**—इस नगर के गृह हेममय होने के कारण मेरुशिखर की भ्रान्ति उत्पन्न करते थे। सोमदेव ने यहाँ के शासक यमदंष्ट्र राक्षस का उल्लेख किया है[4]। यह वर्णन काल्पनिक प्रतीत होता है।

**सिंहलद्वीप**—सोमदेव ने भारतीय सार्थवाहों के व्यापार-वाणिज्य व्यवसाय हेतु सिंहल-द्वीप गमन की सूचना दी है[5]। यहाँ के नरेश को सिंहलेन्द्र और सिंहलाधीश कहा गया है[6]। सिंहल का उल्लेख समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में भी हुआ है। इससे तात्पर्य लंका से है।

**सुवर्ण द्वीप**—आलोच्य ग्रन्थ में द्वीपान्तर-सन्निवेश को सामूहिक रूप से सुवर्ण द्वीप की संज्ञा से अभिहित किया गया है। सार्थवाह द्वीपान्तर-गमन सर्वसम्पदा की प्राप्ति का एकमात्र उपाय समझते थे[7]।

**सुप्रतिष्ठित**—सोमदेव ने प्रतिष्ठानपुर में सुप्रतिष्ठिन नामक नगर की सूचना दी है ( प्रतिष्ठानेऽस्ति नगरे सुप्रतिष्ठितसंज्ञकम् )।[8] परिच्छेदान्तर में इस बात का निर्देश किया जा चुका है कि इससे तात्पर्य इलाहाबाद जिले के झूँसी के एक भाग से है। गुणाढ्य ने अपनी शिक्षा-दीक्षा दक्षिण में अर्जित की थी।[9] वहाँ से वह प्रसिद्ध विद्वान् होकर अपने गुणों को दिखाने की इच्छा से बहुत दिनों तक रास्ता तय करते हुए ( क्योंकि पेठन से प्रयाग पर्याप्त लम्बी दूरी पर स्थित है ) अपने शिष्यों के साथ अपने नगर सुप्रतिष्ठित में प्रवेश करते हुए उसने नगर की अपूर्व शोभा देखी।[10] इस नगर में कहीं सोमवेदी विद्वान् विधिपूर्वक साम-गान कर रहे थे और कहीं वेदों के अर्थ-निर्णय पर विद्वानों का शास्त्रार्थ चल रहा था। कहीं जुआरी अपने द्यूत-कला की डींग हाँक रहे थे। कहीं वाणिक समुदाय निजवाणिज्य कला कौशल ( ट्रेड सीक्रेट ) के रहस्य की चर्चा कर रहे थे।[11]

---

१. १, २, ३; ७, ५७-६३. २. पार्जिटर, ज० रा० ए० सो०, १८९४, पृ० २३५.
३. "तदतिक्रम्य च नदी शीतोदा नाम पावनी" –१८, २३४, ३५०.
४. क० स० सा०, ४२, १२३-५. ५. वही, ५६, ६२.
६. वही, १२०, ८६; ८९, ९०, ९१-९२, १२६; १२१, २१९, २४६, २४९, २५२, २७१; १२२, ६, ११, १२.
७. वही, ५१, ३१८; ५३, ८६; ५३,१००, १२९; ५६, ६१–२,१४०; ५७, ७२, १६४,१७३, १२३, ११०। ८. क० स० सा०, १,६५; ६,८; ६,२४–७; ५३–९; ५९–६६, ८३.
९. कालेन तत्र संप्राप्य सर्वा विद्याः प्रसिद्धिमान्, वही, ६,२२–२३.
१०. वही, ६, २२–२७. ११. क० स० सा०, २२, २७.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



**सुन्दरपुर**—हिमालय की चोटी पर सुन्दरपुर नगर का उल्लेख प्राप्य है।[1]

**सौराष्ट्र**—सौराष्ट्र का उल्लेख आलोच्य ग्रन्थ में प्राप्य है।[2] अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने यहाँ के हाथियों को निम्नकोटि का निर्दिष्ट किया है।[3] भारतीय साहित्य एवं अभिलेखों में इसका उल्लेख हुआ है जो इसकी महत्ता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।[4]

**श्रावस्ती**—श्रावस्ती तथा यहाँ के राजा देवसेन और प्रसेनजित् का उल्लेख आलोच्य ग्रन्थ में प्राप्त है।[5] बुद्ध के जीवन-काल में सावत्थि ( श्रावस्ती ) कोसल-देश की राजधानी थी। इसकी गणना बुद्धकालीन भारत के छह महानगरों में थी। यह एक समृद्ध, वनाकीर्ण और व्यापारिक महत्त्व का नगर था। यहाँ उपभोग-परिभोग की सब वस्तुएँ सुलभ होने के कारण इसका नाम श्रावस्ती पड़ा था ( यं किं च मनुस्सानं उपभोग-परिभोगं सब्बं एत्थ अत्थीति सावत्थि )।[6] बुद्धघोष ने इसके नामकरण के सम्बन्ध में एक अन्य किंवदन्ती का उल्लेख किया है। एक बार सार्थवाह के काफिले वालों ने पूछा कि यहाँ क्या सामान है ( किं भण्डं अत्थि ) ?। इसके उत्तर में उनसे कहा गया सब कुछ हैं ( सब्बं अत्थीति )। आचार्य बुद्धघोष के अनुसार इसी उत्तर के आधार पर इस नगरी का नाम 'सावत्थि' पड़ा।[7] यह अचिखती ( राप्ती ) नदी के किनारे बसी हुई थी।

**श्रीकण्ठ**—सोमदेव ने श्रीकण्ठ विषय तथा यहाँ के नरेश आदित्यप्रभ का उल्लेख किया है।[8]

**हरिद्वार**—उत्तर भारत में स्थित वैष्णवों के पवित्र तीर्थ हरिद्वार का उल्लेख सोमदेव ने किया है।[9] महाभारत में इसे गंगा-द्वार और वैष्णव-साहित्य में मायापुरी कहा गया है। यहाँ भागीरथी हिमालय से आती है। पौराणिक आख्यान के अनुसार यहीं पर मैत्रेय ऋषि ने विदुर को श्री मद्भागवत सुनाया था।

---

१. अस्ति गौरीगुरो शैले श्रीसुन्दरपुरं पुरम्, क० स० सा०, ५०, १५.

२. क० स० सा०, ४७, १०६. ३. पृ० ५०.

४. रामायण, आदि० अ० १२. अयोध्याकाण्ड, १०. किष्किन्धाकाण्ड, ४१. महाभारत, १,१,१, पृ० ३१. पद्मपुराण, १९०,२. भागवतपुराण, १, १०, ३४; १,१५, ३९; ६,१४,१०; १०,२७,६९; ११,३०,१८. बृहत्संहिता, १९,१९. काव्यमीमांसा, ९३,९४ ( गा० ओ० सि० )

५. क० स० सा०, १५,६३; ३०, २३, २६; ३१, ४०.

६. पंपचसूदनी, जि० १, पृ० ५९. ७. वही

८. आदित्यप्रभसंज्ञस्य राष्ट्रं श्रीकण्ठदेशनम्, क० स० सा०, २०,३३;

९. क० स० सा०, ३,४,१०.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



**हस्तिनापुर**—कथासरित्सागर में मध्यदेश ( मध्यवर्त्तिषु ) को जाह्नवी के जल से पवित्र होने के कारण सर्वश्रेष्ठ माना है।[1] इसलिए मंगलाकाँक्षी नरेश अपने दिग्विजय के लिए पहले पूर्व की ओर प्रयाण करते हैं और सुरसिन्धु (गंगा) तटवर्ती देशों में निवास भी करते हैं।[2] उदयन के पूर्वजों (पाण्डवों) की राजधानी हस्तिनापुर थी।[3]

दिल्ली-मेरठ का प्रदेश कुरु जनपद कहलाता था।[4]। हस्तिनापुर इसी जनपद की राजधानी थी। अष्टाध्यायी में इसे हस्तिनापुर कहा गया है[5]। हस्तिन नामक व्यक्ति ने इसकी नींव डाली थी[6]। गङ्गा के तट पर मेरठ के मवाना तहसील में प्राचीन हस्तिनापुर के अवशिष्ट पुरातत्त्वविदो ने खोज निकाले हैं[7]। पुराणों में इसके विनाश का कारण गङ्गा की बाढ़ को बताया गया है[8]।

**हिमाचल**—हिमाचल की सूचना सातवें और बाईसवें तरंग में प्राप्त है। इसे शिव पार्वती की निवास-भूमि तथा महर्षियों की तपस्या स्थली के रूप में निर्दिष्ट किया गया है[9]।

**हेमपुर**—कथासरित्सागर में इसे समुद्र के पार बसा हुआ नगर बताया गया है[10]। सम्भवतः इसका प्रयोग सुवर्ण-भूमि में रचित किसी प्रसिद्ध स्थान के निमित्त किया गया है। यहाँ से व्यापारी प्रभूत मात्रा में स्वर्ण-लाभ करते थे।

**हरादेश**—सोमदेव ने हरादेश का उल्लेख किया है[11]। पर्याप्त साधन के अभाव में इसकी समता नहीं स्थापित की जा सकी है।

**हर्षपुर**—कथासरित्सागर के अनुसार राजा हर्षवर्मा का हर्षपुर नाम का विशाल नगर था, जिसमें सुराज्य के कारण प्रजा अत्यन्त प्रसन्न था[12]।

**क्षीरसागर**—इसका उल्लेख इस ग्रन्थ में प्राप्य है। इसे विष्णु ने आग्नेय अस्त्र से सुखा दिया था[13]। सम्भवतः दुग्ध-तुल्य धवल जल के कारण इसे क्षीर सागर कहा जाता रहा होगा।

**क्षिप्रा ( शिप्रा, सिप्रा )**—सोमदेव ने उज्जयिनी नगरी में शिप्रा नदी का उल्लेख किया है[14]। कालिकापुराण में इसे हिमालय से निकला हुआ बताकर शिप्रा को दक्षिणी

---

१. वही, १८, ६०–१. २. वही, १८, ६२. ३. वही, १८, ६३–५.

४. अष्टाध्यायी, ४, १, १७१. ५. वही, ४, २, १०१.

६. महाभारत, आदिपर्व, अ० ३, पं० ३७ विष्णुपुराण, पञ्चम अंश, अ० ३५, २२.

७. लाहा, ए० जि० इ०, पृ० ७०२. बी० बी० लाल, ऐशेंण्ट इण्डिया, नं० १०–११.

८. विष्णु पुराण, ४, २१, ८.

९. तेनैव मन्युना गत्वा तपश्चाहं हिमाचले, क० स० सा०, ७, १०९. अस्त्यम्बिकाजनयिता नगेन्द्रो हिमवानिति, वही, २२, १६ १०. क० स० सा०, ४३, २३९.

११. क०स०सा०, १२०,४१. १२. वही, ५३,९८. १३. ४६,२२०; ६०,१९४;१७,८.

१४. तत्राध्युवास क्षिप्राया मठिकां तीरसीमनि, क० स० सा०, २४, ९२.
स्नात्वा सिप्राजलेऽम्भर्च्य महाकालमुदारधीः, वही, ३७, ४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



समुद्र में गिरने की सूचना दी है[1]। कालिदास ने क्षिप्रा को अपने ग्रन्थों के माध्यम से अमर कर दिया है। अवन्ति नगरी ये, मतवाले सारसों की बोली को दूर-दूर तक फैलाता हुआ, तड़के खिले हुए कमलों को गन्ध में बसा हुआ और शरीर को सुहाने-वाला, शिप्रा का वायु स्त्रियों की संभोग की थकावट को उसी प्रकार दूर कर रहा होगा जैसे चतुर प्रेमी, मीठी-मीठी बातें ( चाटुकारी करके ) बनाकर इत्र सुघाकर और पंखा झलकाकर संभोग से थकी हुई ( सुरतग्लानिमङ्गनुकूल ) अपने प्यारी की थकावट को दूर कर देता है[2]। पुराणों में इसे पारिपात्र पर्वत से निकला हुआ निर्दिष्ट किया गया है[3]। स्कन्दपुराण में क्षिप्रा को अवन्ति में बहने वाली उत्तर-वाहिनी नदी कहा गया है[4]। जैन ग्रन्थ आवश्यक चूर्णि में क्षिप्रा का उल्लेख है[5]।

**त्रिभुवनपुर**—त्रिभुवनपुर का त्रिभुवन नामक राजा था[6]। यह तन्जौर रेलवे स्टेशन के निकट त्रिरुविएमदूर है[7]।

**त्रिकूटपताका**—इस नगरी का उल्लेख समीक्ष्य ग्रन्थ में प्राप्त है[8]। यह अपरान्त प्रदेश में स्थित रहा होगा[9]। इसका नाम त्रैकूटक वंश के आधार रक्खा गया है[10]। काश्मीर में भी एक त्रिकूट नामक स्थान की सूचना प्रिन्सेप ने दी है[11]।

---

१. कालिकापुराण, अ० १९, पृ० १४, १७.

२. यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः।
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः॥ मेघदूत, पूर्वमेघ, ३३
सिप्रातरङ्गानिकलम्पितासु विहर्तुमुद्यानपरम्परासु, रघुवंश, षष्ठ, सर्ग, ३५.

३. हरिवंशपुराण, १६७, ९५०९. ४. लाहा, रिवर्स आफ इण्डिया, पृ० ४०.

५. पृ० ५४४.

६. पुरे त्रिभुवनास्येऽङ्ग राजा त्रिभुवनामिवः।
तत्र में सुचिरं सेवामेकः पाशुपतो व्यधात्॥ क० स० सा०, ५६, २१२.

७. लाहा, हि० ज्यो० ए० इ०, पृ० १९५.

८. क० स० सा०, ४६, १५३. ९. राय चौधरी, स्टडीज इन ऐन्टीक्यूटीज, पृ० १३२

१०. वही, पृ० १३२.रघुवंश, ४, ५९. रेप्सन, आन्ध्र क्वायन्स, १३.

११. प्रिन्सेप, ओरिजिन ऑफ दी सिक्स पावर, अध्याय, ३।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

# परिशिष्ट–१

## प्राचीन तथा प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत में देववासी–परम्परा के कतिपय अभिलेख––उद्धरण।

अभिलेखों के माध्यम से प्राचीन तथा प्रारम्भिक मध्ययुगीन भारत में देवदासी-परम्परा का अध्ययन निःसन्देह भारतीय संस्कृति के धार्मिक और सामाजिक पक्ष का एक रोचक अनुसन्धान होगा। प्राचीन भारत में स्त्रियों का एक वर्ग था जो कि कुलीन धर्मपत्नी के बन्धनों से मुक्त था। उन्हें वेश्या ( गणिका ) की संज्ञा प्रदान की गई थी। वात्स्यायन ने कामसूत्र[1] में लिखा है कि चौंसठ कलाओं में पारंगत वेश्यायें अपने कार्य में दक्ष होंगी तथा उनके लिए उज्ज्वल भविष्य प्रतीक्षा कर रहा होगा।

प्राचीन भारत में श्रेष्ठ कोटि की गणिकाओं के अतिरिक्त निस्सन्देह निम्न श्रेणी की अथवा सस्ती वेश्यायें भी रही होगी[2]। संस्कृत भाषा के प्राचीन वाङ्मय के गंभीर अध्ययन से श्रेष्ठ कोटि की वेश्याओं के गुण, रूप, धन, उनकी कलात्मक विद्वत्ता तथा उनके द्वारा अधिकृत समाज में सम्मानित स्थान की अच्छी जानकारी मिलती है। उनका स्थान किसी भी संदर्भ में क्लासकी ग्रीस के एसपेशियस और फ्रीन्स से कम न रहा होगा[3]।

मध्ययुगीन भारत के देवालयों में असंख्य वेश्यायें कार्य करती थीं। सभी प्राचीन धर्मों में, उदाहरणार्थ बेबीलोन, मिस्र और ग्रीस में वेश्या-वृत्ति का सम्मानित स्थान था। धर्म के ठेकेदार पुरोहितों ने मंदिर की आय-वृद्धि, शोभा-संरक्षण तथा जनाकर्षण हेतु इसको प्रश्रय दिया। प्राचीन विश्व में वेश्यावृत्ति को जघन्य कृति अथवा गर्हित दृष्टि से नहीं देखा जाता था[4]।

सामाजिक व्यावसायी वेश्याओं के अतिरिक्त, गणिकाओं का अलग एक और वर्ग था जिसे देवदासी कहते थे। मंदिर के साथ इनका बहुत प्राचीन समय से संपर्क था[5]।

---

१. कामसूत्र–वात्स्यायन; १–३; पृ० ४१–४२ ( निर्णय सागर प्रेस, द्वि० सं० )

२. हेस्टिंग्स; जे०, इंसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एण्ड इथिक्स, जिल्द १०, पृ० ४०६–४०८ कूक, प्रास्टीट्यूशन इन इण्डिया।

३. वैशम, ए० एल०; वण्डर दैट वाज़ इण्डिया, पृ० १८३.

४. थामस; पी, इण्डियन वोमन थ्रू दी एजेंस, पृ० २३६–२४०, एशिया पब्लिशिंग हाउस ( १९६४ ), लन्दन।

५. मजूमदार; बी० पी०, सोशियो-एकानमिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया (१९६०), पृ० ३७१.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



देववासी प्रथा की प्राचीनता, भारत के संदर्भ में रहस्यों के आवर्त्त में उलझी हुई है। विश्व की प्राचीनतम् सभ्यताओं में इस प्रथा के प्रचलन की परम्परा थी परन्तु दुर्भाग्यवश भारतीय सभ्यता के संदर्भ में ऐसा कोई उल्लेख सुलभ नहीं है। प्रो० बैशम का अनुमान है कि देवदासी प्रथा प्रागैतिहासिक सैन्धव नगरों में प्रचलित थी[1]। स्पष्ट प्रमाणों के अभाव में यह मत विवादास्पद हो जाता है।

देवदासी-परम्परा का सब से प्राचीनतम लिखित प्रमाण रामगढ़ के गुहा—अभिलेख से मिलता। इसमें दो प्राकृत भाषा में लिखे हुए अभिलेख हैं जिनकी लिपि अशोक कालीन ब्राह्मी के कुछ ही बाद की होगी। इस अभिलेखीय साक्ष्य के आधार पर भारत में देवदासी प्रथा की प्राचीनता को कम से कम मौर्य-युग अथवा उससे लगे हुए काल में रक्खी जा सकती है[2]। सम्भव है कि देवदासी प्रथा पूर्व काल से ही प्रचलित रही हो। अशोक के एक अभिलेख[3] से विदित होता है कि उसने धर्म के क्षेत्र में संगीत एवं नृत्य को बहुत अधिक हतोत्साहित किया था।

अभिलेखों में देवदासी प्रथा के वर्णन का विचार महत्त्वपूर्ण होने के अतिरिक्त भारत के असामाजिक पात्रों का एक रोचक अध्ययन भी है[4]। रामगढ़ के अभिलेख इसीलिए महत्त्वपूर्ण है कि वे देवदासी प्रथा के प्राचीनतम लिखित साक्ष्य हैं[5]।

---

१. बैशम, वही, पृ० २७.

२. ब्लाच, टी०, आर्वयोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, १९०३–०४; पृ० १२३; ब्लाच ने इसको अंग्रेजी भाषा में अनूदित भी किया है।

३. एक चा समाजा साधुमता–अशोक का अभिलेख—
वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, पृ० १०७।

४. स्वर्गीय डॉ० मोती चन्द्र, बम्बई के प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम के भू० पू० निदेशक ने लेखक को अपने एक पत्र में प्रसन्नता व्यक्त की है कि वह प्राचीन भारत के असामाजिक पात्रों पर कार्य कर रहा है, जिसे विद्वानों ने अभी तक लगभग अनदेखा ही छोड़ दिया था।

५. आ० स० इ० ए० रि०, १९०३–०४, पृष्ठ १२४.
वैसे तो संभवतः इस प्रथा का प्रचलन ऋग्वेद-काल में भी था जैसा कि 'दी ओसन आफ स्टोरी' के सम्पादक एन० एम० पेंजर मानते हैं परन्तु कतिपय साक्ष्यों के आधार पर सहसा कोई मत स्थापित नहीं किया जा सकता है। देवता और वारांगनाओं के सम्बन्ध का उल्लेख महाभारत के वन पर्व में मिलता है। यहाँ उर्वशी कहती हैं हम तो देवताओं की वारांगनाएँ हैं, तपस्या से ही हमारा रमण सम्भव है अन्यत्र महाभारत में रुष्ट होकर विदुर ने एक स्थल पर इनकी भर्त्सना की है दासी भावेन कृष्णान्च भीवतुकामाः सुतास्तव। महाभारत से यह स्पष्ट नहीं है कि वे वास्तव में मंदिरों से सम्बद्ध थीं या यह वेश्याओं का ही एक वर्ग था।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



रामगढ़ के इन दो प्राकृत अभिलेखों में से एक पद्य में तथा दूसरा गद्य में है। टी० व्लाख तथा डॉ० बैशम ने इनके अंग्रेजी अनुवाद दिए हैं।

टी० व्लाख के अंग्रेजी-अनुवाद का लेखक द्वारा हिंदी रूपान्तर :—

( १ ) कवि जो प्रकृति द्वारा पूजित है हृदय को प्रज्वलित करते हैं जो—

( २ ) वसन्तोत्सव के वासन्ती पूर्ण चन्द्र, जबकि केलि और संगीत की अधिकता होती है, के समय व्यक्ति ( ? ) घने माधवी पुष्पों को बाँधते हैं ( उसकी माला को गले के चारों ओर )

दूसरे अभिलेख[1] का लेखक द्वारा हिंदी रूपान्तर :—

( १ ) सुतनुक नाम की

( २ ) एक देवदासी

( ३ ) सुतनुक नाम की एक देवदासी।

( ४ ) युवक श्रेष्ठ उसे प्यार करता है।

( ५ ) देवदीन उसका नाम है, वह मूर्तिकला में पारंगत है।

इन दोनों अभिलेखों का अनुसार डा० बैशम ने किया है।[2] मेरे विचार से इनका अनुवाद मूल के अधिक निकट है। इनके अनुवाद का हिन्दी रुपान्तरण :—

**प्रथम अभिलेख**—कवि, जो कि प्रेमियों का नायक है, उनके हृदयों को उत्तेजित करता है जिनमें प्रणय-वासना भरी हुई है। यह प्रणय के झूले पर चढ़ती है जो कि परिहास और कलंक का साधन है। किस प्रकार वह प्रेम में इतनी निमज्जित हो गई है।

**दूसरा अभिलेख**—'मनुष्य-श्रेष्ठ चित्रकार देवदीन देवदासी कन्या सुतनुका को प्रेम करता है।'

रामगढ़ के अभिलेखों की लिपि अशोक के अधिक बाद की नहीं है। अतः इनके अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि देवदासी-प्रथा भारत में अशोक लिपि के कुछ बाद अवश्य प्रचलित रही होगी। इसके अतिरिक्त इसके अनुवर्ती कालों ( शुंग कुषाण तथा अन्य ) में इस प्रथा का उल्लेख किसी भी अभिलेख में नहीं हुआ है। पुनः एकाएक एक दीर्घकालीन व्यवधान के उपरान्त हर्ष के पश्चात् प्रारंभिक मध्ययुगीन तथा मध्ययुगीन अनेक अभिलेखों में देवदासियों का उल्लेख बहुशः हुआ है। ऐसा प्रतीत प्रतीत होता है कि शताब्दियों के व्यवधान के बाद देवदासी प्रथा ने पुनः धर्म के क्षेत्र में प्रबल रूप से स्थान ग्रहण किया। प्रारंभिक मध्ययुगीन धर्म में देवदासियों की परंपरा हिन्दू धर्म की विशिष्ट प्रथा रही है। इस काल में देवताओं को एक लौकिक सम्राट की भाँति माना जाता था। लौकिक सम्राट की भाँति उसके भी स्त्रियाँ, मंत्रिमण्डल तथा सेवक होते थे। संक्षेप में मंदिर के वातावरण में एक संपूर्ण राजशाही दरबार के

१. वही, फलक सं० ४३ ( ए० ) २. वही, फलक सं० ४३ ( बी० )

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



वातावरण का ठाट होता था। उनकी सेवा के लिए वेश्यायें नियुक्त की जाती थी।[1] वे देवताओं की परिचर्या, नृत्य और उनके सामने गायन-वादन करती थीं। लौकिक सम्राट के सेवकों की भाँति वे दरबारियों को अपना प्रेम भी देती थीं जिन्हें सम्राट मानता था। इस संदर्भ में देव-मंदिरों की वेश्यायें उसे समर्पण करती थीं जिस पुरुष आराधक ने मंदिर को उनका पर्याप्त शुल्क दे दिया हो।[2]

अरबी पर्यटक अबूज़ैद-अलहसन[3] ( ८६७ ई० में भारत की यात्रा की थी ) ने देवदासियों का उल्लेख किया है। उसके विवरण के अनुसार भारत में नगर-बधुएँ हैं जिन्हें देवदासी कहते हैं। इनकी उत्पत्ति की कथा उसने इस प्रकार दी है। स्त्रियाँ सन्तान होने के लिए मनौती करती हैं, यदि उन्हें सुन्दरी कन्या उत्पन्न होती हैं तो वह नवजात कन्या को मंदिर में ले जाती हैं, मूर्त्ति की आराधना करके उसे वहीं छोड़ देती हैं। कालान्तर में किशोरावस्था प्राप्त करने पर उसे सार्वजनिक मंदिर में एक कमरा मिल जाता है और वह दरवाजे के सामने पर्दा लगा लेती है। अपरिचित ग्राहकों, जो हिन्दू धर्म के अथवा अन्य किसी धर्म के समर्थक हैं, की प्रतिक्षा में बैठी रहती हैं। उनके लिए इस प्रकार का विषयोपभोग वैधानिक था। इस विषयोपभोग का शुल्क पूर्व निर्धारित था इस प्रकार अर्जित आय पुरोहित के हाथों में सौंप देती थीं। इससे वे मंदिर की रक्षा एवं देख-रेख किया करते थे।

प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत में इस प्रथा ने पुनः जोरदार रूप धारण किया। इसका श्रेय बहुत कुछ पौराणिक नित्य उपासना को भी है। शिव, विष्णु तथा उनकी पत्नियों की उपासना ने भारत में विशाल मंदिरों को जन्म दिया। इन पौराणिक देवताओं ने परिश्रमी, घुड़सवार, सोमप्रेमी, माँसभक्षी इन्द्र आदि कठोरकर्मी देवताओं का स्थान ले लिया। नवीन देवताओं के मनोरंजन तथा आनन्द परिश्रमी वैदिक देवताओं से भिन्न थे। वे मुलायम कौषेय आसनों तथा फल-फूल-दूध तथा सुगन्ध का सेवन करते थे। इन देवताओं के आनन्द के लिए नृत्य एवं संगीत का कार्यक्रम करने हेतु भारत में वेश्याओं की नियुक्ति मंदिरों में की गई।[4]

अधिकांशतः देवदासी की कन्या देवदासी ही होती थीं। संभवतः प्रारंभ में वे सामान्य नागरिकों की कन्याएँ होती थीं, जिन्हें शैशवकाल में ही देवता को भेंट के रूप में वे दे आते थे। प्रत्येक नगर के मंदिरों में सुन्दरी देवदासियाँ रहती थीं।[5] दुर्भिक्ष आदि के समय दरिद्र माता-पिता अपनी कन्याओं को, अपनी उदरपूर्त्ति के लिए बेंच देते थे तथा उनको मंदिर के पुरोहित क्रय कर लिया करते थे। कभी-कभी धार्मिक वृत्ति

---

१. बैशम, वही, पृ० १८५. २. वही, पृ० १८५.
३. ऐशेण्ट एकाउण्ट्स आफ इण्डिया एण्ड चाइना ( १७३३ का सं० ), पृ० ८८.
४. पी० थामस, वोमेन थ्रू दी एजेस, पृ० २३७–२४०. ५. वही, पृ० २३८.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



के माता-पिता अन्य विश्वास में पड़ कर स्वतः भगवान की शरण में अपनी कन्याओं को समर्पित कर अपने को महान धार्मिक मानते थे।[1]

बुरे नक्षत्रों के योग में जन्मी अथवा अशुभ चिह्न और लक्षणयुक्त कन्या को परिवार में अमांगलिक समझा जाता था। माता-पिता परिवार को अमंगल से बचाने के हेतु देवमंदिरों में जाकर उन्हें देवताओं की सेवा में समर्पित कर देते थे।[2]

य्वान् च्वांग ( ७०० ई० ) के समय तक देवदासी-प्रथा भारत में भलीभाँति प्रचलित हो चुकी थी। भारत-यात्रा के समय 'मु-लो-सान-पुतो' ( मुल्तान ) के सूर्य मंदिर में उसने विशाल संख्या में सुन्दरियों को नृत्य करते देखा था। भविष्यपुराण के अनुसार सूर्यलोकाभिलाषी को मार्तण्ड के मंदिर में उन्मत्त किशोरियों के समूह को भेंट कर देना चाहिए ( ९५, ६७ )।

भारत के अन्य भागों की अपेक्षा, मंदिर-वेश्यावृत्ति का प्रचलन, दक्षिणी भाग में अधिक हुआ। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि भविष्य पुराण वाले उद्धरण को छोड़कर अन्य का सम्बन्ध शिव से है और शिव अधिकतर दाक्षिणात्यों द्वारा मान्य देवता है। इस प्रथा को उन्होंने कदाचित भू-मध्यसागर के समीपस्थ निवासियों से अपनाया होगा, वहाँ इस प्रकार की प्रथा का प्रचलन था। प्राचीन तमिल-वाङ्मय के अध्ययन से भी पता चलता है कि देवदासी की प्रथा वहाँ बहुत अधिक प्रचलित थी। दक्षिण भारत के अभिलेखों में भी देवदासी-परंपरा का अच्छा उल्लेख मिलता है। सेनापति महादेव, षष्ठ चालुक्य विक्रमादित्य के एक मंदिर के अभिलेख में[3] चालुक्य सेनापति महादेव की दिवंगत माता का उल्लेख हुआ है जिसने देश की सर्वश्रेष्ठ वेश्याओं को मंदिर के लिए दान दिया था।

इसी अभिलेख के पद सं० ६ का एल० डी० बार्नेट के अंग्रेजी अनुवाद का लेखक द्वारा हिन्दी रुपान्तरण :—

"वह जिनकी आराधना भाग्य विधायक ( विष्णु ) और वाणी के देवता ( ब्राह्मण ) करते हैं। दक्ष नर्तकियों का जो मुख्य नायक है ( जो कि देवों का प्रमुख पीठ है ) भाग्य और शक्ति उसकी मृदु इच्छा पर त्रैलोक्य को चूमती है.....।"

यह अभिलेख १११२ ई० का है। इसमें अत्यन्त काव्यात्मक ढंग से देवदासियों का स्पष्ट चित्रात्मक वर्णन प्राप्य है।

---

१. द्रष्टव्य कथासरित्सागर ( प्रथम खण्ड ) पृ० २४९ पर अनुवादक पं० केदारनाथ शर्मा की टिप्पणी। ( बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना द्वारा प्रकाशित, खृष्टाब्द १९६० )

२. पी० थामस, वही, पृ० २३९.

३. ए० इ०, जि० १३ ( १९१५–६ ) एल० डी० बार्नेट, इन्स्क्रिप्शन एट् इसई : १११२ ई०, पृ० ४१, पद सं० ३.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



उद्योतकेसरी के १८ वें अभिषेक वर्ष में संपादित ब्रह्मेश्वर मंदिर के अभिलेख का भी उल्लेख यहाँ समीचीन जान पड़ता है[1]। इस अभिलेख का मूलपाठ इस प्रकार है :—

"रत्नालङ्कृतिभूषिताङ्गसुषमा देदीप्यमाना दि ( यः )
(क्रीडन्त्य) स्तडितः स्थिरा इव कुचश्रोणीभरव्याकुलाः
सु ( न्दर्योक्षि ) कनीनिकामिव दशामत्तः प्रविष्टा नृणा-
मस्मै चंचलकर्णजगहनयना दत्तासूतया दारिका।"

श्री वैद्यनाथ का प्रशस्ति-लेख[2] बारहवीं शताब्दी के अंतिम तथा तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल का है :—

"पीयूषे मधुराधरे नयनयोः प्रान्तेव यासो स्मरः
कर्यसूतम्भनमोहनादिसुदशाँ वक्त्रै नितम्बादिषु।
उधद्धषण वस्तुजातमतिलं भुष्य यदंगाश्रित
तास्तास्तने विडिम्बताम्बरचरी रूमा शिवायं...

इस अभिलेख के विषय में सुधाकर पटनायक का विचार है कि निस्सन्देह यहाँ सोभनेश्वर मंदिर की देवदासियों का उल्लेख हुआ है। आज भी यहाँ के कंबाकुल ग्राम के एक मठ में देवता को गीत सुनाने के लिए मंदिर का पुरोहित उत्सव के अवसर पर गायक-लड़कियों को नियुक्त करता है।

प्रारंभिक मध्ययुगीन अभिलेखों के प्रशस्तिकारों ने देवदासियों के शारीरिक सौन्दर्य—वर्णन, सुगठित मांसपेशियों, कोमल तन्तुओं से बने मसृण शरीर, उन्मत कुचों तथा भारी भरकम नितम्बों की मुक्तकण्ठ से काव्यात्मक व्याख्या की है।

कतिपय उत्सवों में भी ऐसी कुछ वासनात्मक प्रवृत्तियों को पूर्ण प्रश्रय मिला था। जो कुछ भी हो गंभीर इतिहासकारों को इससे महती प्राचीन भारतीय संस्कृति के लड़खड़ाते हुए चरणों का ही दिग्दर्शन हो पायेगा[3]। उन्हें देवदासियों के थिरकते अंगों तथा उनके घुंघरुओं की झनझनाहट तथा वासना के सागर में रस नहीं मिलेगा।

---

१. पी० आचार्या, दी ब्रह्मेश्वर टेम्पुल इन्सक्रिप्शन आफ दी एट्टीन्थ रेगनल इयर आफ किंग, उद्योतकेसरी, ज० रा० ए० सो० बं०, जि० १३ ( १९४७ ) पृ० ७१ पद १७।

२. सुधाकर पटनायक, सोभनेश्वर इन्सिक्रिप्शन ऑफ वैद्यनाथ, ज० बि० उ० रि० सो०, जि०, १७ ( १९३१ ), पृ० १२८।
मेक्डानल और कीथ ; ए वैदिक इण्डेक्स आफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स, लन्दन, १९१२, जि० १, पृ० ३९५ ; जि० २, पृ० ४८०।
दी औसन आफ स्टोरी ; जिल्द १, परिशिष्ट ४ ; सेक्रेड प्रास्टीटयूशन; प्रोसीडिन्स आफ फोर्थ ओरियण्टल कान्फरेन्स, पृ० ६९३ ;
जोगेन्द्र चन्द्र घोष, इण्डियन कल्चर, जि० ३, ५२०-२४।

३. मजूमदार; बी० पी०, वही, पृ० ३७७

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



यहाँ आरंभ में यह उल्लेख करना अधिक समीचीन होगा कि तान्त्रिक उपासना पद्धति का प्रचलन इस समय जोरदार रूप में हो गया था। तत्कालीन मध्ययुगीन समाज की ऐसी उपासना—पद्धति में घोर आस्था थी। तान्त्रिक उपासना की पद्धति ने अपने समय में हिन्दू धर्म के अतिरिक्त बौद्ध धर्म में भी लोकप्रिय स्थान प्राप्त कर लिया था। कुछ तन्त्रग्रन्थ तो मैथुन-संबंध को धार्मिक अनुष्ठान का अंग मानते हैं[1]। प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत में तांत्रिक पद्धति ने भारत के समस्त धर्मों को प्रभावित कर रखा था। ऐसे वातावरण में पौराणिक धर्म सब से अधिक प्रभावित हुआ। कालिकापुराण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस उत्सव के अवसर पर जननेन्द्रियों से संबंधित गीत गाये जाते थे[2]। संभवतः मैथुन भी होता था जिसमें शारीरिक अंगों का पर्याप्त रूप से संचालन करना पड़ता था अन्यथा उनकी ऐसी अवधारणा थी कि इसका उल्लंघन भगवती को रुष्ट कर देगा।

देवदासियाँ केवल राज्य-मंदिरों में ही नहीं पाई जाती थी प्रत्युत्त उत्साही व्यक्तियों द्वारा निर्मित देवायतनों में भी वे उसी प्रकार लोकप्रिय रहीं[3]। विजयसेन[4] के देवपारा प्रस्तर अभिलेख में देववासियों के लावण्य एवं शारीरिक गठन का चित्रात्मक वर्णन उपलब्ध है। यह अभिलेख ११००–१२०० ई० का है। कीलहार्न[5] ने उसे अंग्रेजी भाषा में अनूदित किया है। इसमें देवदासियों के शारीरिक सौन्दर्य तथा भड़कीले एवं चमकीले रंगों वाले परिधान का मोहक वर्णन प्राप्य है।

स्वप्नेश्वर का मेघेश्वर अभिलेख १२०० ई० का है[6]। इस अभिलेख में देवदासियों

---

१. वही।

२. सुवासिनीभिः कुमारीभिर्वैश्याभिर्नर्तकेस्तथा।
शंखतूर्यनिनादैश्च मृदंगैः परधैस्तथा ॥ १९ ॥
ध्वजैर्वस्त्रैर्व विविधैर्लाजिपुष्पप्रकीर्णकैः।
धूलिकर्ममविक्षेपैः क्रीडाकौतुकमंगलैः ॥ २० ॥
मगलिंगामिधानेश्य मगलिंगप्रगीतकैः ॥ २१ ॥
परेनांक्षिप्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपेद्यदि।
कुद्धा भगवती तस्मै शापं दद्यात्सुदारुणम् ॥ २२ ॥

३. ए० इ०, जिल्द १, पृ० ६१–६६ पद सं० १७ ( १८९२ ), (अ० स० इ०, जिल्द ११, पृ० १ अ० कनिंधम) कीलहार्न, एफ० बदायूँ स्टोन इन्स्क्रिप्शन आफ लखनपाल।

४. वही, कीलहार्न देवपारा इन्स्क्रिप्शन आफ विजयसेन, पृ० ३०५, पद सं० ३० ( ज० ए० सो० ब०, जि० ३४–वही, पृ० १२८–५४ )

५. वही, पृ० १२८–५४

६. कीलहार्न, ए० इ०, जिल्द, ६ पृ० १९८–२०५; ज० रा० ए० सो०, जिल्द ६६, भाग १, पृ० ११, प्रिन्सेप, ज० ब० ए० सो०, जिल्द ६, पृ० ८९ और २८०।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



का वर्णन दर्शनीय है। कीलहार्न ने भूवनेश्वर के अभिलेख को अंग्रेजी में अनूदित किया है। उसका हिन्दी रूपान्तर लेखक ने इस प्रकार किया है :—

"उसने एक भव्य विशाल भगवान् ( शिव ) मेघेश्वर का मंदिर बनवाया है। उसने जो कि मेघों के स्वामी हैं उनको सैकड़ों दासियाँ दी हैं।" भुवनेश्वर का दूसरा अभिलेख विद्वान भवदेव बालवल्लभ भुजंग के विद्वत्ता की प्रशस्ति है। उक्त अभिलेख के अनुसार इसने भी सैकड़ों दासियाँ हरिमेध ( विष्णु ) को दीं हैं[1]।

जोजल्लदेव के वि० सं० ११४७ ( १०९० ई० ) के अभिलेख में देवदासियों को वाद्य, नृत्य और गान करते हुए निर्दिष्ट किया गया है[2]। इस अभिलेख से पता चलता है कि देवदासी-परंपरा का भारत में बहुत अधिक प्रचलन था। तत्कालीन कवियों ने मंदिरों की देवदासियों का आंगिक वर्णन अत्यन्त भाव-विभोर होकर किया है[3]।

अल्बेरूनी के अनुसार मंदिरों की वेश्यावृत्ति से अर्जित आय से राजा अपने सैन्यसंगठन के व्ययों को पूरा करता था। परोक्षतः यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि मंदिरों में वेश्याओं पर बहुत अधिक राजकीय कर लिया जाता था, अन्यथा सैन्य संगठन, जो किसी भी राज-तन्त्र का सब से अधिक खर्चीला आयाम होता है, की पूर्ति नहीं हो सकती थी[3]।

नाडौल के द्वितीय अभिलेख ( सं० १२०० ई० १२५७ ) के अनुसार देवदासियों से राजकीय कर लिया जाता था तथा उस कर को 'दशबंध' कहते थे। देवदासियों से प्राप्त कर राज्य की आय का प्रमुख साधन था।

ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दियों में ऐसा प्रतीत होता है कि देवदासियों की संख्या में असाधारण रूप से वृद्धि हो गई थी। डा० घोषाल के अनुसार केवल गुजरात के चार हजार मंदिरों में दो हजार से अधिक देवदासियाँ थीं[4]।

अभिलेखीय साक्ष्यों से यह प्रमाणित हो जाता है कि देवदासी की परंपरा राज-तंत्र में पुरोहित द्वारा आई होगी। संभवतः मंदिरों से उन्हें कम आर्थिक सहायता प्राप्त थी तथा मंदिर-कार्यक्रम के अवकाश में उन्हें व्यक्तिगत कार्य करने की छूट थी। कई देवदासियाँ धन और उदारता के लिए विख्यात थीं[5]। वे व्यक्तिगत कार्यों में, सामाजिक उत्सवों के अवसरों पर राजाओं अथवा समृद्ध परिवारों में नृत्य एवं गायन-वादन किया करती थीं। इससे इन्हें बहुत अधिक धन उपलब्ध होता था।

---

१. वही, पृ० २०६, पद २९

२. ए० इ०, जिल्द ११ ( १९११-१२ )—रायबहादुर वी० केनकाय तथा ( पृ० २४१ से ) स्टेन कोने द्वारा संपादित पृ० २६, डी० आर० भण्डारकर, दी चाहमान्स आफ मेवाड़'।

३. ए० इ०, जिल्द ११, पृ० २६।

४. साचो, जि० २, पृ० १५७

५. यू० एन०, घोषाल, दी स्ट्रगल फार हम्पायर, पृ० ४९५-९६

६. पी० थामस, वही, पृ० २३९-४० ( लन्दन )—१९६४

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



सोमनाथ का प्रसिद्ध शिव-मन्दिर १०२६ ई० में गजनी के महमूद द्वारा विध्वस्त किया गया था। यहाँ अहर्निश ५०० देवदासियाँ मंदिर की प्रतिमा के समक्ष गायन प्रस्तुत किया करती थीं[1]। मंदिर की ख्याति देवदासियों की संख्या एवं सुन्दरता पर आश्रित होती थी। वे अधिक से अधिक संख्या में तीर्थयात्रियों का ध्यान आकर्षित करती थीं।

साहित्यिक साक्ष्यों के माध्यम से प्रमाणित होता है कि प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत में कतिपय स्त्रियों के वर्ग के चरित्र में कितना अधिक खोखलापन एवं भ्रष्टाचार फैला हुआ था। कल्हण की राजतरंगिणी से पर्याप्त रूप से प्रकाश पड़ता है कि राजप्रासादों एवं राजघरानों में वासना की प्रवृत्ति सीमा लाँघ चुकी थी। क्षेमेन्द्र के देशोपदेश से पता चलता है कि उनके चरित्र का स्तर गिर चुका था।[2] दामोदर गुप्त के कुट्टिनीमतम्, क्षेमेन्द्र के समयमात्रिका, देशोपदेश तथा सोमदेव भट्ट के कथासरित्सागर[3] से पता चलता है कि तत्कालीन समाज में वेश्यावृत्ति का प्रचलन बहुत अधिक था।

राजाओं द्वारा सामान्य वेश्याओं की भाँति देवदासियों का उपभोग होता था। कुमार उत्कर्ष ने देवदासी सहजा को अपनी रखैल के रूप में रखा था[4]। अभिलेखों से इस तथ्य का समर्थन होता है कि राजाओं और सामन्तों द्वारा देवदासियों का उपभोग होता था[5]। दो अभिलेखों से पता चलता है कि राजा ने स्वयं आदेश दिया था कि वसन्तोत्सव के पर्व पर भगवान लक्ष्मण स्वामी के मंदिर में न केवल मंदिर की ही प्रत्युत बाहर की भी वेश्याएँ उनके श्रृंगार आदि के लिए नियुक्त की जायँ[6]। अभिलेख के अनुसार वे श्रेष्ठ वस्त्रों एवं अलंकरणों से सुसज्जित हों और अपने शूलपाल के साथ नृत्य, संगीत तथा वाद्य-यन्त्रों पर गाये जाने वाले गीतों से उत्सव को मनावें।

अभिलेखों से ज्ञात होता है कि प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत में कुछ विचारवान् हिन्दुओं ने भारतीय धर्म के इस विलासमय पक्ष के विरुद्ध आन्दोलन किया था। परंतु तत्कालीन राजा और सामन्त, जो अनेकों ऐसे मंदिरों के महान संरक्षक थे, ने अदम्य उत्साह एवं रुचि के साथ उन विद्रोह का दमन किया[7]।

हिन्दू धर्मशास्त्रों के रचयिताओं की दृष्टि से इस परंपरा के विषय में उनकी धारणा को जानना संबंधित युग के भारतीय समाज का एक रुचिकर अध्ययन होगा। यद्यपि प्राचीन भारत में वेश्यावृत्ति सम्मानित दृष्टि से देखी जाती थी तथापि

---

१. आर० सी०, मजूमदार, हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ इण्डियन पीपुल, जिल्द ५।
२. सुनीलचन्द्र रे, अर्ली हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ काश्मीर, १९५७, पृ० १९०।
३ कथासरित्सागर, २, ७८, ८०, १०१, २, ७४–७८ इत्यादि।
४. राजतरङ्गिणी, २-८, ५८.
५. मजूमदार, बी० पी०, वही, पृ० ३७२-७३.
६. ए० इ०, जिल्द ११, पृ० २६।
७. ए० इ०, जिल्द १, पृ० २६।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



स्मृतिकारों ने उसमें केवल वासना की गंध पाकर हेय तथा गर्हित दृष्टि से देखा है[1]। मनु के अनुसार कम से कम ब्राह्मण वेश्या से संबंध स्थापित न करे। गौतम के मत में वेश्या की हत्या करना न पाप है और न ही अपराध; अतः कानून द्वारा वह दण्ड का अधिकारी नहीं है[2]। यह तो रही धर्म की बात जिसे विद्वान् धर्मशास्त्रकारों ने धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोणों से आँका है, किंतु तत्कालीन समाज के अध्ययन से पता चलता है कि समाज की दशा इन धार्मिक उद्दात्त भावनाओं से सर्वथा भिन्न थी। आरंभिक मध्ययुग की वही ब्राह्मण जाति, जिसने प्राचीनकाल में ऐसे उद्दात्त विचारों की स्थापना की थी, स्वयं वेश्यावृत्ति को धर्म के आडम्बर में बाँधकर सैकड़ों की संख्या में वेश्याओं को मंदिरों में प्रश्रय दिया। धर्म की आड़ में वे ही ब्राह्मण वेश्याओं के सबसे बड़े संरक्षक और पोषक बने। मंदिर के गंभीर धार्मिक वातावरण में नूपुरों की झनझनाहट एवं सुन्दरी रमणियों के मधुर स्वरों की गूंज ने स्थान ले लिया था। मठाधीश किसी विलासी मुगल शासक अथवा सामन्त से कम नहीं था। कृष्णकाव्य में गोपियों के साथ विहार आदि की मधुर कल्पनायें संभवतः उसी मध्ययुगीन विलासप्रिय धार्मिक समाज की देन है। परन्तु इस पर प्रामाणिक रूप से बिना विशेष अध्ययन के कुछ भी कहना उचित नहीं है।

देवदासियों ने धीरे-धीरे धर्म के माध्यम से सामाजिक और फिर राजनीतिक क्षेत्र को भी अपने विषधर पंजों में दबोच लिया, जिससे निकलना उस समय पुरोहित, राजा एवं व्यक्ति का असंभव प्रयत्न था। मंदिर के कार्यों के समापन के बाद उन्हें छूट थी कि वे स्वतन्त्र होकर व्यक्तिगत रूप से धनार्जन कर सकती थीं। वे अपने ऐसे अवकाश के क्षणों को राजाओं और सामन्तों के रनिवासों में, समाज के महान श्रेष्ठी के यहाँ, भोग-विलास में व्यतीत किया करती थी। इतिहास में ऐसे पात्रों का अध्ययन निस्सन्देह एक विशिष्ट दृष्टिकोण का अध्ययन होगा। खेद है कि ऐसे पात्रों का अध्ययन बहुत कम हुआ है।

---

१. बैशम, वही, पृ० १७६।

२. गौतम धर्मशास्त्रः, २२. २७।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

# परिशिष्ट २

## कायस्थ

प्रारम्भिक मध्ययुग में एक नवीन जाति का प्रादुर्भाव हो रहा था। इसके पूर्व के साहित्य एवं अभिलेखों में 'कायस्थ' का उल्लेख जाति के रूप में न होकर व्यवसाय के संदर्भ में हुआ है। प्रारंभ से ही कायस्थ समाज का एक बुद्धि-जीवी वर्ग था। लेखकों के व्यवसाय ने प्रारंभिक मध्य युग में जाति के संकीर्ण बन्धनों में बँधना प्रारम्भ कर दिया था। अतः प्राचीन चार्तु-वर्ण व्यवस्था में "कायस्थ" को खोजना अनुचित है क्योंकि इसका विकास जाति के रूप में प्रारंभिक मध्ययुग में ही हुआ है।

धर्मसूत्र साहित्य में "कायस्थ" शब्द नवीन है। प्रसिद्ध वैय्याकरण पाणिनि तथा पतंजलि ने "कायस्थ" शब्द का प्रयोग नहीं किया है। यदि खृष्टाब्द से पूर्व कायस्थ का प्रादुर्भाव हुआ होता तो इन महान् वैय्याकरणों की पैनी दृष्टि से यह शब्द बच न पाता। अशोक के अभिलेखों तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में "कायस्थ" शब्द का उल्लेख नहीं हुआ है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि "कायस्थ" का मौर्य-साम्राज्य की राजनीति से कोई संबंध नहीं रहा होगा। प्रारंभिक स्मृतियों में "कायस्थ" का कोई उल्लेख प्राप्य नहीं है। सम्भवतः याज्ञवल्क्य-स्मृति इस संदर्भ में प्रथम साहित्यिक साक्ष्य है जिसमें "कायस्थ" शब्द केवल एक बार ही आया है[1]। विष्णु स्मृति में प्राचीन अंशों के साथ-साथ अनेक प्रक्षिप्त अंश भी जुड़े हुए हैं। अतः इसके आधार पर कोई भी निष्कर्ष प्रामाणिकता के साथ नहीं संपादित किया जा सकता है[2]।

दामोदरपुर ताम्रपत्रों में "कायस्थ" शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम हुआ है[3]। ये अभिलेख गुप्त नृपों के काल के हैं। प्रबल साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि "कायस्थ" भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्यवसाय के रूप में खृष्टाब्द के प्रारंभिक चरणों में आ गए थे। धर्मशास्त्रों में "कायस्थ" को लेखक के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। गणक[4] न्यायकर्ता के साथ रहते थे[5]। विष्णु धर्म-सूत्र में "कायस्थ" को राजा के द्वारा लेखन-कार्य के लिए नियुक्त किया गया उल्लिखित है[6]।

---

१. १, ३३५-३३६, ज० उ० प्र० हि० सो०, जि० १९, पृ० ८१-८२।
२. विष्णु स्मृति, ७, ३.
३. ए० इ०, १५, १२८.
४. कायस्थ गणका लेखकाश्च, मिताक्षरा याज्ञवल्क्य १, ३३५.
५. काणे, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, जि० २, भाग १, पृ० ७६.
६. विष्णु धर्मसूत्र, ७, ३१.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



"कर्ण" शब्द से "कायस्थ" की व्युत्पत्ति की संभावना की जा सकती है। यह संस्कृत भाषा का प्राचीन शब्द है[1]। वैदिक काल में इसका प्रयोग चतुर तथा सहायक के लिए हुआ है[2]। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में "कर्णिक" शब्द का उल्लेख प्राप्य है[3]। अमरकोश में "कर्ण" का अर्थ वर्ण संकर जाति से है[4]। खजुराहों के अभिलेखों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कायस्थों को प्रारंभिक मध्ययुग में "कर्ण" एवं "कर्णिक" भी कहा जाता था[5]। कथासरित्सागर में इनको लेखक अथवा लिपिक के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। मुगलकाल के प्रशासन में जो कार्य दीवान का था वही इस युग के शासन में कायस्थों का रहा होगा[6]। वे लिपिक के अतिरिक्त राजस्व, लेखा-जोखा तथा अन्यान्य रूप से शासन में सहयोग देते थे। लेखक शब्द का प्रयोग "कायस्थ" के पर्यायवाची के रूप में हुआ है[7]। कतिपय अभिलेखों में "कायस्थ" को राजकीय लेखों के लेखक के रूप में अंकित किया गया है[8]। कीलहार्न ने "कर्णिक" का अनुवाद विधि से संबंधित लेख लिखनेवाला किया है[9]। संभवतः यह राजकीय अधिकारी होता था तथा राज्य के विभिन्न विभाग इसके अधीन होते थे[10]। चंदेल अभिलेखों के लेखक को "कायस्थ" की संज्ञा से अभिहित किया गया है[11]। डा० बेनी प्रसाद के अनुसार राजकीय लिपिक जो केन्द्रीय तथा प्रांतीय शासन से सम्बन्धित थे उन्हें सामान्य रूप से "कायस्थ" कहा जाता था[12]। किन्तु डा० काणे डा० बेनी प्रसाद के मत को अल्प संशोधन के साथ स्वीकार किया है। उनके अनुसार "कायस्थ" राजा के राजस्व विभाग का लेखक था[13]। राखलदास बनर्जी "कायस्थ" को प्रधान लिपिक मानते हैं[14]। प्रारंभिक मध्य युगीन साक्ष्यों के अध्ययन के माध्यम से यह कहा जा सकता

---

१. वही, ७, ३१.

२. नृपेन्द्र कुमार दत्त, ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ कास्ट इन इण्डिया, जि० २, कलकत्ता (१९६५), पृ० ५२१. ३. अर्थशास्त्र।

४. अमरकोश, २, १०, २. ५. ए० इ०, १, १२९.

६. मजूमदार, सो० इ० हि० ना० इ, ९८. ७. ज० उ० हि० सो०, १९, ८१-८२.

८. ए० इ०, ११, ९५. वही, १, ३१८. वही, २१, १७१. वही, ३, ३४४, ३४७, ३५७. वही, ११, २५-२६. वही, २०, १९८. इ० हि० क्वा०, १९२९, पृ० ४०. रे, डाइनेस्टिक हिस्ट्री आफ नादर्न इण्डिया, जि० २, ८४९. वही, ८६५. वही, ९३०. इ० ए० ६, १९५, २०२, २०४, २०९. वही, १८, ११०. वही, २५, २०७. वही, ६, १९२, १९४, १८३. वही, २३, ११०, ज० ब० ब्रा० रा० ए० सो०, २६, २५०.

९. ए० इ०, १, १३५. १०. हि० ध० शा०, ३, ९७९.

११. ए० इ० १४७, १२. बेनी प्रसाद, स्टेट इन ऐंशेण्ट इण्डिया, पृ० ४०७.

१३. हि० ध० शा०, ३, ९७९. १४. बनर्जी, दी ऐज ऑफ इम्पीरियल गुप्ताज, पृ० ८०.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



है कि कर्ण शब्द से सम्भवत: "कर्णिक" को व्युत्पत्ति हुई होगी। चाहमान नृपों के समय मंत्रालय को "श्री कर्ण" कहा जाता था। प्रारंभिक मध्ययुग के अभिलेखों से पता चलता है कि कायस्थ केवल राजकीय लिपिक ही नहीं थे प्रत्युत उनके हाथ प्रचुर मात्रा में तत्कालीन शासन की बागडोर भी रहती थी।

साहित्यिक साक्ष्यों के माध्यम से "कायस्थ" की व्युत्पत्ति पर विवेचन महत्त्वपूर्ण होगा। पद्म पुराण में इसकी उत्पत्ति ब्रह्मा के वपु से निर्दिष्ट की गई है। स्कन्दपुराण में "कायस्थ" की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक रोचक कथा प्राप्य है। इसके अनुसार "कायस्थ" का जन्म एक क्षत्रिय कन्या के गर्भ से हुआ है जिसको एक महर्षि ने ब्राहण-शासक की हत्या से बचा दिया। उस ब्राह्मण ( परशुराम ) ने कालान्तर में समस्त क्षत्रियों का विनाश किया। उसने उक्त क्षात्राणी का वध नहीं किया क्योंकि भविष्य में उससे जन्मी संतान क्षात्रधर्म को त्याग देगी। उक्त पुराण की इस रोचक कथा से कायस्थ के क्षत्रिय होने में बल मिलता है।

याज्ञवलक्य स्मृति से लेकर प्रारंभिक मध्ययुगीन साहित्यक ग्रंथों में 'कायस्थ' को चोर, डाकू तथा लुटेरा के रूप में अंकित किया गया है। क्षेमेन्द्र ने नर्ममाला[1] में व्यंगात्मक रूप से लिखा है कि 'कायस्थ' दैत्यराज के सचिव थे। एक बार जब विष्णु ने ( देवासुर-संग्राम में ) कायस्थों के स्वामी समस्त राक्षसों का वध कर दिया तो वे अपने को असहाय समझ कर आकाश में अत्यन्त कातर भाव से रुदन करने लगे[2]। उनकी इस दयनीय दशा को देखकर कलि को दया आयी और उसने उसे ( कायस्थ को ) कलम ( लेखनी ) दी जिसके भीषण प्रहार से देवता भी भय खाते थे[3]। इनका जन्म मंदिरों में भयंकर संक्रान्ति तथा उसे आर्थिक दृष्टि से निर्बल करने के लिए हुआ है जिसे इतिहासकार ने प्रभावोत्पादक शैली में व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। इससे 'कायस्थों' की सम्प्रभुता एवं उनके द्वारा अर्जित प्रमुख प्रशासकीय मान का बोध होता है तो दूसरी ओर उनके घृणित अत्याचारों पर भी प्रकाश पड़ता है। कल्हण ने भले ही इसमें अतिशयोक्ति का आश्रय लिया होगा। किन्तु इस विवरण में जनता के मूक दर्दनाक स्वर की ध्वनि स्पष्ट सुनी जा सकती है। यह भी कहना समीचीन होगा कि जनमत का अधिकांश वर्ग किसी भी प्रशासक से कभी भी पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हुआ है और यह भी निश्चित है कि प्रत्येक को वह भी ( प्रशासक ) संतुष्ट नहीं रख सकता है। इस विषमता के मूल का अध्ययन निस्सन्देह रोचक होगा। अधिकाँशत: प्राप्य अभिलेख राजकीय है। तथा इनके लेखक भी 'कायस्थ' ही हैं। वे अपने अभिलेखों में अपने को अकुशल कैसे अंकित कर सकते थे। तत्कालीन प्रशासन का अध्ययन दो महत्त्वपूर्ण कोणों से हो सकता है। पहला दृष्टिकोण राजकीय हो सकता है इसमें प्रशासकीय हितों को सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया जाता है। दूसरा जनता की दृष्टि से

---

१. नर्ममाला, १५. २. वही, १५. ३. वही, १६.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



वह जनता चाहती है कि प्रशासन अच्छा हो किन्तु राजस्व की वृद्धि न हो। साहित्य जनता का अस्त्र है जिसके माध्यम से वह समय का चित्र खींचता है। उसमें जनता का, जनता की दृष्टि से सत्य सन्निहित रहता है। राज्य का मन्तव्य प्रशासकीय अभिलेखों में अंकित रहता है। 'कायस्थों' की प्रशासकीय योग्यता तथा इनकी विद्वता के संबंध में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ तत्कालीन अभिलेख एवं साहित्यिक ग्रंथों में उपलब्ध हैं। उन्होंने जनता का हित कम किया होगा इसमें सन्देह नहीं है। इसका श्रेय केवल उन्हें ही दिया जाय यह भी उचित नहीं है क्योंकि वे राजा के कर्मचारी थे तथा राजाज्ञा का पालन करना उनका परमकर्त्तव्य था, चाहे वह उचित हो अथवा अनुचित। भारत की राजनीतिक एकता में हर्ष के बाद से ही विघटन की प्रवृत्ति प्रारंभ हो गयी थी। इस समय मुसलमानों के भयंकर आक्रमण हो रहे थे। समग्र भारत राजनीतिक उथल-पुथल की स्थिति में था। ऐसे समय राज्य को सुरक्षित रखने के लिए अधिक सेवा की आवश्यकता थी तथा इस कार्य के संपादन के लिए प्रचुर राजस्व की आवश्यकता थी। अतः इन अधिकारियों ने राज्य की माँग को पूरा करने के लिए जनता, जो कि केवल यही एक स्रोत है, का खूब जमकर शोषण किया होगा किन्तु यह भी निर्विवाद रूप से सत्य है कि राज्य-कर्मचारी भी निर्दोष नहीं थे।

अभिलेखों से पता चलता है कि उन्होंने न केवल प्रशासन में ही प्रमुख स्थान प्राप्त किया था प्रत्युत वे समाज के धनी सदस्य भी थे। ब्राह्मणों की भाँति कायस्थों को भी अनेक अग्रहार दान दिये जाने की सूचना प्राप्य है। प्रारंभिक मध्य युग के अभिलेखों में "कायस्थ" को प्रारम्भ में लेखक के रूप में दिखाया गया है। प्राप्य साक्ष्यों के अध्ययन के बाद यह कहा जा सकता है कि नवीं शती ईसवी के पहले इन्हें जाति के रूप में नहीं पाया जाता।

इतिहास के अध्येताओं ने "कायस्थ" जाति की उत्पत्ति के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण परिकल्पनाएँ की हैं। यहाँ कतिपय प्राचीन विद्वानों के विचारों का उल्लेख करना समीचीन होगा। नैषधचरित के लेखक श्री हर्ष ने "कायस्थ" की उत्पत्ति अन्तक (यम) के प्रसिद्ध लिपिक चित्रगुप्त से की है। उदयसुन्दरी कथा के लेखक सोढ़ल ने अपनी उत्पत्ति महाराज शीलादित्य के भ्राता कालादित्य से की है जो कि महादेव शिव का एक गण था। कालादित्य को साहित्य में क्षत्रिय कुल का भूषण निर्दिष्ट किया गया है[1]।

एक अभिलेख में "कायस्थ" की उत्पत्ति महर्षि कश्यप से बताई गयी है[2]। "कायस्थों" की उत्पत्ति से सम्बन्धित स्कन्द पुराण की कथा एक अभिलेख में वर्णित है कि क्षत्रिय जो परशुराम के द्वारा क्षत्रियों के भयङ्कर विनाश के समय बच गए थे।

---

१. दत्त, नृपेन्द्र कुमार, वही, २, ४९०५०। २. सरकार, भारतीय विद्या, जि० १०, २२४.
३. राजतरंगिणी, ७, ११०६. स्ताइन राजतरंगिणी, प्रस्तावना, पृ० १९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



उन्हें कालान्तर में "कायस्थ" कहा गया। कलचुरि-सम्वत् ८०० (१०४८ ई०) के एक रीवाँ के अभिलेख के अनुसार कतिपय ऋषि ने एक शूद्र स्त्री की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे एक पुत्र होने का आशीर्वाद दिया। वह कालान्तर में कायस्थों का आदि पिता बना।

भारतीय इतिहास के विद्वानों ने कायस्थ की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मतों की स्थापना की है। नृपेन्द्र कुमार दत्त ने ईरानी उत्पत्ति की व्याख्या की है। उनके अनुसार "कायस्थ" भारतीय नहीं थे। गुप्तों के साथ वे भारतीय राजनीति में भाग लेने लग गये थे। अन्तिम मौर्य शासक ब्रहद्रथ के दुःखद अंत के बाद, उत्तरी भारत के विशाल भूभाग पर अनेकों विदेशी आक्रमण हुए जिनमें ग्रीक, सीथिएन, पार्थियन तथा कुषाणों के आक्रमण प्रसिद्ध हैं। इस काल में भारत-ईरान के सम्बन्धों के कारण भारतीय भाषा में अनेक ईरानी शब्द आ गये। यह भी सत्य है कि पार्थियन तथा कुषाण शासक अपने साथ ईरान से प्रशासन में कुछ प्रशिक्षित कर्मचारियों को लाए होंगे जिससे उनका शासन सुचारू रूप से चल सके। जनता में ये 'खायत्थ' कहे जाते थे। शीघ्र ही प्रशासन का समस्त कार्य भारतीय भाषाओं में होने लगा तथा इनको "कायस्थ" के नाम से संस्कृत शब्दावली के अन्तर्गत रखा गया। क्रमशः सेना में कार्य करने वाले को "क्षत्रिय" तथा प्रशासन में कार्य करने वाले राजकीय सेवकों को "कायस्थ" कहा जाने लगा। डा० दत्त का यह मत निस्सन्देह विचारणीय है किन्तु कतिपय त्रुटियों के कारण इसको स्वीकार करने में आपत्ति है। डा० दिनेशचन्द्र सरकार ने डा० दत्त के मत की आलोचना अन्यत्र की है।

प्राचीन काश्मीर में "कायस्थ" शब्द का प्रयोग किसी जाति विशेष के लिए नहीं प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द राजकीय प्रशासन से सम्बन्धित अधिकारियों से जुड़ा रहता था। कल्हण की राजतरंगिणी से यह तथ्य और अधिक स्पष्ट हो जाता है। क्षेमेन्द्र और कल्हण दोनों का ही "कायस्थों" के प्रति अच्छा दृष्टिकोण नहीं है। क्षेमेन्द्र की "नर्ममाला"[1] के अनुसार गृहकृत्याधिपति नामक राजकीय पदवी की प्राप्ति उनके जीवन का चरम लक्ष्य रहता था। "कायस्थों" ने क्यों उत्कोच आदि को स्वीकार किया, यह प्रश्न निस्सन्देह महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है। काश्मीर की सरकार इस समय अस्थिर थी। अल्पकाल के व्यवधान में राजसत्ता बदलती थी। इसके परिवर्तन के कारण राजा अपनी इच्छा के अनुसार समस्त मंत्रिमण्डल का पुनः चयन करता था इससे वह अपने विश्वासभाजनों की नियुक्ति कर मनमानी रीति से प्रशासन करता था। राजनीतिक अस्थिरता इतनी अधिक होने के कारण वे अपने कार्यकाल के अन्तर्गत

---

१. क्रमाद्रामनियोगेन नगरे गणनापतेः।
दम्भसम्भावितः प्राप गृहकृत्यं विधेर्वशात्॥ नर्ममाला, १, ३२.

२. सुनीत चन्द्र रे, अर्ली हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ़ काश्मीर, पृ० ९६.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



इतना अधिक धन-संचय करना चाहते थे जिससे कि वह उनके प्रशासन के बाद भी भौतिक सुखों से वंचित न रह सकें। यह लगभग निश्चित ही था कि उनकी जीविका उसी के कार्यकाल तक ही सीमित है। उसके बाद उसे निलम्बित अथवा पदच्युत होना ही था। इस संक्रामक स्थिति में प्रारंभिक मध्ययुगीन अधिकारी वर्ग के समक्ष और कोई उपाय ही नहीं था।

उदय सुन्दरी कथा के लेखक सोढ़ल ने जो कि "कायस्थ" था, अपने को शीलादित्य ( वलभी-नरेश ) के भाई कालादित्य से सम्बन्धित बताया है। ह्वेनसांग के अनुसार ( सातवीं शती ई० में ) ये क्षत्रिय थे[1]। "कायस्थ" वास्तव में मूलतः लेखकों का एक व्यवसाय था। कालान्तर में वह जाति के रूप में परिणित हो गयी। यह जाति द्विजों से बनी है जिसमें ब्राह्मण वर्ण की प्रधानता थी[2]। कभी-कभी "कायस्थों" का क्षत्रिय से भी अधिक सम्मान की सूचना मिलती है क्योंकि सामन्तवादी मनोवृत्ति तथा सैनिक प्रवृत्ति इनमें नहीं थी। ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही इस व्यवसाय को अपना सकते थे। सौर पुराण के अनुसार उस ब्राह्मण के यहाँ मृतक की शुद्धि का भोजन नहीं करना चाहिए जिसने कायस्थ, ज्योत्तिष, चिकित्सक तथा सैनिक की जीविका अपना ली हो।[3] आज भी पूना, नागपुर और सतारा में ऐसे कई 'कायस्थ' परिवार हैं जिन्होंने ब्राह्मण के कर्मों से जीविका निर्वाह करना प्रारम्भ कर दिया है।[4] इनमें विभिन्नता स्थापित करने के लिए वहाँ इस प्रकार के ब्राह्मण को कायस्थ—ब्राह्मण कहा जाता था। ब्राह्मण तथा क्षत्रियों की भाँति 'कायस्थ' भी गोत्र में विश्वास रखते थे। मनुष्य-रचना शास्त्र ने इस धारण को और अधिक सबल बनाया है कि 'कायस्थ' लोग क्षत्रिय और ब्राह्मण थे।[5]

बंगाल में जाति-व्यवस्था पूर्ण रूप से सर्वथा भिन्न है। यहाँ जाति दो प्रमुख वर्गों में विभाजित है ( ब्राह्मण तथा शूद्र )। शूद्रों का विभाजन चार प्रमुख उपजातियों में हो जाता है। इस विभाजन का आधार खान-पान था। बंगाल में अस्पर्श्य शूद्र वे शूद्र थे जिनके स्पर्श से गंगा का निर्मल जल भी अपवित्र तथा गन्दा हो जाता था। इनकी गणना चाण्डालों में की जाती थी।[6]

वास्तव में बंगाल 'कायस्थों' का देश था और आज भी है।[7] प्राचीन समय में बंगाल को गौड़ देश भी कहा जाता था। आज भी कायस्थ-जाति व्यवस्था में गौड़ कायस्थों की एक उपजाति पायी जाती है। बंगाल में १६०० ई० में इन्हें भुइय्या

---

१. बील, बुद्धिस्ट रिकार्डस आफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जि० २, पृ० २.
२. नृपेन्द्र कुमार दत्त, वही, पृ० ५७. ३. सौर पुराण, अ० १९.
४. दत्त, वही, पृ० ५७. ५. घुरये, कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, पृ०
६. रिजले, ट्राइब्स एण्ड कास्टस् ऑफ बंगाल, २, १८९.
इथनोग्रेफिक ग्लासरी, पृ० २७०. ७. नृपेन्द्र कुमार दत्त, वही, पृ० ५८.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



( हिन्दी के भइय्या ) कहा जाता था। अबुल फजल के अनुसार बंगाल में 'कायस्थ' लोग लगभग २००० वर्षों से शासन कर रहे थे।[1] 'कायस्थों' का वहाँ सम्मानित स्थान था।[2] बृहद्-धर्म पुराण के अनुसार 'कायस्थ' लोग केवल सुयोग्य लेखक ही नहीं थे प्रत्युत उनकी प्रशासन-सम्बन्धी कार्य दक्षता सर्वविदित थी।

'कायस्थ' प्रारम्भ में राज्य के प्रशासन-सम्बन्धी कार्यों को करनेवाले को कहा जाता था। कालान्तर में लगभग सृष्टाब्द के नवीं शताब्दी के आसपास जाति के रूप में इनका प्रादुर्भाव हुआ।[3] काश्मीर में 'कायस्थ' जाति अन्य स्थानों की अपेक्षा कुछ बाद में बनी। अतः जयसिंह ( ११२८--४९ ई० ) के समय कायस्थों का कार्य जाति के रूप में हुआ है।[4] प्रारम्भिक मध्य युग में देश के कुछ भाग में 'कायस्थ' एक व्यावसायिक जाति के रूप में पनपती रही। लक्ष्मीधर ने 'कायस्थ' को एक राजशाही कर्मचारियों के रूप में निर्दिष्ट किया है। इनके भयावह शिकंजों से जनता को बचने की मन्त्रणा भी दी है।[5] याज्ञवल्क्य[6] ने उन्हें वर्ण संकर जाति से पृथक् रखा है। मिताक्षरा ने 'कायस्थ' को एक लेखक के रूप में निर्दिष्ट किया है।[7] अपरार्क ने 'कायस्थ' को राजस्व अधिकारी के रूप में उल्लेख किया है।[8] पुरातत्त्वीय ( अभिलेख )[9] तथा साहित्यिक साक्ष्यों के अनुशीलन से पता चलता है कि लेखक के व्यवसाय ने प्रारम्भिक मध्ययुग के आसपास जाति का स्वरूप धारण किया होगा।

कायस्थ जाति के रूप में सभी स्थानों पर एक ही समय नहीं बनी। काश्मीर की रमणीक घाटी में इसे पर्याप्त समय तक व्यवसाय के रूप में ही पाया जाता है। प्रारंभिक मध्ययुग के कतिपय अभिलेखों में उसे एक व्यवसाय के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।[10] चंदेल और चाहमान अभिलेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्यारहवीं ई० में उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश ( रीवाँ ) के 'कायस्थ' एक प्रमुख जाति के रूप में लोकप्रियता प्राप्त कर चुके थे।[11]

प्रारम्भ में 'कायस्थ' एक व्यवसाय होने के कारण इस जाति का मूल निवास स्थान नहीं निर्धारित किया जा सकता। जब लेखक के व्यवसाय ने जाति का रूप

---

१. आइने अकबरी. २. नृपेन्द्र कुमार दत्त, वही, पृ० ५९.
३. वासुदेव उपाध्याय, सो० रि० क० ना० इ०, पाद टिप्पणी, ९.
४. राजतरङ्गिणी, ८, २३८३
५. कृतकल्पतरु, राजधर्म खण्ड, पृ० ८३. ६. याज्ञवल्क्य, १,३३६.
७. रमेशचन्द्र दत्त, लेटर हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० ८४.
८. कृतकल्पतरु, राजधर्म खण्ड, पृ० ८३. ९. ए० इ०, १८, २३६.
१०. वही, १, ५३.
११. ए० इ०, जि० ११, पृ० ५३ वही, जि० १, पृ० १२९–१४७
वही, जि० २४, पृ० १०८–१०९.

State Museum Library Lucknow 9126

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



धारण कर लिया तब वे जहाँ कार्य करते थे वहीं के निवासी हो गए। डॉ० नृपेन्द्र कुमार दत्त के इस मत से सहमत नहीं हुआ जा सकता क्योंकि 'कायस्थ' एक स्थान से अन्य स्थान अवश्य गए होंगे।[1] 'कायस्थ' जाति के कतिपय उपजातियों के साथ यह बात अवश्य लागू हो सकती है। डी० आर० भंडारकर ने बंगाल के 'कायस्थों' का गुजरात के नागर ब्राह्मण से सम्बन्ध स्थापित किया है जो कि तिब्बत के मानसर झील से आये थे।[2] उत्तरी बंगाल से ( गौड़ देश ) वे मध्य देश, उत्तरी भारत, मध्य प्रदेश और राजपूताना में भी आए।[3]

'कायस्थ' जाति ही कालान्तर में अनेक उपजाति में विभक्त होने लग गया। उत्तरी बंगाल का गौड़ प्रदेश कायस्थ के गौड़ उपजाति की जन्म-भूमि है। गौड़ देश के कायस्थों की ख्याति सर्वत्र भारत में उनके सुन्दर लेख के कारण प्रचलित थी।[4] प्रारम्भिक मध्ययुगीन भारत के अनेक अभिलेख इस तथ्य की पुष्टि में सहयोग देते हैं।[5]

अभिलेखों के परीक्षण के बाद यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'कायस्थों' की ख्याति केवल राज प्रासादों की लम्बी दीवार के अन्तर्गत ही नहीं प्रतिध्वनित होती थी तथापि सामाजिक स्तर पर भी उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था।[6] 'कायस्थों' का उच्च प्रशासकीय सेवाओं में प्रमुख महत्त्वपूर्ण स्थानों का अधिकारी होना इस तथ्य की पुष्टि करता है कि कायस्थों का कथासरित्सागरकालीन समाज में प्रमुख स्थान था। इस सन्दर्भ में यह ध्यान देने योग्य विषय है कि यह वह युग था जब भारत में सामन्तवादी परम्परा लोकप्रिय थी तथा छोटे-मोटे अनेक रजवाड़े इस समय राज्य करते थे। राजकीय सेवाओं में उच्च अधिकारियों के पद पर उनकी ही नियुक्ति होती थी जिसका समाज में उच्च स्थान था। जो जन्मना कुलीन थे। ऐसे सामन्तवादी युग में महत्त्वपूर्ण पद पर आरूढ़ होना ही स्वयं में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। समाज में इनका जाति की दृष्टि से स्थान अत्यन्त ऊँचा था।[7] 'कायस्थ' केवल शास्त्र, भाषा एवं विद्या के ही पण्डित नहीं थे प्रत्युत उनके महत्त्वपूर्ण राजकीय पदों से यह निष्कर्ष सम्पादित किया जा सकता है कि इनमें सरस्वती, लक्ष्मी और कार्तिकेय तीनों का अद्भुत विलक्षण समन्वय था। इस प्रकार वे गृहकृत्याधिपति ( गृहमन्त्री ) अथवा ग्रहकृत्यमहात्म ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रशासन के पद पर शोभित होते थे। 'कायस्थों' की सबसे महत्त्वपूर्ण आकांक्षा होती थी

---

१. दत्त, वही, पृ० ५१. २. डी० आर० भण्डारकर, इ० ए०, मार्च और अप्रैल, १९३२.
३. उपाध्याय, वही, पृ० ८३.
४. ए० इ०, १, १२९–१४७ का० इ० इ०, जि० ३, पृ० २०८.
५. ए० इ०, १, १२३ वही, ११ वही, १, १४७ वही, १, ३६
वही, ११, ४१–३२.
६. ए० इ०, १, ३३३, श्लोक २, ४. ७. उपाध्याय, वही, पृ० ८५.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



कि उन्हें गृहकृत्यमहात्म का पद प्राप्त हो जाए।[१] परिपालक ( राज्यपाल ) सान्धि-विग्रहिक[२], लेखकोपाध्याय[३], कोषाध्यक्ष[४], गंज दिविर[५] ( राजस्व का स्वामी ) तथा नियोगी वर्त्तमान तहसीलदार की भाँति ) आदि महत्त्वपूर्ण पदों से सुशोभित करते थे।

निःसन्देह "कायस्थ" का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान था। प्रारंभ से ही इसे समाज का बुद्धिजीवि वर्ग माना जाता था। गम्भीर विद्वत्ता के अतिरिक्त उनकी ख्याति प्रारम्भिक मध्ययुग में कुशल प्रशासक के रूप भी में थी।[६] प्रारंभिक मध्य युग के लेखों में इसे जाति के रूप निर्दिष्ट किया गया है।[७] तत्कालीन कतिपय अभिलेखों में 'कायस्थ' की उप-जातियों का भी उल्लेख प्राप्य है।[८]

कायस्थों की उप-जातियाँ मूलतः भौगोलिक निवास-स्थान के कारण बनी हैं। प्रारंभ में ये उप-जातियाँ नहीं थीं। गौड़ को कायस्थों की एक प्रमुख उपजाति के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। इसका नामकरण उत्तरी बंगाल के "गौड़" स्थान के आधार पर हुआ है। इनके चारु-अक्षर लेखन के लिए इनकी ख्याति चतुर्दिक फैली हुई थी।[९] गौड़ कायस्थों के द्वारा लिखे हुए प्रारंभिक मध्ययुग के अनेक अभिलेख मध्य देश, राजपूताना आदि में पाए गए हैं।[१०] इतने अधिक अभिलेखों के लेखक होने के कारण यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बंगाल के "कायस्थ" ( गौड़ ) कुशल लेखक थे तथा प्रारंभिक मध्य काल के प्रशासन में इनका महत्त्वपूर्ण हाथ रहा होगा। तत्कालीन महाराजाओं तथा सामन्तों की अधिकांश प्रशस्तियाँ इन्हीं के द्वारा लिखी गई थी[११] यथा देवल की प्रशस्ति शाकम्बरी के चाहमान, नाडूल, चालुक्य, चन्देल और प्रतीहार शासकों को उनकी कुशल सेवाएँ सुलभ रहीं। कुशल लेखन की विशेषता केवल "गौड़" कायस्थों में ही नहीं थी प्रत्युत यह समस्त "कायस्थ" वंश की थाती थी। प्रारंभिक मध्ययुगीन अभिलेखों के अध्ययन से गौड़ कायस्थों का भाषा पर महत्त्वपूर्ण अधिकार का पता चलता है।[१२] नाडोल के नरेश रायपाल ने एक कायस्थ को सामन्तों की उपाधि "ठाकुर" से विभूषित किया था।[१३] गौड़ कायस्थ प्रशासन में भी समान रूप से कुशल थे।

---

१. क्षेमेन्द्र, नर्ममाला, १, ५२. २. ए० इ०, १, ३६.
३. ए० इ०, १, २११ वही, २१, ५४. ४, वही, १, ३३१.
५. वही, १८, २५१.
६. नेमिसदन बोस, हिस्ट्री ऑफ़ दी चन्देलास, पृ० १५६. ७. ए० इ०, १, ५३.
८. ए० इ०, ११, ५५. ९. ए० इ०, १, १२९–१४७, १०. ए० ए०, जि० १, पृ० १४७.
वही, १, पृ० ३६. वही, २, पृ० ३२. वही, ५९, पृ० १६२. वही, १, पृ० ८१.
वही, १२, पृ० ६१. वही, १९, पृ० २१८. वही, ११, पृ० ४१.
वही, ४१, पृ० २०३. वही, १, पृ० १२२. वही, १, पृ० १४७.
ए० भ० ओ० रि० इ० ( १९४१–४२ ) पृ० ३१८.
११. मजूमदार, वही, पृ० ९९. १२. वही, पृ० १००. १३. ए० इ०, ११, ४१.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



एक सान्धि-विग्रहिक जो कि गौड़ कायस्थ था, उसका उल्लेख इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण है।[१] एक दूसरे कायस्थ का अभिलेखों में उल्लेख है जो कि महाराज भोज के राज्य में कोषाध्यक्ष था।[२] इसी के पुत्र को लब्धप्रतिष्ठित वीर सैनिक के रुप में निर्दिष्ट किया गया है। यह साथ ही साथ राजकीय कागजातों का निरीक्षक और संरक्षक भी था।[३]

"कायस्थों" की दूसरी महत्त्वपूर्ण उपजाति श्रीवास्तव थी।[४] श्रीवास्तव उपजाति की उत्पत्ति तथा मूल निवास स्थान अत्यन्त विवादग्रस्त है।[५] अजयगढ़ अभिलेख के अनुसार[६] नाना के पूर्वज कौशाम्बी ( प्रयाग, उ० प्र० ) के निवासी थे।[७] यदि कौशाम्बी को श्रीवास्तव कायस्थों का मूल निवास स्थान मान लें तो कौशाम्बी के निकटवर्ती क्षेत्रों के अभिलेखों के लिखने का श्रेय इन्हें देना पड़ेगा। परन्तु इस रूप में इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। श्रीवास्तव शब्द बा अर्थ होता है जो वास्तव में लक्ष्मीवान हो अर्थात् समाज में ये धनी रहे होगें। संभवतः प्राचीन श्रावस्ती ( गौड़ा जिला, उ० प्र० ) के कायस्थ को श्रीवास्तव कहा गया होगा। कालान्तर में स्यात् इस भौगोलिक नाम ने कायस्थ के एक उपजाति का रूप रख लिया होगा।

संभवतः लेखकों का वर्ग वंश परंपरानुगत रहा होगा क्योंकि एक लेखक के चार पुश्तों तक की राज्य-सेवा का उल्लेख मिलता है।[८] प्रारंभिक मध्यकालीन अभिलेखों में श्रीवास्तव को "ठाकुर" की उपाधि से विभूषित पाया जाता है।[९] यह उपाधि उस समय सामन्त की थी। निर्दिष्ट सूचना के आधार पर यह संभावना व्यक्त की जा सकती है कि तत्कालीन समाज में कतिपय श्रीवास्तवों की स्थिति सामन्तों की सी रही होगी। श्रीवास्तव अपने कार्य की सत्यनिष्ठा के लिए प्रतिष्ठित थे। ब्राह्मणों की भाँति राज्य से इन्हें भी "अग्रहार दान" दिए गए थे। बुद्धिगत कार्यों के अतिरिक्त ये युद्ध आदि कार्यों में भी उतने ही दक्ष थे।[१०] प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत में राज्य के महत्त्वपूर्ण स्थानों पर "श्रीवास्तव कायस्थ" की नियुक्ति किये जाने के उदाहरण प्राप्य है उन्हें राज्यपाल, मंत्री, कोषाध्यक्ष इत्यादि महत्त्वपूर्ण पद दिये जाते थे। राजकीय प्रशासन, चारु लेखन, सैन्य संचालन के अतिरिक्त ये काव्य-रचना में भी दक्ष थे।[११]

श्रीवास्तव शब्द की सार्थकता का बोध इससे ही चलता है कि उन्होंने अनेक मंदिरों का निर्माण किया था।[१२] श्रीवास्तव "कायस्थ" प्रारंभ से ही शैवोपासक थे और आज भी अधिकांश शिव के भक्त हैं।

---

१. ए० इ०, १, २११. २. वही, १, ३३१. ३. वही, १८, २५१.
४. ए० इ०, ४, १९४. ४, १०४. १, ३३१. ४, १५३. ज० ए० सो० बं० ६, ८८२–४.
५. ए० इ०, १६, ६२, १, ४२. ६. ए० इ०, २८, १००. ७. मजूमदार, वही, पृ० १००.
८. ए० इ०, १, ३९. इ० हि० क्वा०, १९२५, ४११. ९. ए० इ०, ५, १०३–१०४.
१०. ए० इ०. ३३३–३३६. ११. ए० इ०, २३, १६३.
१२. ज० उ० हि० सो०, जि० १, भाग १, पृ० २०२ ज० रा० ए० सो० ( १९२७ ), ६२५–६९६ वही १, ४५–५२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



अभिलेखों के अध्ययन से "कायस्थ" जाति की अन्य उपजाति "माथुर" का बोध होता है।[1] वे कायस्थ जो जीविकोपार्जन हेतु मथुरा जाकर बस गये थे कालान्तर में उन्हें माथुर कायस्थ कहा जाने लगा।[2] कायस्थों के इस उपजाति का नाम पूर्णरूपेण भौगोलिक है। श्रीवास्तव कायस्थों की भाँति इन्हें भी सामन्तों की उपाधि "ठाकुर" से विभूषित किया गया था।[3]

'सक्सेना' कायस्थ की एक अन्य उपजाति थी[4]। कायस्थ की उपजातियों में 'सक्सेना' उपजाति संभवतः विदेशी है किन्तु पर्याप्त साक्ष्यों के अभाव में अधिकार के साथ कुछ भी कहने में संकोच होता है। इन्होंने भी कायस्थ की अन्य उपजातियों की भाँति अनेक अभिलेख लिखे थे[5]।

कतिपय ऐसे कायस्थों की उपजातियों का उल्लेख करना समीचीन होगा जिनका भौगोलिक स्थान से किसी भी प्रकार का संपर्क नहीं स्थापित किया जा सकता। इनमें 'अष्ठाना' और 'निगम'[6] आते हैं। अधिष्ठान प्रधान कार्यालय को कहते थे। सम्भव है कि इससे संबंधित कर्मचारियों जो कि वहाँ राजकीय लेखा आदि की सुरक्षा के उत्तर दायी थे, से अष्ठाना कायस्थों की व्युत्पत्ति हुई हो[7]। 'निगम' का संभवतः व्यापारिक श्रेणियों से संबंध रहा होगा।

---

१. ए० इ०, १९–५०, वही, ११, ५७.
वही, १२, ४६ आ० स० इ० रि० १९०३–०४ भाग २.
२. उपाध्याय, वही, पृ० ८७. ३. ए० इ०, १२, ४६.
४. दत्त, वही, पृ० ५०. ५. ए० इ०, २१, १५८.
वही, २१,५०. वही, १८–२४३. इ० ए०, ६,५६.
६. इ० ए०, जि० ४०. १४६. ए० इ०, ९, ६४.
७. लेखक इस सूचना के लिए डा० उदय नारायण राय, प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय का आभारी है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

# परिशिष्ट ३

## ग्रन्थ परिचय

किसी भी भाषा के वाङ्मय में उसके कथा-साहित्य का विशिष्ट स्थान होता है। कथा के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से उसके देश-काल, विषय, समाज, परिस्थिति आदि का बोध सुगमता से हो जाता है। समाज के प्रति लेखक की अपनी विशिष्ट जिज्ञासायें और कुण्ठायें रहती हैं। वे अचेतन मन के चोर फलतः कहानी, कविता तथा साहित्य की अन्य विधाओं का रूप रखकर व्यक्ति का रेचन करते हैं। कहानी साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसमें लेखक को काफी कहने की स्वतन्त्रता रहती है। समाज का वास्तविक चित्रण कथाओं के ही माध्यम से सम्भव हो पाया है। कहानी समाज का 'कैमेरा' है, जिसके 'चित्र' मार्मिक तथा पर्याप्त सीमा तक सत्य के निकट होते हैं।

कथासरित्सागर कहानी-साहित्य का शिरोमणि ग्रन्थ है।[1] इसे काश्मीर के पण्डित राम[2] के सुपुत्र सोमदेव भट्ट ने त्रिगर्त्त या कुल्लू काँगड़ा के राजा की पुत्री, कश्मीर के महाराज अनन्त की रानी सूर्यमती जो जलन्धर की राजकुमारी तथा कलश की माँ थी, के मनोविनोद के लिए कथासरित्सागर नामक विशाल ग्रन्थ की रचना की थी।[3] काश्मीरी शैव[4] पण्डित सोमदेव भट्ट, क्षेमेन्द्र के कुछ बाद हुए थे। सबल साहित्यिक स्रोतों के आधार पर[5] यह स्पष्ट है कि सूर्यमती ने १०८१ ई० के आसपास सती प्रथा का अनुसरण कर मृत्यु का सहर्ष आलिंगन किया था। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ निस्सन्देह १०८१ ई० के पूर्व की ही रचना हो सकती है, इसके पश्चात् की नही। कथासरित्सागर के २१,३८८ पद्य तथा १२४ तरंग ग्रन्थ के नाम की सार्थकता के ही अनुरूप हैं। कल्हण की राजतरंगिणी इससे कुछ पूर्व की रचना है। इस ग्रन्थ के नाम से कुछ ऐसी परिकल्पना करना कि सोमदेव ने राजतरंगिणी की प्रतिस्पर्द्धा में अपने

---

१. वासुदेव शरण अग्रवाल, भूमिका—पटना सं०, वही, ५।

२. पं० दुर्गा प्रसाद और काशीनाथ पाण्डुरंग का चतुर्थ संस्करण, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९३०।
टॉनी का दस जिल्दों में 'ओसन ऑफ स्टोरी' नामक अनुवाद। कथासरित्सागर का पटना संस्करण, १९६० प्रथम खण्ड, १९६१ द्वितीय खण्ड केवल एकादश लम्बक तक (वेतालम्बक तक) है। १९७३ तृतीय खण्ड द्वादश लम्बक से अष्टादश लम्बक तक।

३. बूलर, १८८५, (एस० इब्ल्यू० ए०)

४. टॉनी 'दी ओसन ऑफ स्टोरी' जि० १, प्राक्कथन ले० आर० सी० टेम्पुल; पृ० १२

५. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३५३।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



ग्रन्थ के नामकरण में उससे एक चरण आगे ही रक्खा। अनेक कथारूपी सरिताओं का सागर नामकरण ही वास्तव में इस विशाल ग्रन्थ के आकार-प्रकार को देखकर न तो अनुपयुक्त ही लगता है और न अत्युक्ति ही। यह ग्रन्थ होमर की विशाल रचनाओं इलियड और ओडिसी को साथ-साथ रखने पर भी उनसे आकार में दुगना बड़ा है।[१] ग्रन्थ के नामकरण की सार्थकता उसके विशालता में ही निहित है। सोमदेव ने उचित ही उसे कथारूपी नदियों का सागर कहा हैं।[२] जिस प्रकार सागर में अनेक छोटी-बड़ी सरिताओं की धाराएँ मिलती हैं और सागर ही उसे मर्यादा की सीमा में बाँधे रहता है, उसी प्रकार सोमदेव के इस विशाल ग्रन्थ में छोटी-बड़ी कथायें तरङ्गों के रूप में इठलाती-बलखाती यत्र-तत्र सर्वत्र दृष्टिगत होती हैं।

सोमदेव अपने प्रति ईमानदार, सचेष्ट एवं जागरूक लेखक है। सही अर्थों में वह एक सच्चा लेखक है। ग्रन्थ के आरम्भ में सोमदेव ने मूल्यवान सूचना के रूप में लिखा है[३] कि ग्रन्थ का निर्माण उसने पाण्डित्य-प्रसिद्धि के लोभ से नहीं किया है किन्तु अनेक लम्बी कथाओं के जाल को स्मरण रखने की सुविधा के लिए किया गया है।[४] सोमदेव ने स्पष्ट कह दिया है कि कथासरित्सागर में उसने मूल बृहत्कथा का संग्रह किया है। उसने विस्तृत कथाओं को संक्षिप्त मात्र किया है तथा उसने भाषा बदल दी है।[५] उसकी भाषा पैशाची थी और इसकी संस्कृत है। सोमदेव के इस कथन से विषय स्पष्ट हो 'जाता है कि गुणाढ्य की बृहत्कथा संस्कृत में नहीं, पैशाची में थी। सोमदेव के समय तक गुणाढ्य की मूल बृहत्कथा किसी न किसी रूप में विद्यमान थी जिसका कवि ने अपने ग्रन्थ कथासरित्सागर को लिखने में उपयोग किया था।

इस ग्रन्थ में कुल अठारह लम्बक हैं। क्रमशः कथापीठ, कथामुख, लावानक[६] नरवाहनदत्त, चतुर्दारिक, मदनमंचुका[७] रत्नप्रभा, सूर्यप्रभा[८], अलङ्कारवती, शक्तियशा, बेला[९], शशाङ्कवती, मदिरावती, महाभिषेकवती, पञ्च[१०] सुरतमञ्जरी, पद्मावती तथा विषमशील[११] लम्बक है।

कथासरित्सागर संस्कृत कथा-साहित्य का अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। इसके अध्ययन से पता चलता है कि इस ग्रन्थ का केवल ऐतिहासिक महत्त्व ही नहीं वरन् इसकी साहित्यिक महत्ता भी किसी भी पहलू से कम नहीं है। आलोचक जहाँ से चाहें ठोक बजाकर देख सकते हैं। सोमदेव ने आद्योपान्त साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया है तथापि वह किंचित् मात्र भी कृत्रिमता से बोझिल नहीं प्रतीत होती है। अलङ्कारों का प्रयोग उन्होंने उतना ही किया है जहाँतक वे काव्य-शिल्प के

---

१. टॉनी, 'दी औसन आफ स्टोरी', जि० १, पृ० ३१. २. टॉनी जि० १, पृ० ३१.
३. प्रथम तरंग, श्लोक तीन। ४. कथासरित्सागर, १,१२. ५. वही, १,१०.
६. वही, १–४. ७. वही, १,५. ८. वही, १,६. ९. वही, १,७.
१०. वही, १,८. ११. वही, १,९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



आभूषण बन सकते थे। सोमदेव अलंकारों के प्रयोग में कुशल हैं तथा छन्दों के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। छन्दों के प्रयोग ने सोमदेव के काव्य को गति ही दी है यति नहीं। उन्होंने छन्द का चतुर कवि की भाँति उपयोग किया है। सोमदेव ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का अध्ययन कर उनके दोषों से अपने काव्य को सदैव वंचित रखने का भरसक प्रयास किया है। उसने कथासरित्सार में न तो सुबन्धु की वासवदत्ता की भाँति साधारण वर्णनात्मक शैली और न ही बाण की कादम्बरी की भाँति अलंकृत शैली का प्रयोग किया है। सोमदेव ने भाषा-शैली दोनों की कमियों से अपने ग्रन्थ को दूर रखने की चेष्टा की है। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सोमदेव निस्सन्देह भारतीय कवियों में प्रथम श्रेणी का कवि है।[1]

सोमदेव के कथासरित्सागर के अनुशीलन से पता चलता है कि इसका विशाल ग्रंथ स्वयम् में बिखर गया है। उसमें गठनशीलता नहीं आ पाई है। संभवतः ग्रंथ की विशालता अथवा मूल का अन्धानुकरण ही इस बिखराव का कारण हो—कुछ कहा नहीं जा सकता। जो कुछ भी हो सोमदेव की ख्याति ग्रंथ की शिल्प-विधि के कारण नहीं है। उसकी प्रसिद्धि तथा अमरत्त्व की आधार-शिला विशाल संस्कृत वाङ्मय में कहानियों को रुचिकर एवं आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने की विलक्षण रीति से है[2]। उसने असंख्य कहानियों को चाहे वे हास्य प्रधान हों, प्रेम संबंधी हों, शृङ्गारिक अथवा मूर्खों से संबंधित हों एक सुनियोजित मंजूषा—कथासरित्सागर में बड़े करीने से सजा-कर रक्खा है। भारत की प्राचीन कथाओं का यह महाग्रंथ (कॉर्पस ऑफ स्टोरीज़) है। कई कथायें बुरी तरह से स्थानान्तरित हो गई हैं जिसके फलस्वरूप अनेक कहानियाँ कई बार (दो यहाँ तक कि तीन बार भी) ग्रंथ में आ गई हैं। कथासरित्सागर का मूल नायक नरवाहनदत्त, डॉन जुआन[3] की भाँति एक के बाद एक क्रमशः युवतियों के हृदय को जीतता जाता है। नरवाहनदत्त के मूल चौखट में अन्य कहानियाँ जड़ी हुई हैं। अनेक कष्टों को सहता हुआ अन्त में या तो उससे उसकी प्रेयसी का पुनर्मिलन हो जाता है या उसे कोई नई प्रेयसी की प्राप्ति होती है। पाश्चात्य दृष्टिकोण से इन कथाओं में मोहित करनेवाली शक्ति नहीं रह जाती। कहानी रहस्यात्मक न रहकर उसका सब कुछ फल पहले से ही निश्चित रहता है। विदेशी दृष्टिकोण की भाँति उदारचेता नहीं है[4]। वह संभवतः अभी अपने शैशव काल से गुजर रहा है। भारतीयों की कर्मयोग में अटूट श्रद्धा ही नहीं वरन् विश्वास भी है। उनके लिए कोई घटना नई नहीं है। इसी से वे न तो किसी घटना के होने पर चौकते ही हैं और न ही आश्चर्य की दृष्टि से उसे देखते हैं। सब कुछ पहले से ही निश्चित है। मनुष्य को केवल कर्म करना है। उस दृष्टि से पाश्चात्य कवि रावर्ट ब्राउनिंग[5] ने भारतीय धारणा को अपनाया था।

---

१. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३५४. २. कीथ, वही, पृ० ३५५. ३. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३५५
४. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३५५ ५. रावर्ट ब्राउनिंग ; रबाई बेन एजरा, पंक्ति १–८ तक

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



इस कथा-ग्रंथ में मूल कथा नरवाहनदत्त की है। इसके चारों ओर अन्य कथा-तंतुओं का जाल बिछा है। नरवाहनदत्त की कथा से भी रोचक इसके पिता उदयन और उसकी दो पत्नियों-वासवदत्ता और पद्मावती तथा उसके स्वामिभक्त, बुद्धिमान, नीतिवान मंत्री यौगन्धरायण की कथायें हैं। यद्यपि उदयन की कथा बौद्ध कथाओं से ली गई है[1] किन्तु मूल कथा अन्य कथाओं ( बौद्ध कथाओं ) से स्पष्ट रूप से भिन्न है[2]।

कथा-वर्णन की दृष्टि से सोमदेव भारतीय साहित्य में अपना सानी नहीं रखते हैं। उसकी प्रवाहमयी शैली की रोचकता को कोई नहीं पहुँच पाया है[3]। टॉनी कृत कथासरित्सागर के अंग्रेजी—अनुवाद की भूमिका में पेंजर ने सोमदेव के ग्रंथ की प्रशंसा में लिखा है—जब हम इस ग्रंथ को देखते हैं तब हर प्रकार की कथाएँ इसमें संग्रहीत हैं। द्युलोक और पृथ्वी के निर्माण-संबंधी, ऋग्वेदकालीन कथाएँ भी यहाँ हैं। उसी प्रकार रक्तपात करने वाले वेतालों की कहानियाँ, सुन्दर काव्यमयी प्रेम कहानियाँ और देवता, मनुष्य एवं असुरों के युद्धों की कहानियाँ भी इस संग्रह में हैं। यह न भूलना चाहिए कि भारतवर्ष कथा-साहित्य की सच्ची भूमि है। इस विषय में भारतीय कथा-साहित्य ईरान और अरब से बढ़-चढ़कर है। भारत के इतिहास की कथा भी तो उसी प्रकार की एक कहानी है। इसका अतिशयोक्तिपूर्ण रूप इन आख्यानों से कम रोचक नहीं है।

इन कहानियों का संग्रह करने वाला लेखक सोमदेव विलक्षण प्रतिभाशाली पुरुष था। स्पष्ट, रोचक और मनमोहक ढंग से कहानी कहने की उसमें अद्भुत क्षमता थी। कहानियों के विषयों की व्यापकता एवं चातुर्यभरी उक्तियाँ अत्यन्त प्रभावपूर्ण है।

दूसरी और, जैसा कि प्रायः पूर्वी ( विशेषतः भारतीय ) कहानियों में मिलता है, यहाँ एक विशेषता यह भी है कि नई-नई कहानियाँ पूर्ववर्ती कहानियों के पेटे में समाई हुई हैं और आश्चर्यजनक वेग से एक के बाद दूसरी कहानी उभरती हुई सामने आती रहती है। तब पाठक अभिलाषा करता है कि कोई सूत्र सहायक बनकर उसे कथाओं की इस भूल-भुलैये से उसका उद्धार करे[4]।

कथासरित्सागर लैला की कहानियों से प्राचीनतर ग्रंथ है और अलिफ की अनेक कहानियों के बीज रूप इसमें है। उनके द्वारा न केवल ईरानी और तुर्की लेखकों की प्रत्युत वोकेशियों, चासर एवं लाफोतेन एवं अन्य लेखकों के द्वारा पश्चिमी संसार को भी अनेक कथाएँ प्राप्त हुई हैं। सोमदेव ने सोचा कि जैसे हिमालय से आई हुई अनेक

---

१. लाकोत, मि० ज०, जि० ४, पृ० २४७. २. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३५६.
३. वासुदेव शरण अग्रवाल, क० स० सा०, पटना सं०, जि० १, वही, पृ० २१.
४. टॉनी, दि ओसन आफ़ दि स्टोरी, जि० १, प्राक्कथन, प १०

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



धाराएँ आगे-पीछे बहती हुई समुद्र में पहुँच जाती हैं वैसे ही छोटी-बड़ी सभी कथाएँ उनके इस महान ग्रंथ में समाहित हो जाँय और सच्चे अर्थ में यह कथा-रूपी नदियों का सागर बन जाय। कथासरित्सागर के रूप की कल्पना ने एक ऐसे कथा-सागर की सृष्टि की है जिसमें अद्भुत कन्याओं और उनके साहसी प्रेमियों, राजाओं और नगरों, राजतन्त्र एवं षड्यंत्र, जादू और टोने, छल और कपट, हत्या और युद्ध, रक्तपात वेताल, पिशाच, यक्ष और प्रेत, पशुपक्षियों की सच्ची एवं गढ़ी हुई कहानियाँ एवं भिखमंगे, साधु, पियक्कड़, जुआरी, वेश्या, विट और कुट्टनी इन सभी की कहानियाँ एकत्र हो गई हैं। इस प्रकार कथासरित्सागर, भारतीय कल्पना-जगत का दर्पण है जिसे सोमदेव भविष्य की पीढ़ियों के लिए छोड़ गए हैं[1]।

प्रतिभा के धनी सोमदेव की सब से बड़ी विशेषता यह है कि वह पाठक के मन को बिना थकाए अभीष्ट अर्थ का प्रकाशन कर सकते हैं। उनकी कहानियों का रुचिकर रूप कभी नहीं छीजता[2]। कथासरित्सागर में कहानियों का एक बढ़िया गुच्छा वेतालपञ्चविशंति नामक पच्चीस कहानियों का है[3]। क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी में भी ये कहानियाँ प्राप्य हैं[4]। क्षेमेन्द्र का वर्णन संक्षिप्त और अलंकार-रहित है। इसमें कुल १२०६ श्लोक हैं[5]। महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि वेताल-विक्रम की ये कहानियाँ मूल बृहत्कथा में थीं अथवा नहीं। हर्टल और एजर्टन का मत इस विषय में समीचीन प्रतीत होता है कि मूल बृहत्कथा में वेतालपञ्चविशंति की कहानियाँ विद्यमान न थीं[6]। नरवाहनदत्त के उपाख्यान से उनका कोई वास्तविक सम्बन्ध नही प्रतीत होता है। कीथ के अनुसार वेतालपञ्चविशंति की कथाओं पर बौद्ध कथाओं का प्रभाव स्पष्ट है[7]।

पंचतंत्र की भी बहुत सी कहानियाँ सोमदेव के कथासरित्सागर में यत्र-तत्र बिखरी हुई हैं। क्षेमेन्द्र ने इनको पंचतंत्र के अनुसार एक साथ कर दिया है। इनमें कम से कम आधी कहानियाँ ४५० ईसवी से पूर्व बने हुए एक ऐसे संग्रह में विद्यमान थीं, जिसका उपयोग आर्यसेन संघ नाम के एक भिक्षु ने अपने ग्रन्थ में किया था और जिसका चीनी भाषान्तर उसके शिष्य गुणवृद्धि ने ४९२ ई० में किया था[8]।

सोमदेव ने मूर्खों की कहानियाँ कहने में बड़ा रस लिया है[9]। मूर्खों की अनेक कथाएँ जिनका सोमदेव ने उल्लेख किया है वे केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं प्रत्युत विश्व-

---

१. टॉनी, द ओसन आफ स्टोरी, जि० १, पृ० १०.

२. कीथ, संस्कृत साहित्य का इतिहास, मंगलदेव शास्त्री कृत हिंदी अनुवाद, पृ० ३३५.

३. क० स० सा०, ७५–९९ ४. बृहत्कथामंजरी, ९।२।१९–१२२१.

५. सुशील कुमार डे, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४२१.

६. वासुदेव शरण अग्रवाल, क० स० सा०, पटना सं०, जि० १, वही, पृ० २४.

७. कीथ, वही, पृ० ३३५.

८. वासुदेव शरण अग्रवाल, क० स० सा०, पटना सं०, जि० १, वही, पृ० २४.

९. वही, पृ० २४.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



साहित्य में भी लोकप्रिय हैं[1]। कहानियों के सम्पुट को वे कितना छोटा बना सकते थे, इसका एक नुकीला उदाहरण तूलिका या रुई बेचने वाले मूर्ख की कथा है—' हे देव ! गहनों के संबंध में मूर्ख की कहानी कह चुका। अब रुईवाले की कहानी सुनिये। कोई मूर्ख रूई बेचने बाजार में गया, पर साफ न होने से किसी ने लिया नहीं। तब उसने देखा कि सोनार सोने को आग में तपाकर शुद्ध कर रहा है। उस सोने को सोनार ने बेचा और ग्राहक ने खरीद लिया। यह देखकर उसने भी अपनी रुई को साफ करने के लिए आग में डाल दिया। इसलिए सब लोग उस उल्लू पर हँसने लगे।' यह तूलिका की कहानी हुई। अब खजूर काटने वाले मूर्ख की कहानी सुनें[2]।

इस प्रकार कथासरित्सागर की तरंगित शैली में सोमदेव की छोटी कहानियाँ बड़ी कहानियों के सम्पुट में कटहल के कोयों की तरह भरी हुई हैं।[3] मूर्ख की कथाओं में भूखे यात्री की कथा है जो अपनी यात्रा के बीच भूख लगने पर सात पूये खाये, अन्तिम पूआ खाने पर उसकी भूख शान्त हो गई। अब वह पश्चात्ताप करने लगा कि उसने अन्तिम पूआ ही पहले क्यों नहीं खाया अथवा उस मूर्ख नौकर की कथा जो चौखट साथ लेकर चलता था अथवा उस मूर्ख की कथा जिसने कहा था कि उसके पिता ने अपने जीवनकाल में ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था इत्यादि कथाएँ केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं वरन् विश्व साहित्य में भी लोकप्रिय हैं।

मुग्ध कथाओं का मूल उद्देश्य हास्यरस की निःसृति है। कई कथाएँ वास्तव में श्रेष्ठ मनोरञ्जन करती हैं। अनेक कथाओं के अन्त में लिखा है कि यहाँ तक कि पाषाण खण्ड भी सुनकर अट्टहास करने लगेगें। कथासरित्सागर की धूर्तों की कथाएँ कम रोचक नहीं है। इन कथाओं में शठ, चोर, जुआरी आदि की कथाएँ वर्णित हैं। इस प्रकार की कथाओं का वर्णन सोमदेव ने अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण किया है।[4] एक धूर्त और झूठे मन्त्री की कथा रोचक है। एक बार उत्तमवणिक वेषधारण करके वह धूर्त राजा के द्वार पर गया। उसने अपनी धूर्तता के बल पर सभी अधिकारियों, सामन्तों, राजपुत्रों और सेवकों से भिन्न-भिन्न युक्तियों द्वारा सभी ओर से राजा से बातें करते हुए पाँच करोड़ दीनार कमा लिया और उससे प्रसन्न होकर उसे राजा ने महामन्त्री बना किया।[5] दूसरा प्रसिद्ध धूर्तपात्र मूलदेव और उसकी धूर्ता स्त्री है जिसका पुत्र उन सभी से बढ़कर धूर्त निकला।[6] शठ कथाओं में धर्म के ठेकेदारों की जमकर आलोचना की गई हैं। एक दूसरे शठ की शठता उसकी बुद्धिमत्ता पर भुला देनी पड़ती है। उसे

---

१. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३५७.
२. क० स० सा०, ६१, २८–३१.
३. वासुदेव शरण अग्रवाल, वही, पृ० २५.
४. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३५७.
५. क० स० सा०, ६६, ११०–१३४.
६. ब्लुमफील्ड, द करेक्टर एण्ड एडवेन्चर्स ऑफ मूलदेव : प्रो० ऑ० फि० सोसाइटी, जिल्द ५२ ( १९१३ ), पृ० २१२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



एक दिन इन्द्र का राज्य मिल गया, फलस्वरूप पुण्य कार्य करके वह उस पदपर आसीन ही गया।[1] शिव और माधव नामक धूर्तों की कथा मनोरंजक है। उनमें से एक वैष्णव साधु का स्वाँग रचता था तथा दूसरा राजपूत का। उन्होंने हथकण्डों से नगर के सभी धनी व्यक्तियों को ठग लिया था।[2] साधु-सन्त सदैव धूर्त और मक्कार नहीं होते थे।[3] इस प्रकार के एक साधु को स्वयं ही कुछ लोगों ने ठग लिया था। एक व्यक्ति की सुन्दरी कन्या का अपहरण करने के लिए उसने बताया कि कन्या दुर्भाग्य से बुरे ग्रहों (नक्षत्रों) के संयोग से उत्पन्न हुई है। अतः उसका घर में रहना अशुभ तथा अमांगलिक है। उसके पिता ने उसे एक डिब्बे में बन्द कर बहा दिया। संयोगवश उस सुन्दरी को राजकुमार ने पाया और संन्यासी को डिब्बे में बन्द बन्दर मिला जिसने उसकी आँख निकाल ली और कान नोच डाले।[4]

स्त्रियों की कथाएँ बहुलता के साथ पायी जाती हैं। इस प्रकार की कथाएँ अधिकतर उनके दुःश्चरित्र तथा निम्न आचरण से सम्बन्धित हैं।[5] उदाहरणस्वरूप, एक राजा के पास एक सुन्दर श्वेत हाथी था जो चोट खाकर गिर पड़ा। इसी समय भविष्यवाणी हुई कि यदि कोई भी सच्चरित्र नारी इसे स्पर्श कर दे तो हाथी उठ जायेगा। लगभग राजा की ८०,००० स्त्रियों ने उसे स्पर्श किया परतु वह हाथी उठा नहीं। यहाँ तक कि नगर की अनेक स्त्रियों ने भी स्पर्श किया परन्तु वह हाथी उठा नहीं। केवल एक सती साध्वी स्त्री थी जिसके स्पर्श से वह हाथी उठ गया। राजा को अन्तःपुर की रानियों के चरित्र के विषय में अत्यन्त आश्चर्य हुआ तथा उस साध्वी स्त्री की बहन से राजा ने विवाह कर लिया। उसके चरित्र की रक्षा के लिए उसे एकान्त द्वीप में ले जाकर रक्खा परन्तु अन्ततोगत्वा उसका भी चरित्र दूषित हो गया।[6] तरंग ५८, ६४ और ६५ में स्त्रियों के दूषित चरित्र से सम्बन्धित कहानियाँ भरी पड़ी हुई हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि स्त्रियों की कोई भी चेष्टा माया के बिना नहीं होती।[7] एक बार एक यक्ष ने अपनी स्त्री को हँसी-हँसी में पुष्पों की माला से मारा उसने असत्य ही मृत्यु का स्वांग रचकर यमलोक तक की असत्य कल्पित कथा को पति से सुनाया। इस पर यक्ष ने कहा कि अरी मूर्खे! तू ने तो पाटलिपुत्र की स्त्रियों का अनुकरण किया है।[8]

स्त्रियों के दूषित चरित्र से सम्बन्धित कहानियों के अतिरिक्त कई सती साध्वी स्त्रियों की भी कथाएँ संग्रहीत हैं। पतिव्रता स्त्री देवस्मिता की कथा विश्व-साहित्य में

---

१. क० स० सा०, १२१. १८८. २. वही, २४, ८२–२०५.
३. विन्टरनित्स, वही, ३५८. ४. क० स० सा०, ३४, १८२.
५. वही, ३४,१८२,६०,३,६१,१९३,६६,२९ ७१,२२,७८,४८,१२४,१४०.
६. वही, ३६, ९. ७. वही, ६३. ६, ६४, १५४. ८. वही, ६६, २८–२९.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



प्रसिद्ध है[1]। एक पतिव्रता स्त्री ने परोक्ष बगुली के वृत्तान्त को जान लिया[2]। पतिव्रता नागश्री ( अरुन्धती ) विश्वविख्यात है।[3] कुछ समय के उपरान्त उस रानी के गर्भ से नागश्री उत्पन्न हुई। एक बार इसकी माता को अकस्मात् ही पूर्व जन्म का स्मरण हो आया। उसने कहा राजन्! यदि मैं आपसे न कहूँ तो प्रेम-विरुद्ध है और यदि कहूँ तो मेरी मृत्यु होती है। इसलिए मुझे बहुत खेद है। राजा ने कहा कि सहसा मुझे भी अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो गया है। इसलिए तू मुझसे कह दे और मैं भी तुझसे कह दूं। भवितव्य को कौन टाल सकता है। इस प्रकार पति से प्रेरित होकर रानी ने कहा कि मैं इसी कोशल देश में, माधव नामक किसी ब्राह्मण की सदाचारिणी दासी थी। देवदास नाम का मेरा पति वह किसी सज्जन वैश्य के घर में नौकर था। इस प्रकार हम दोनों, अपने अनुरूप घर बनाकर अपने-अपने स्वामियों के घरों से लाये हुए पकवानों से जीवन-निर्वाह किया करते थे। कुछ समय के अनन्तर उस देश में अकाल पड़ा। फलस्वरूप भोजन कम मिलने लगा। तब भूख-प्यास से व्याकुल अन्न की कमी से कष्ट पाते हुए हमलोगों के भोजन के समय कोई थका हुआ ब्राह्मण अतिथि घर में आ गया। फलतः इस भीषण प्राण संकट के समय में हम लोगों ने अपना सारा भोजन उसे दे दिया। मेरा पति क्षुधा से पीड़ित होकर परलोक सिधार गया। तब मैंने भी सती-प्रथा का अनुसरण कर परलोक में पति का पुनः सान्निध्य प्राप्त कर लिया। राजा ने कहा प्रिये! मैं वही तुम्हारे पूर्वजन्म का पति देवदास हूँ। मैंने भी आज ही अपना पूर्व जन्म का स्मरण किया है। ऐसा कह कर और अपने पूर्वजन्म के संस्मरण उसे बताकर प्राणहीन राजा उस देवी के साथ ही स्वर्ग चला गया[4]। सदकार्यों का फल सदा सर्वदा अच्छा ही होता है[5]। पाटलिपुत्र के एक ब्राह्मण की दो पत्नियों की कथा चरित्र के विषय में उल्लेखनीय है[6]। कथासरित्सागर में एक ओर तो गृहपत्नियों के लचीले-कल्मष चरित्र से सम्बन्धित कथाओं का ढेर है, तो दूसरी ओर कतिपय वेश्याओं के उदात्त चरित्र की कथाएँ भी हैं[7]।

सम्भवतः कल्मष-चरित्र वाली पत्नियों की कथाओं के उद्भव का मूल बौध कथाएँ रही होंगी[8]। यह माना जा सकता है कि बौद्ध कथाओं का प्रभाव कथा-सरित्सागर की कुछ कथाओं पर अवश्य है किंतु बेनफी का यह मत सर्वमान्य नहीं है कि कथासरित्सागर की सब कथाओं का मूल बौद्ध कथाएं ही हैं[9]। बेनफी के मत को कुछ संशोधन के साथ स्वीकार करने में किंचित् मात्र संशय की भावना नहीं रह जाती। यद्यपि सोमदेव स्वयं बौद्ध नहीं था किन्तु उसने बौद्ध कथाओं को कथासरित्सागर में

---

१. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३५९. २. क० स० सा०, ५६–१७१, ६१, ३०० ; ६४, ३४
३. वही, २७, ७९. ४. वही, २७, ८०–१०२. ५. वही, १११, २४, ११२, १११.
६. क० स० सा०, ७३, ४१७. ७. वही, ३८, ३ और ५८, २.
८. वही, ६४. ९. पंचतंत्र, १, पृ० १४८

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



प्रश्रय दिया है। यह उसके व्यापक दृष्टिकोण एवं विशाल हृदय का प्रतीक है। बौद्ध कथाएँ २७ और २८ तरंगों में पायी जाती हैं[1]। बौद्ध कथाओं की संपूर्ण शृंखला ७२वें तरंग में पायी जाती हैं। वेताल की कथाओं पर बौद्ध छाप स्पष्ट लक्षित है[2]। राजतरंगिणी में भी वेताल से सम्बन्धित कथाएँ वर्णित हैं[3]। बौद्ध कथाओं का आभास इसके अतिरिक्त अन्य कथाओं में भी होता है[4]:

सोमदेव ने कथासरित्सागर में नीति-सम्बन्धी अनेक सूक्तियाँ डाल दी हैं[5]। इस कोटि की सूक्तियों की छौंक-कथा वर्णन के स्वाद को और बढ़ा देती है। इस युक्ति से सोमदेव ने पूर्ण लाभ उठाया है[6]।

सोमदेव मूलतः शैव भक्त कवि था तथा कथासरित्सागर शिव और पार्वती के स्तुतियों का ग्रन्थ है। जब भी दैवी सहायता का कष्ट सम्मुख आया है तभी शिव स्वयम् साक्षात् रूप से या पार्वती ने अदृश्य रूप से अथवा साक्षात् रूप में अपने भक्तों की सहायता पहुँचाई है[7]। बोधिसत्त्व जीमूतवाहन स्वयं गौरी की आराधना—हेतु उनके देवालय में गया था[8]। बॉस के अनुसार जीमूतवाहन की कथा मूल रूप में बौद्ध नहीं थी परन्तु कालान्तर में जीमूतवाहन नामक ब्राह्मण बोधिसत्त्व में परिवर्त्तित हो गया[9]। कथासरित्सागर में नर-बलि के भी उल्लेख मिलते हैं। वे या तो दुर्गा के बलि के लिए अथवा किसी पिशाच के सिद्ध के लिए किये गये हैं अथवा सन्तानोत्पत्ति के कारण या किसी मनोकामना की पूर्त्ति उनका उद्देश्य होता था।

जंगल के डाकू—भील, जो कि वन में रहते थे, वे देवी को प्रसन्न रखने के लिए नियमतः नर बलि देते थे। उनकी धारणा थी कि नरबलि से देवी अति प्रसन्न होती है[10]। राम के नरमेध—यज्ञ में किसी अच्छे लक्षणों वाले पुरुष को खोजते हुए लक्ष्मण ने लव को देखा। लव को सम्मोहनास्त्र से मोहित करके क्षात्र धर्म के अनुसार उसे बाँधकर अयोध्या नगरी को ले गया। शिव के प्रतीक—उपासना—पद्धति का उल्लेख कम हुआ है[11]। स्त्रियों और लड़कियों का भी उल्लेख हुआ है जो मन्दिर में उपासना करती थीं[12]। सोमदेव का काल तांत्रिक उपासना के बाहुल्य का युग था। उसकी छाप

---

१. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३६१.

२. क० स० सा०, ३३, ३६, ४१, ९, ६३, ५३, ६५, १३२, ५६, १४१, १५, ६३, ३३, ६२, ९१, ३. ३. राजतरंगिणी, ४, १७.

४. क० स० सा०, ६५, ४६, ११७, ३२, ७५, १२०, ५०, ११६.

५. वही, ६१, ११६, ११८, १२१.

६. वासुदेव शरण अग्रवाल, क० स० सा०, पटना सं०, वही, पृ० २६.

७. विन्टरनित्स, वही, पृ० ३६२. ८. क० स० सा०, २२, १६, ९०, ३

९. बॉस, वही, मि० ज०, जि०, ४, पृ० १४३. १०. क० स० सा०, ५१, ५९, १०१.

११. वही, ५१, १०१, ११६. १२. वही, ३७, ३, ४३, १५८, ५१, ९५.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



कथासरित्सागर की अनेक कथाओं पर पड़ी है। इसमें भूत-प्रेत की भी अनेक कथाएँ संग्रहीत हैं। पिशाचों के कारनामों का उल्लेख अत्यन्त स्पष्ट रूप से हुआ है[1]। शिव का स्तुतिज्ञान देवाधिदेव के रूप में हुआ है। साथ ही अन्य देवताओं का भी उल्लेख हुआ है जिनकी आराधना उस समय प्रचलित थी। उदाहरणस्वरूप, नरवाहनदत्त समुद्र के बीच में स्थित नारिकेल द्वीप से श्वेतद्वीप में जाता है। यह श्वेतद्वीप क्षीरोदक समुद्र के पास था, जिसे आजकल कैस्पियन सागर कहते हैं[2]। इस श्वेतद्वीप का उल्लेख महाभारत के नारायणीय पर्व, हर्षचरित तथा पुराणों में बहुधा हुआ है[3]। श्वेतद्वीप में निवास करनेवाले नारायण की स्तुति सोमदेव ने की है। वह स्रोत-विषय मे उनकी सफलता का सूचक है[4]। स्रोत-साहित्य का यह एक चमकता हुआ नग है[5]।

सोमदेव का कथासरित्सागर सामाजिक और धार्मिक कथाओं का विशाल समन्वय ग्रन्थ है। सोमदेव का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। इसी कारण वे अपने विशाल ग्रंथ के प्रणयन में सफल भी हुए। भाषा की सरलता ने कहानी के सागर में कहानियों के तरंगो को उठने में योग दिया। इसी कारण कहानियाँ अपने में पूर्ण विकसित और सही अर्थों में सरल बन पड़ी हैं। कतिपय कथाओं को सोमदेव ने अलंकारों से सजाया भी है। उदाहरणस्वरूप, वेताल पञ्चविंशति ( वेताल पच्चीसी ) की कथाएँ उत्कृष्ट काव्यात्मक ढंग से लिखी गई हैं[6]। वास्तव में भाषा पर पूर्ण अधिकार होने के कारण सोमदेव ने अवसर, स्थल और भाव के अनुसार ही भाषा का प्रयोग किया है। कई ऐसे स्थल हैं जहाँ सोमदेव ने इतनी सरल भाषा का प्रयोग किया है कि आश्चर्य होता है[7]।

सोमदेव के हृदय में महान देश-प्रेम था। उसने अपने सुरम्य रमणीक काश्मीर का अत्यन्त चित्रात्मक वर्णन किया है। उन्होंने उसे समग्र पृथ्वी का शिरोमणि माना है। हिमालय के दक्षिण में कश्मीर स्थित है काश्मीर की सुरम्य घाटी का निर्माण विधाता ने स्वयं अपने हाथों से मर्त्यलोक के जीवों को स्वर्ग का आनन्द देने के लिए बनाया है।[8]

अलङ्कारों के प्रयोग के क्षेत्र में सोमदेव के टक्कर के कम ही कवि हैं। सोमदेव की विशेष योग्यता उपमा और श्लेष अलंकारों में है। इस क्षेत्र में वह उत्कृष्ट कवियों की कोटि को सुशोभित करने का अधिकारी हो जाता है।[9]

---

१. क० स० सा०, ५६, ७६, १२१, ७२, १२३, २०७।
२. वासुदेव शरण अग्रवाल, क० स० सा०, पटना सं०, जि० १, वही, पृ० २६.
३. वही, पृ० २६.
४. क० स० सा०, ५४, २९-३८, ७१, ६७, ७२, २३.
५. वासुदेव शरण अग्रवाल, वही, पृ० २६.
६. क० स० सा०, ५५, २६.
७. वही, ६१, २६, ६१, २८-३१.
८. क० स० सा०, ६३, ५३-५४.
९. वही, ८७, २९-३२.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



ब्राह्मण हरिस्वामी की पत्नी दुर्भाग्यवश खो जाने पर उसने उन सभी स्थलों को खोजा जहाँ उसका मिलना सम्भव था। इस प्रकार वह एक तीर्थ स्थान से दूसरे स्थान को जाता रहा। इसी समय ग्रीष्म ऋतु का आगमन हो गया। कवि सोमदेव ने ग्रीष्म को भयंकर सिंह के रूप में चित्रित किया है जिसका जबड़ा मार्तण्ड का भयङ्कर मुख था और जिसके आयाल दिनकर की प्रचण्ड मयूखें थीं। जलाशयों का जल सूख गया है और सूखी मिट्टी जीर्णशीर्ण हृदय की भाँति पड़ी हुई है। पथों पर खड़े वृक्षों के ठूँठ ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे प्रिय मित्र बसन्त के विक्षोभ में खड़े हो, उसकी पत्तियाँ, अधरों की भाँति शुष्क हो चली हैं। लगता है कि वे बसन्त के विक्षोभ की व्यथा सह नहीं पा रही है।

कथासरित्सागर अनेक विध कहानियों का महार्णव है। उसके पूरे स्वरूप की कल्पना कठिनाई से ही की जा सकती है। सोमदेव का ग्रन्थ वसुधान-कोशों का समूह है अर्थात् उसमें रत्नों से परिपूर्ण अनेक डिब्बे भरे हुए हैं चाहे जहाँ से अपनी रुचि के अनुसार हम उन्हें चुन सकते हैं।[1]

यद्यपि इस ग्रन्थ में अनेक ऐसी कथाओं का समावेश है जो अन्य ग्रन्थों में भी सुलभ है तथापि सोमदेव ने उनका जितना आकर्षक वर्णन किया है उतना अन्य किसी का नहीं। फलतः कथासरित्सागर भारतीय वाङ्मय में एक मौलिक एवं महत्त्व-पूर्ण रचना के रूप में अवतरित होता है। भारतीय साहित्य में ही नहीं वरन् विश्व-साहित्य में भी इस ग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पश्चिमी जगत में कथासरित्सागर की कुछ कथाएँ जिनका मूल स्रोत सम्भवतः गुणाढ्य की बृहत्कथा थी, अत्यन्त लोकप्रिय है। कथासरित्सागर की कथाओं का उद्भव भारतीय भूमि पर हुआ है अथवा कुछ कथाएँ अन्यत्र पनपी हैं, किसी भी सीमा तक यथार्थता के साथ नहीं कहा जा सकता। कथासरित्सागर की कुछ कथाएँ विश्व की कतिपय साहित्यिक कथाओं से साम्य रखती हैं। उदाहरणस्वरूप, मरी मछली के हँसने की कथा, राजकन्या और चोर की कथा[3] आदि विश्व-साहित्य में प्रसिद्ध हैं। अन्य कथाएं कुछ परिवर्तन के साथ भारतेतर देशों के साहित्य में उपलब्ध हैं।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में प्रचलित कुछ कथाएँ सम्भवतः सार्थवाह, पर्यटक और धर्मप्रचारकों के माध्यम से अन्य देशों में गई होंगी। इनमें से कुछ कथाओं का उद्गम स्थान भारत ही है।[5] ऐसी कथाओं में पिशाचों की कथाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भारतीय साहित्य में कथासरित्सागर का स्थान वही है जो ग्रीक-साहित्य में होमर के ग्रन्थ इलियड और ओडिसी का है।

---

१. वासुदेवशरण अग्रवाल, क० स० सा०, पटना सं० वही, पृ० २६.
२. क० स० सा०, ५, १४. ३. वही, ६४, ४३. ४. वही, ३०, ९२.
५. वही, ३, ४७, २५,४७,७४,१९२,१२४,१०५, राजतरंगिणी, ४ ५०४ ४, ९, ४, ३३, ३६.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



कथासरित्सागर सांस्कृतिक अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। भारतीय संस्कृति के लगभग सभी पक्षों का उद्‌घाटन सोमदेव के कथासरित्सागर से होता है। तत्कालीन धार्मिक अवस्था तथा धार्मिक स्थलों का उल्लेख रोचक ढङ्ग से हुआ है। भारत में स्त्री-दशा, जाति-व्यवस्था, कला एवं स्थापत्य, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भारतीय दरबार, राजपूतों, देशवासियों, द्यूत-क्रीड़ा, मदिरालय आदि सभी सांस्कृतिक तथ्यों का दिग्दर्शन कथासरित्सागर में होता है। भारतीय संस्कृति के सम्यक् ज्ञान के लिए कथासरित्सागर का अध्ययन एक अनिवार्य विषय हो जाता है। भारत तथा भारतीय जनमानस का वास्तविक चित्रण महाकवि सोमदेव ने अपने ग्रन्थ कथासरित्सागर में मनोरञ्जक शैली में किया है।

**कथासरित्सागर की छन्द-योजना :**

कथासरित्सागर का छन्दों की दृष्टि से अनुशीलन करने से सोमदेव की छन्द-कुशलता का परिचय प्राप्त होता है। इसने संस्कृत के अनेक कठिन छन्दों का प्रयोग सफलता के साथ किया है। छन्द-संगति में अद्‌भुत सामञ्जस्य कथासरित्सागर की विशिष्टता है। सोमदेव के अनुष्टुम्, शिखारिणी और शार्दूल-विक्रीड़ित छन्दों के प्राञ्जल प्रवाह की छटा देखते ही बनती है।[1] परम्परा के अनुसार कवि ने भी तरङ्ग के अन्त में छन्द का परिवर्तन किया है। अपने वरिष्ठ समवयस्क क्षेमेन्द्र की भाँति सोमदेव ने भी कथासरित्सागर के अधिकांश भाग की रचना श्लोक में ही की है। संस्कृति के महान् कवियों ने ( अश्वघोष, कालिदास आदि ) अपने काव्य के अधिकांश अंशों को श्लोकों में ही लिखा है। कथासरित्सागर का अनुशीलन प्रारम्भिक मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति के उद्‌घाटन के लिए आवश्यक है।

अंग्रेजी, जर्मन और फ्रैन्च भाषाओं में इस लोकप्रिय ग्रन्थ का अनुवाद पहले ही हो गया है, इधर रूसी भाषा में इसका अनुवाद हो रहा है। इस अनुवाद के कुछ अंश प्रकाशित भी हो चुके हैं[2]।

---

१ जे० एस० स्पेयर, स्टडीज एबाउट दि कथासरित्सागर, अमेस्टंडम ( १९०८ ), पृ० १७४.

२ लेखक को रूसी पुराविद् डा० आइगर डी. सेरीब्रेकोव ने अपने एक पत्र में यह सूचना निर्दिष्ट की है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

# ग्रन्थ-सूची

## मूल ग्रन्थ ( साहित्यिक ग्रन्थ तथा उनके अनुवाद )


अग्निपुराण — सं० हरिनारायण आप्टे, पूना, १९००

अपरार्क — याज्ञवल्क्य स्मृति पर भाष्य, पूना, १९०३, १९०४

ईशानशिव गुरुदेव मिश्र — ईशानशिव गुरुदेव पद्धति, सं० टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १९२०–२५

उदयप्रभासूरी — सुकृत कीर्त कल्लोलनि, सं० सी० डी० दलाल (गा० ओ० सि०, जि० १०)

कल्हण — राजतरंगिणी, सं० स्टाइन, वेस्ट मिस्टर, १९००

कामन्दक — नीतिसार ; सं० आर० मिश्र, बि० इ०, १८८४

कात्यायन स्मृति — अनुवादक पाण्डुरंग वामन काणे

कूर्मपुराण — नीलमणि मुखोपाध्याय, कलकत्ता सं० १९९०

कौटिल्य — अर्थशास्त्र, यौली, बनारस, १९२३

कृष्णमिश्र — प्रबोधचन्द्रोदय, बम्बई, १९०४

गौतमधर्मसूत्र — हरदत्त भाष्य सहित, पूना, १९१०

गोवर्धन — आर्यासप्तशती, बंबई, १८९५

चन्द बरदाई — पृथ्वीराज रासो, सं० पाण्डिया और श्यामसुन्दर दास, वाराणसी, १९१३

चन्द्रशेखर — गृहस्थरत्नाकर, प्रकाशक, बि० इ०

— कृत्यरत्नाकर, प्रकाशक, बि० इ०, १९२५

— राजनीतिरत्नाकर, सं० के० पी० जायसवाल, पटना, १९३७

— विवादरत्नाकर, प्रकाशक, बिबलोथिका इण्डिका ( बि० इ० )

चतुर्भाणी — सं० डा० अग्रवाल तथा डा० मोतीचन्द्र, वाराणसी

जयदेव — गीतगोविन्द, संपादक, एच० मुखोपाध्याय

जयद्रथ — हरचरित चिन्तामणि ( काव्यमाला, नि० सा० )

जयानक — पृथ्वीराजविजय ( योनराज भाष्य सहित ) सं० एस० के० बेलवलकर, बि० इ०, ज० रा० ए० सो० १९१३, पृ० २५९ और आगे

जयसिंह सूरी — हम्मीरमदमरदन, सं० सी० डी० दलाल (गा० ओ० सि० जि० सं० १०)

जल्हण — सुक्तिमुक्तावली, सं० इ० कृष्णामचारी, गा० ओ० सि०, जि० सं० ८२

— मुग्धोपदेश, का० मा०, जि० ८

जीमूतवाहन — दायभाग, अनु० कोलब्रोक, कलकत्ता, १९१०

— कालविवेक, सं० मधुसूदन स्मृतिरत्न और परमार्थ नाथ तर्कभूषण, बि० इ०, १९०५

— व्यावहारमात्रिका, सं० आसुतोष मुकर्जी, मे० ए० सो० बं०, कलकत्ता

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)




जीनराज — द्वितीय राजतरंगिणी, सं० पेटरसन, १८९६

दामोदरगुप्त — कुट्टनीमतं, सं० नमदेश्वर चतुर्वेदी, इलाहाबाद

देवलस्मृति — प्र० ( आ० आ० सं० सि० ) पूना, अनुवादक, एम० एन० रे०, वि० उ० रि० सो, १९२७

धोई — पवनदूत, सं० चिन्ताहरण चक्रवर्ती, कलकत्ता, १९२६

नारदस्मृति — सं० यौली ( से० बु० ई०, ३३, भाग १ ) कलकत्ता, १८८५

नीलकण्ठ — दानमयूख, चौ० सं० सि०, वाराणसी

नीलमतपुराण — लीडेन, १९३६

पद्मगुप्त — नवसाहसांकचरित, सं० वामनशास्त्री, बम्बई, १८९५

पद्मपुराण — आ० आ० सं० सि०, १८९३

पाणिनि — अष्टाध्यायी, सं० सतीशचन्द्र बसु, बनारस, १८९७

पृथ्वीराजविजय — ज० रा० ए० सो०, १९१३, पृ० २५९

पूर्णभद्र — पंचाख्यांक, सं० ( भूमिका सहित ) जे० हरटेल, एच० ओ० एस०, ३ जिल्दों में, कैम्ब्रिज, १९०८–१२

बाणभट्ट — सं० ए० ए० फुहरर, बम्बई

बाहस्पत्य अर्थशास्त्र — सं० टामस, लाहौर, १९२१

बौद्धायन धर्मसूत्र — प्रकाशक, आ० आ० सं० सि०

बिल्हण — चौरपंचाशिका, १९४६

— कर्णसुन्दरी, सं० दुर्गा प्रसाद और परब, प्र० नि० सा० प्रे०

— विक्रमांकदेवचरित—सं० बूलर, बम्बई, १८७५

ब्रह्मवैवर्तपुराण — सं० जीवनानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, १८८८

बृहद्धर्मपुराण — सं० म० म० हर प्रसाद शास्त्री, कलकत्ता, १८९७

बृहद्नारदीय पुराण — सं० पंचानन तर्करत्न, कलकत्ता १३१७

बृहस्पतिस्मृति — अनुवादक जॉली, आक्सफोर्ड, १८८९

बुधस्वामी — बृहत्कथा श्लोक संग्रह, लाकोत, पेरिस, १९०८–१९२९

भक्तिरत्नाकर — ले० नरहरि चक्रवर्ती

भरत — नाट्यशास्त्र, बड़ौदा, जि० सं० ३६ और ६८

भवदेव भट्ट — प्रायश्चित्त प्रकरण, सं० गिरीश चन्द्र वेदान्त तीर्थ, राजशाही, १९२७

भविष्य पुराण — प्र० क्षेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई

भोज — राजमार्तण्ड। काणे, पूना जिल्द ३६

— समराङ्गसूत्रधार, सं० टी० गणपति शास्त्री, बड़ौदा, १९२४

— युक्तिकल्पतरु, सं० ईश्वरचन्द्रशास्त्री, कलकत्ता, १९१७

महाभारत — नीलकण्ठभाष्यसहित

मनुस्मृति — कुल्लूकभट्ट के भाष्य सहित, प्र० नि० सा० प्रे०, मेधातिथि के भाष्य सहित, सं० गंगानाथ झा, कलकत्ता, १९३२

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)




मत्स्यपुराण — प्र० आ० आ० सं० सि०, १९०७

मेदनीकोश — कलकत्ता, १८८४

मेरुतुंग — प्रबन्धचिन्तामणि, टॉनी द्वारा अंग्रेजी में अनूदित, बिबलोथिका इण्डिका, हिंदी संस्करण, मुनिजिनविजय।

यादव प्रकाश — विजयनीति, सं० ओपर्ट, मद्रास

याज्ञवल्क्य स्मृति — सं० धारपुर, बम्बई, १९३६

यादव प्रकाश — वैजयंती, सं० जी०, ओपर्ट, मद्रास

याज्ञवल्क्यस्मृति — सं० जे० आर० धारपूर, बम्बई, १९३६

यशपाल — महाराज पराजय, सं० मुनि० चर्तुविजय ( गा० ओ० सि०, जि० ९ )

रामायण — सं० टी० आर० कृष्णाचार्य, बम्बई, १९०५

लक्ष्मीधर — कृतकल्पतरु, सं० के० वी० रंगस्वामी अयंगर, प्र० गा० ओ० सि०
ब्रह्मचारीकाण्ड, जि० १, गा० ओ० सि० स० ६, १९४८
दानकाण्ड, जि० ५, वही, सं० ९२, १९४१
गृहस्थकाण्ड, जि०, वही, सं० १०१, १९४४
नियतकालकाण्ड, जि० ३, वही, सं० १११, १९५०
राजधर्मकाण्ड, जि० ११, वही, सं० ६, १९४४
शुद्धिकाण्ड, जि० १०, वही, सं० ११२, १९५०
तीर्थविवेचन काण्ड, जि० ८, वही, सं० ९८, १९४२
व्रतकाण्ड, जि० ९, वही, सं० १३०, १९५३

लेखाविपति — सं सी० डी० दलाल और जी० के० श्री गोनदेकर, गा० ओ० सि०, सं० १९, १९२५

वाचस्पति मिश्र — तीर्थचिन्तामणि, सं० कमलाकृष्ण स्मृतितीर्थ, बि० इ० १९१२

वल्लालसेन — दानसागर, सं भाभतोष भट्टाचार्य, बि० इ०, सं० २७४, १९५३-५५

वाराह पुराण — सं० पं० हृषीकेश शास्त्री, कलकत्ता

वाराहमिहिर — बृहत्संहिता, अनुवादक ( अंग्रेजी में ) एस० शास्त्री और एम० रामकृष्ण भट्ट, बंगलौर, १९४७
सं० सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८९५

वात्स्यायन — कामसूत्र, चौ० सं० सि० वाराणसी, नि० सा० प्रे०, बम्बई
डॉ० उपाध्याय द्वारा अंग्रेजी में अनूदित

विज्ञानेश्वर — मिताक्षर, नि० सा० प्रे०, १९२६

विष्णुधर्म्मोत्तर — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

शुक्र — शुक्रनीतिसार, सं० जिनविजय विद्यासागर, अनुवादक ( अंग्रेजी में ) बी० के० सरकार, पाणिनि आफिस, इलाहाबाद, १९१४

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)




शिवपुराण — सं० पंचानन तर्करत्न, बंग वासी प्रेस

संध्याकर नन्दिन — रामचरित, सं० डॉ० रमेश चन्द्र मजूमदार, बसाक और एन० जी० बनर्जी, राजशाही, १९३९

स्कन्द पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

स्मृति-संदर्भ — तीन जिल्दों में, गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता १९५२

सोढ़ल — उदयसुन्दरीकथा, सं० सी० डी० दलाल और ई० कृष्णमाचार्य ( गा० ओ० सि०, जि०, सं० ११ )

सोमदेव — नीतवाक्यामृत, प्र० मानिकचन्द्र ग्रन्थमाला सि०, सं० २२

सोमदेव भट्ट — कथासरित्सागर, नि० सा० प्रे०, सं० दुर्गाप्रसाद और काशीनाथ पाण्डुरङ्ग, चतुर्थ संस्करण, संवर्धित संस्करण वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री, पर्णसीकार, १९३०, मुम्बय्यां

— कथासरित्सागर, टॉनी तथा पेंजर द्वारा अनूदित, १८८०

— द्वितीय संस्करण, मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, दो जिल्दों में, १९६८

— कथासरित्सागर ( प्रथम खण्ड ) अनु० केदारनाथ शर्मा सारस्वत, पटना (मूल संस्कृत के साथ प्रथम लम्बक से षष्ठ लम्बक तक ) १९६०, द्वितीय खण्ड ( मूल संस्कृत के साथ सप्तम से एकादश लम्बक तक ), १९६१, तृतीय खण्ड ( मूल संस्कृत के साथ द्वादश लम्बक से अष्टादश लम्बक तक ), १९७३

सोमप्रभाचार्य — कुमारपालप्रतिबोध, सं० मुनि जिनविजयजी ( गा० ओ० सि०, जि० सं० १४ )

सोमेश्वर — मानसोल्लास, सं० जी० के० श्रीगोन्देकर ( ग० ओ० सि०, सं० २८ और ८४ )

श्रीधर — स्मृत्यार्थसार, सं० रंगनाथ शास्त्री वैद्य, आसंसि प्रकाशन

श्रीहर्ष — नैषधचरित अंग्रेजी में हन्डीकी द्वारा अनूदित, लाहौर, १९३४

हर्ष — प्रियदर्शिका, प्र० वी० डी० गेडरी, बाम्बे, १८८४

हेमचन्द्र — अभिधानचिन्तामणि, सं० हरगोविन्ददास, बेचरदास और मुनि जिन विजय जी, भावनगर, १९१४, १९१९

— देशीनाममाला, सं० पिशल, द्वितीय संस्करण के सं० पी० वी०-रामानुजस्वामी, पूना, १९३८

— द्वाशरकाव्य, सं० ए० बी० कठवत्ते, प्र० बी० एस० एस०, जि० सं० ६९ और ७९

— कुमारपालचरित (सर्ग २१-२८) द्वितीय संशोधित सं०, पूना, १९३६

— त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, अनुवादक, जान्सन, गा० ओ० सि० सं०, ५१, ७७, १०८ और १२५

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



हेमाद्रि — चतुर्वर्गचिन्तामणि, जि० २ ( वृतखण्ड ) बि० इ०, कलकत्ता, १८७८-१८७९।

क्षेमेन्द्र — देशोपदेश और नर्ममाला, सं० एम० कोल, पूना, १९२३

— बृहत्कथामंजरी सं० शिवदत्त और परब, बम्बई, १९३१

## विदेशी-विवरण

इलियट और डाउसन — हिस्ट्री आफ इण्डिया ऐज़ टोल्ड बाइ इट्स ओर हिस्टोरियन्स, जिल्द १ और २, १८६६, लन्दन

वील, सैमुअल — लाइफ आफ यूवान-च्वाङ्ग, लन्दन, १९१४

वही — बुद्धिस्ट रेकार्ड्स आफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड, दो जिल्दों में, १९०६

वाटर्स, थामस — आंन यूवान-च्वाङ्ग, लन्दन, १९०४-५

लेग्गे जे० एच० — रेकार्ड्स आफ दी बुद्धिस्ट किंगडम्स बीइंग एन एकाउण्ट आफ दी चाइनीज़ मॉन्क, फाहियान्स, ट्रैवल्स, आक्सफोर्ड, १८८६

साचो — अल्बरुनीज़ इण्डिया, दो जिल्दों में, लन्दन, १९१४

## अभिलेख

फ्लीट, जे० एफ० — गुप्त अभिलेख ( कारपस इन्सक्रिप्शन्स इंडिकेरम, जि० ३।

सरकार, दिनेशचन्द्र — सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स, जि० १; कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९४२

## मुद्राएँ

कनिंघम, एलेक्जेण्डर — क्वायन्स आफ मेडिएवल इण्डिया, लन्दन, १८९४ दूसरा संस्करण—

स्मिथ, विन्सेण्ट — इण्डियन एण्टीक्वेरी, जि० ३७ ( १९०८ ) पृ० ११४–१४८

वासुदेव उपाध्याय — भारतीय सिक्के, प्रथम संस्करण, सं० २००५, प्रयाग।

## अरबी तथा फारसी के मूल ग्रन्थों के अनुवाद

इलियट और डाउसन — हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टोल्ड बाइ इट्स ओभ हिस्टोरियन्स, जिल्द १-३ तक प्रयोग में लाया गया।

किताब-उल-हिन्द — अल्बेरूनी का अँग्रेजी अनुवाद ( अल्बेरुनीज़ इण्डिया ) अनु० साचो, दो जिल्दों में, लन्दन, १९१४

रेनूडाट, इ० — ऐंशेण्ट एकाउण्टस आफ इण्डिया एण्ड चाइना बाइ द्व मोहमडन ट्रेवेलर्स, लन्दन, १७३३

## आधुनिक ग्रन्थ

अल्टेकर, अ० सं० — हिस्ट्री आफ बनारस, १९३७

— स्टेट एण्ड गवर्नमेण्ट इन ऐंशेण्ट इण्डिया, बनारस १९४९

— एजूकेशन इन ऐंशेण्ट इण्डिया, बनारस, १९३४

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)




अग्रवाल, मोतीचन्द्र — भारतीय वेष-भूषा, ( हिन्दी ), प्रयाग
— सार्थवाह, पटना, १९५३
— ज० उ० हि० सो, जि० १६–१७
— पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वाराणसी, १९५५
— हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना, १९५३
— कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, बनारस, १९५८

ओल्डेनवर्ग — मटीरियल्स फार दी इन्वेस्टीगेशन आफ दी कलेक्शन आफ इण्डियन फेरी टेल्स, दी बृहत्कथा ( रूसी भाषा में शीर्षक )

अपर्णा चट्टोपाध्याय — इण्डिया इन कथासरित्सागर, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी का पी-एच० डी० शोध प्रबन्ध

उपाध्याय, वासुदेव — ए स्टडी आफ एन्शिण्ट इण्डियन इंस्क्रिप्शन्स, नई दिल्ली, १९६१

उपाध्याय, भरतसिंह — बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, इलाहाबाद, १९६७

उमेश मिश्र कमेमोरेशन वाल्यूम — गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीटयूट, १९७०

एफ० विलफोर्ड — विक्रमादित्य एण्ड शालिवाहन देयर रिस्पेक्टिव एराज़ विध ऐन एकाउण्ट आफ बाला रायज़ आर बलहर एम्परर्स एशियाटिक रिसर्च, जि० ९, पृ० ११७–२४१, कलकत्ता, १८०७, द्रष्टव्य एशियाटिक रिसर्चस, जि० ८, पृ० २६९

कनिंघम — ऐंशेण्ट जिओग्रेफी आफ इण्डिया, दूसरा संस्करण, कलकत्ता, १९२४

कर्न, एच० — मैनुअल आफ बुद्धिज्म स्ट्रेसबर्ग, १८९६

काणे, पाण्डुरंगवामन — हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, चार जिल्दों में पूना

कीथ, ए० बी० — हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, आक्सफोर्ड, १९२८

गांगुली, डी० सी० — हिस्ट्री आफ दी परमार डायनेस्टी, ढाका, १९३३

गुप्ता. बी० ए० — हिन्दू हालीडेज़ एण्ड सेरीमोनियल्स, कलकत्ता, १९१६

गोपाल, लल्लनजी — एकनामिक लाइफ इन नार्दन इण्डिया, वाराणसी, १९

धूरिया, जी० एस० — कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, न्यूयार्क, १९५०
— ए हिस्ट्री आफ इण्डियन पोलिटिकल आइडियाज़, आक्सफोर्ड, १९५९

धोणाल, यू० एन० — ए हिस्ट्री आफ इण्डियन पोलिटिकल आइडियाज़, आक्सफोर्ड, १९५९

चक्रवर्ती, पी० सी० — दि आर्ट आफ वार इन एन्शियण्ट इण्डिया, ढाका वि० वि० १९४१

चटर्जी, सी० डी० — सम आब्सर्वेशन्स आन दी वृहत्कथा एण्ड इट्स एलेज्ड रिलेशन दी मुद्राराक्षस, इ० क०, जि० १, भाग २, पृ० २०९ और आगे।

चाकलदार — सोशल लाइफ इन ऐंशेण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९२९

जायसवाल, का० प्र० — इम्पीरियल हिस्ट्री आफ इण्डिया, लाहौर, १९३४

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



झा, गंगानाथ — कम्परेटिव नोट्स आन मनु इन थ्री वाल्यूम्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९२४-१९२९ मनुस्मृति ( मूल और मेधातिथि के भाष्य सहित )

टॉनी, सी० एच० — दी ओसन आफ स्टोरी, दो जिल्दों में, १८८०-७

— कथासरित्सागर, १९६८ में पुनः मुद्रित, मुंशीराम मनोहर लाल,

टाड, जे० — एनाल्स एण्ड एन्टीक्यूटीज आफ राजस्थान सं० डब्ल्यू० कूक, आक्सफोर्ड, १९२०

ठाकुर, उपेन्द्र — दी हिस्ट्री आफ स्युसाइड इन ऐंशेण्ट इण्डिया, मुंशीराम मनोहर लाल, प्रथम संस्करण, जनवरी, १९६३

डे०, नन्दलाल — जिओग्रेफिकल डिक्सनरी आफ एंशियण्ट एण्ड मिडिएवल इण्डिया।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद — नाथ संप्रदाय, इलाहाबाद, १९५२

दासगुप्ता, एस० एन० तथा डे० एस० के० — ए हिस्ट्री आफ संस्कृति लिटरेचर ( क्लौसिकल पीरियड ) जि० १, कलकत्ता, १९४७

दीक्षितार, वी० आर० आर० — वार इन एन्शियण्ट इण्डिया ( दि० सं० ) लन्दन, १९४८

नैनार, एस० एम० एच० — अरब जिओग्रैफर्स नालेज आफ सर्दन इण्डिया, मद्रास, १९४२

पेन्जर, एन० एम० — दी ओसन आफ स्टोरी, लन्दन १९२४-२८।

प्रसाद, एस० एन० — स्टडीज इन गुणाढ्य, चौखम्बा ओरिएण्टालिया, वाराणसी, १९७७

— कथासरित्सागरकालीन धर्म, हिन्दुस्तानी, भाग ३३, अंक २, १९७२

— संस्कृत का ऐतिहासिक वाङ्मयः पुनर्मूल्यांकन, परिषद् पत्रिका, वर्ष १६, अंक १, १९७६

फिलिप्स, सी० एच० — हिस्टोरियन्स आफ इण्डिया, पाकिस्तान एण्ड सीलोन ( पुनः मुद्रित ) १९६२

वार्नेट, एल० डी० — दी गोल्डेन टाउन एण्ड अदर टेल्स फाम सोमदेवाज़ 'ओसन आफ रोमांस ऑफ रिवर्स,' लन्दन, १९०९; रोमांस आफ दी ईस्ट सीरीज़ का यह एक भाग है।

ब्रिन्स — गोरखनाथ एण्ड कानफटी योगीज़, कलकत्ता, १९३८

बागची, पी० सी० — स्टडीज़ इन तंत्रास, कलकत्ता, १९३९

बैशम, ए० एल० — दी अण्डर बैट वाज इण्डिया, लन्दन, १९५४

— दी हिस्ट्री एण्ड डाक्ट्रिन आफ दी आजीविकास, लन्दन, १९५१

मजूमदार र० च० और पुशालकर, ए० डी० — दी ऐज आफ इम्पीरियल कन्नौज ( भारतीय विद्या भवन सीरीज ), दी स्ट्रगल फार इम्पायर ( वही, बम्बई, १९५७ )

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)




मैकक्रिण्डिल — ऐशेण्ट इण्डिया एज़ डिस्क्राइब्ड बाई मेगस्थनीज़

मुकर्जी, रा० कु० — एशेण्ट इण्डियन एजूकेशन, लन्दन, १९५१

रे०, एच० सी० — डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया, कलकत्ता, १९३१, १९३६

रायचौधरी, हेमचन्द्र — पोलिटिकल हिस्ट्री आफ ऐंशेण्ट इण्डिया, ( छठवाँ संस्करण )

— स्टडीज इन इण्डियन ऐन्टीक्यूटीज, कलकत्ता, १९३२

राय, उदय नारायण — प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, १९६५

— Studies in ancient Indian History and Culture 1969

लाकोत, एफ० — एसे आन गुणाढ्य एण्ड दी बृहत्कथा, मूल फ्रेंच से फादर टेबार्ड द्वारा अनूदित क्वाटरली जनरल आफ दी मिथिक सोसाइटी, जि० ४, पृ० २६ तथा आगे पुर्नमुद्रित बंगलोर, १९२३

वासुदेव विष्णु मीराशी — दी हाउस आफ गुणाढ्य, ओरियण्टल घाट, जि० १, पृ० ४४

वर्थेन, बी० हेल० — स्टोरी आफ देवस्मिता, अ० रा० ए० सो० जि० १६ ( न्यू सिरीज़ ) १८८४, पृ० १–१२

विद्यालंकार, अग्निदेव — प्राचीन भारत के प्रसाधन, काशी, १९५८

बियोगी, मोहनलाल महतो — जातक कालीन भारतीय संस्कृति, पटना, १९५८

शिवदत्त, एम० पण्डित और के० पी० परब — दी बृहत्कथामंजरी आफ क्षेमेन्द्र, संपादक एवं प्रकाशक तूकाराम जावजी, बाम्बे, १९०१

स्पैथर, जे० एस० — स्टडीज़ एबाउट दी कथासरित्सागर, अमेर्स्टडम, १९०८

सांस्कृत्यायन, राहुल — मध्य एशिया का इतिहास ( दो खण्डों में ) बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्

शर्मा, दशरथ — अर्ली चौहान डायनेस्टीज, दिल्ली

शर्मा, ब्रजनारायण — सोसाइटी इन नार्दन इण्डिया, दिल्ली–६, १९६६

यस० रंगाचार्य — आन दी इमीडिएट सक्सेसर आफ दी कथासरित्सागर ह० हि० क्वा० जि० १४, पृ० ५७ और आगे।

हाज़रा, आर० सी० — स्टडीज़ इन दी पुराणिक रिकार्डस आफ हिन्दू राइट् एण्ड कस्टम्स, ढाका विश्वविद्यालय, १९४०

हन्डीकी, के० के० — यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, शोलापुर, १९४९

हर्ष, ओमप्रकाश — कथासरित्सागर में सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ, सागर विश्वविद्यालय

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

# अनुक्रमणिका


अ

अरिसिंह १९
अङ्ग १५२
अङ्गुत्तर निकाय १६३, १६४
अकबर १६
अग्निपुराण १७१
अगस्त १६३
अचिरवती १८१
अज ३२
अजयगढ़ २०३
अजमेर ७
अथर्ववेद १४४, १७६
अर्थशास्त्र ६७, ७०, ७९, १३५, १३६, १९५
अर्थवर्मा १४४
अनन्त १४, २०५
अन्तर्वेदी १५३
अन्योक्ति मुक्ताशतक १९
अपरान्त १६४
अबुलफ़जल २००
अबू जैद अलहसन १८७
अमरकण्टक १०२, १५३
अम्बपाली ११७
अभिधान चिन्तामणि १६२
अभिधान संग्रह १६१
अपरार्क ६४
अपरान्त १८३
अमृतरङ्ग काव्यम् ५१
अमरकोष १९५
अयोध्या ३८, १५४
अरब ३३
अर्बुजद ६७
अपर्णा चट्टोपाध्याय ६२, ६८, १२०
अलइदरीसी ५३
अलकनन्दा १६५
अलङ्कारतिलक ४४
अल्टेकर ७२, ७६, ८२, १०१, ११६, ११७, १२६, १७३, १७८
अल्बेरुनी ६५, ७१, ७५, ८३, ८९, ९१, ९५, ९९, १९२
अलमसऊदी ६७
अवदानमाला ३१
अवदान शतक ३१
अवन्ति १५४, १६७, १८३
अवन्तिका १५७
अवन्तिपुरी १५७
अवलोक ३५
अवसार सार ५१
अशोक ४, १३, १६४, १६७
अशोकदत्त १३७
अश्वघोष २१६
अहिच्छत्र १५३
अत्रि ७, ९, ६३, ९५
अत्रि संहिता ८९, ९७, ९८
अष्टाध्यायी, ७७, १४५, १५२, १५५, १५७, १५८ १६९

आ

आर० सी० मजूमदार १९२
आंगिरस १६
आर० पिशल ४३, ४४
आरेल स्ताइन ५, ११, १३, १७, १९७
आइने अकबरी २००
आकर्षिका १५५
आचार्या ७१
आदित्यप्रभ १८१
अग्निदत्त १७१
आपस्तम्भ १०२
आयङ्कर ४५
आमदरिया ३३
आवश्यक चूर्णि १७१
आसाम १६२
आहवमल्ल १०, १११

इ

इख्तियार उद्दीन मोहम्मद बख्तयार खिलजी १००
इब्नखुरदाब्द ७६, ७९, ९५
इब्नमसह १४३
इरावती १४९, १५५, १५६
इलाहाबाद १७७, १८०
इलियट ५४, ५८, ६३, ६७, ७६, ७९, ९५
इक्षुमती १५६

ई

ईरान ३३, १७१, २०८
ईलियड २०६, २१५
ईश्वरी प्रसाद १०५

उ

उच्चल १३
उज्जयिनी १३५, १४२, १४५, १५६, १७४, १७७, १८२
उरस्थल द्वीप १५६
उत्तरापथ ८२, ९७, १५७
उद्योतन सूरी ३५

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)




उदयगिरि २८
उदय नारायण राय ८२, १७१ १७२, २०४
उदयन ४७, ७८, ११०, १३८, १३९, १४८, १४९, १५०, १६२, १६७, १७५, १८२, २०८
उदय सुन्दरी कथा १९७
उद्योतकेसरी १८९
उपकोशा १०९
उर्वशी ३७
उर्वशी रमण ३७

ऋ

ऋग्वेद २७, ३७, ८७, १४१, १६५, १७१, १७३; १७९
ऋतुसंहार १२५
ऋष्यश्रृङ्ग १५२

ए

ए० बी० कठवते १८
एटा १५८
एल० एम० जोशी ५९, ६०
एल० डी० बार्नेट १८८
एस० के० डे १६, १७, १८, २३, १५८
एस० एन० दासगुप्त ३१
एस० एन० प्रसाद ३६, ३९, ४०, ६२, १७७
एथेन्स ४
एमीनियन ३३
एसई स्यूगुणाढ्य एटला बृहत्कथा ३३, ३५

ऐ

ऐतरेय ब्राह्मण १७६
ऐथेना ७८

ओ

ओडसी २०६, २१५
ओदत्तपुरी १००
ओम प्रकाश १०९

औ

औचित्य विचार चर्चा ५१

क

कटाह द्वीप ८१, १५८
कथकम् ३८
कथाकोष १६१
कथासरित्सागर ६, २२, २६, ३०, ३२, ३३, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४५, ५३, ६०, ६१, ६४, ६५, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७६, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९७, ९८, १००, १०१, १०२–११३, १४४–१६१, १६३, १६४, १६६, १६८, १७१, १७२, १७३, १७५, १७७, १७९, १८२, १८८, १९२, २०१; २०५, २०६
कनक ११
कनक जानकी ५१
कनकपुर १५९
कनकपुरी १६०
कनखल १५८
कनिंघम १५८
कनिष्क ३०, ३४
कन्नौज ७, ५७, ६६, १६१, १७५
कन्यका १५९
कन्यकुब्जा १६२
कन्याकुब्जा १६१
कपटेश्वर १५९
कब्जगिरी १६२
कम्बुज ३५
कमलपुर १६०
कम्पिला १६१
करछना १७७
करतोया १६२
कर्पूरमञ्जरी ६९
कर्पूर संभव द्वीप ८१, १५९
कलश १५, ११२
कलश पुर १६०
कलाविलास ५१
कल्पद्रुमकोष १६१
कल्हण ११–१४, १६, १७, ३४, ७०, ७८, ११२, ११३, १२५, २०५
कल्याण ८
कविकण्ठाभरण ५१
कणहपा ६०
कर्ण १५२
कर्णगढ़ १५२
कर्णदेवराय १६२
कर्णदेव त्रैलोक्यमल्ल ८
कर्णप ११
कर्णाट १०७, १६०
कृत कौमुदी १८
कृतकल्पतरु २००
क्रमदीश्वर ४३
कृष्ण ३४
कृत्यकल्पतरु ६५, ७१, ७५, १०३
काञ्चनश्रृङ्ग १६१
काञ्चनजङ्घा १६१
काञ्ची १६३
काञ्चीमाहात्म्य १५४, १५७
काञ्चीवरम् १६३
कार्कोटक १६१
कात्यायन ४०, १४३
कादम्बरी २६, ३५, ९१, १२५, १२८, १७३, १७६, २०७

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



कातन्त्र २७
कात्यायन श्रौतसूत्र १७६
कान्यकुब्ज ८, ८१, १४४, १६१, १७८
कामरूप १६२
कामसूत्र १३४, १३८–१४०, १८४
कामाख्या १६२
काम्पिल १६१
काम्पिल्य १६१
काम्यनाथ गिरि १६६
कालञ्जर १६४
कालादित्य १९९
कालिका पुराण ८९, १२२, १२३, १५५, १६२, १६३, १७६, १८२, १८३
कालिङ्ग बुड १९
कालिदास १०, ३१, ३२, ४७, ६९, १२५, १४६, १४९, १५६, १७१, १७६, १८३, २१६
कालिन्दी १७०, १७६
कावेरी १६२, १६३, १७६
कावेल १५३
कावेरी पत्तन ४७
काव्य मीमांसा १०५, १५७, १६१, १६२, १८१
काव्यादर्श २६, ४२, ४३
काव्यानुशासन ३५, ४३
काशी ८, ३८, १६७
काशीपुरी १६३
काश्मीर ७, ८, १०, ११, १३, १४, १७, १६०, १८३, २००
काणभूति ४०
काणे ६४, ६६, ७०, ७९, ८७
किरात १६२
किरियोपेदिया ३३
कीथ ४, ५, ६, ७, ९, १०, ११, १३, १७, १९, २१, २२, २३ ४७, १८९, २०९
कीलहार्न ४५, १९०, १९१
कुट्टनीमतं ११८, १७८, १९२
कुमारदेवी ७८
कुमारपाल १८, ६५, ७१
कुमारपाल चरित १७
कुमार सचिव १०८
कुमार संभव १२५, १४९, १५०
कुरुक्षेत्र १५६
कुल्लूक ६४
कुवलयमालकहा ३५
कुशस्थल १६१
कुश १६१
कुशनाभ १६१
कुसुमपुर १५२, १६४, १७०
कुषाण ४
कूचविहार १६२
कूर्म पुराण ११०, १५८, १७३
कैकेय ४३
कैसपियन सागर ३३
कोंकण ६५, १६४, १६६
कोनो ८
कोलार ३५
कोसम १६४
कोसल ३८, १६४, १८१
कोसल देवी ३८
कोसला देवी ७८
कौटिल्य ७९, १८१, १९५
कौशाम्बी ३८, १५२, १६४, १७४, २०३

ख

खारवेल २८
खजुराहो ६०

ग

गङ्गा १६४, १६५, १७१, १७२, १७५, १७७, १८०, १८२
गङ्गा नाथ झा ७७
गङ्गासागर १६५
गर्गचन्द्र ११
गया ८२
गरुण पुराण १६९
गाङ्गेय देव १११
गान्धार ४४, १७२
गाइएस ९१
गाधिनगर १६१
गाधिपुर १६१
गानी ९८
गाहा सतसई ३५
ग्रियर्सन २९, ३२
ग्रीस १८४
गुजरात १८, १७७, १९१
गुलेरी १७
गुणदेव ४१
गुणाढ्य २७–३०, ३२, ३४–४२, ४५, ४७, ५०, १७२, १७७, २०६, २१५
गोकर्ण १६५
गोदावरी १६५
गोवर्द्धन ३५
गोविन्द चन्द्र १६२
गोंडा २०३
गोमुख ४६
गोविन्दराज १०३
गोविन्दपुर १६६
गौडवहो ७
गौतम ६८, ७१
गौतम धर्मशास्त्र १९३
गौतमी गङ्गा १६५

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



गौरीशङ्कर हीराचन्द्र ओझा १७, ५६, ५८, ५९, ६३, ६७
गौहाटी १६२
गृहस्थ रत्नाकर ७०
गृहस्थकाण्ड ८३, ८७, ८८, ८९

घ

घुरये जी० एस० ७४, ८२, १९९
घोषाल यू० एन० ७२, ७३, १३१, १९१

च

चक्रपुर १६६
चण्डमहासेन १३८
चण्डप्रद्योत १५५
चतुर्वर्ग संग्रह ५१
चन्द्रगुप्त प्रथम ६६
चन्द्रगुप्त द्वितीय ३१, ३२, ९१
चन्द्रगुप्त मौर्य ६६
चन्द्रप्रभ १५६, १६६, १६७
चन्द्रलेखा १०
चम्पा ८२
चरक ३०
चाकलदार एच० सी० ११७
चाइल्डर्स ३०
चारुचर्या ५१
चासर २०८
चि० वि० वैद्य ३, ५३, ५४, ५६, ५७, ६५, ६७, ६८
चिन्तामणिपुर १६६
चिरपुर १६६
चित्रकूट १६६
चित्रगुप्त १९७
चित्रभारत ५१
चीन ८१, १६२, १६६
चेदि १००, १६४, १६७, १७२
चोल ९

छ

छलना ७८

ज

जगन्नाथ पुरी १५८
जयचन्द्र ७५, ७७, १०९, ११०
जयरथ ३९
जयसिंह १३, २००
जयसिंहाभुदय ११
जया २८, ४०
जयांकजयरथ १७
जलपुर १६७
जलपाईगोड़ी १६२
जातकट्ठकथा १५३
जाह्नवी १६५, १७९
जीमूतवाहन २१२
जे० एस० स्पेयर २८, ३०, ३१, ३४, २१६
जोगेश चन्द्र घोष १४१
जोजल्लदेव १९१
जोनराज १६
ज्योतिष्क्रम १७६

झ

झूँसी ३७, ३९, १७२, १८०
झेलम १७९

ट

टॉनी २०५, २०६, २०८, २०९
टॉलमी १७९
टोंस १८०

ठ

ठिण्ठाकराल १४२

ड

डॉन जुआन् २०७
डी० आर० भण्डारकर ६६, १५८ २०१
डेविड्स १५४

त

तञ्जौर १८३
तम्मलथपुर १६७
तहकीकाते हिन्द ७२
तक्षशिला ८२, १६८, १७७
ताम्रपर्ण १७३
ताम्रलिप्ति ८२, १६७, १६८
तारापुर १६८
तिलकमञ्जरी ३५
तुम्बवन १६८
तैत्तरीय संहिता १६५
तोडल तन्त्र १६३

द

दण्डिन् ३४, ४३
दर्पदलन ५२, १०१, १०३
दमयन्ती १३८, १३९
दशकुमारचरित १३३, १४७, १७१, १७४
दशरथ २, १५
दशरथ शर्मा १२०, १२५
दशरूप ४३
दशावतार चरित ५२, ११२
दामोदर गुप्त ११८, १७८
द्वासरकाव्य १७
दिक्करवासिनी १६२
दि० च० सरकार ६, २७, २९, १६४, १६७, १७१, १७४, १७७, १९७
दिव्यावदान ५०, १५३
दिङ्ग १६२
दीपवंश १६८
दीघनिकाय १६३, १७१
दुर्विनीत ४५
देवदत्त १०१
देवदीन १८६

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



देवल ६६, ७५
देवल स्मृति ९९
देवसेन १८०
देवस्मिता २११
देवागार १६९
देशीनाममाला १४३
देशोपदेश ५२, ११२, १९२
दौलताबाद १६९

ध

धर्मदत्त १६४
धर्मदासगणि ३५, ४८, ४९
धनपाल ३५
धनवती ४९
धनिक ३५
धर्मपाल ७८
ध्वन्यालोक २६
ध्रुव भट्ट ७८
ध्रुव स्वामिनी ७८

न

नग्नदेश १७०
नन्द ४०
नन्दिदेव ४१
नन्दलाल डे १६१
नर्मदा १७०, १८२
नर्ममाला ५२, ८४, १९६, १९८, २०२
नर वाहन दत्त ४१, ४२, ४६, ४७, ४८, ४९, १३३, १४५, १६४, २०७, २०८, २१४
नल १३६, १३९
नल चम्पू ३५, १३९, १४५, १४७, १५२, १५४, १६०, १६३, १७१
नगेन्द्रनाथ घोष ४०
नरसिंह १७२
नवसाहसांक ८
नवसाहसांकचरित ८
नागदत्त १४७
नागपुर १७०
नागार्जुन ३०
नादवी ५३
नारद ७१
नालन्दा १००, १०४, १७८
नागस्थल १७०
नामिसाधु ४३
नारिकेल द्वीप ८२, २१४
निश्चयदत्त ३३
नीतिलता ५२
नीरो ३०
नेपाल ४४
नेमिसदन बोस २०२
नैषध चरित १३०, १९७
नृपेन्द्र कुमार दत्त १९५, १९७, १९९, २००, २०१

प

पञ्चतन्त्र २३, २५, २६, २०९, २१२
पञ्चविंशब्राह्मण १७६
पतञ्जलि २२, २६, १४३, १६०, १९४
पद्मदेश १७१,
पद्मगुप्त १७६
पद्मपुराण १६३, १६५, १६६, १७३, १७१, १७२, १८१
पद्मावती १३९, १६७, २०८
पपञ्चसूदनी १८१
पथकादम्बरी ५२
परमस्थ ज्योतिथा १६४
परमारदीन १०८
पराशर ८७, ८८, ८९, ११०
पराशर स्मृति ८८
परीक्षित १४४
पवन पञ्चाशिका ५२
पा० वा० काणे १९४, १९५
पाञ्चाल ४३, १६१, १६२, १६४
पार्जिटर १७४, १८०
पाटली ३२
पाटलिपुत्र ११६, १६४, १६८, १७०, १७१, २१२
पापशोधन १७२
पारसीक ४, १७१
पाणिनि २३, २८, ७७, ८२, १४२, १४३, १६०, १६१, १६३, १९४
पी० आचार्या १८९
पी० थामस ६१, ६२, १९१, १८४ १८७, १८८
पी० के० गोडे ११७
पेन्जर २०८
पेरिप्लस १७२
पुण्ड्रवर्धन १७३
पुरूरवा ३७, १६५
पुशालकर २७, ३२
पुष्कर १७२
पुष्करावती १७२
पुष्कलावती ८२, १७२
पुष्पदन्त २८, ४०
पुष्पपुर १७०
पुत्रक ३२
पेटरसन ११, २७
पैठन ३६, १७२
पैशाची ३९, ४२, ४३, ४४
पौण्ड्रवर्धन १७२
प्रजापति-स्मृति ५४
प्रताप मुकुट १३७

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



प्रतिष्ठान ३०, ३६, ३७, १५५ १७२
प्रतिष्ठान पुर १८०
प्रद्युम्न ५०
प्रद्योत १७३, १७४
प्रबन्धचिन्तामणि १०८, १११
प्रभावती गुप्ता ७८
प्रयाग ८, ३७, ३८, ३९, ८२, १६६, १७१
प्रसेनजित ३८, १६४, १८१
प्राकृत सर्वस्व ४३, ४४
प्रागज्योतिषपुर १६२
प्राज्यभट्ट १६
प्रभाकर वर्द्धन ७८
प्रायश्चितकाण्ड ८३
प्रिन्सेप १७, १८३, १९०
पृथ्वीराज विजय १७

फ

फ्लीट ४५, ९१
फाह्यान ९१
फैजाबाद १५४

ब

बङ्गाल १९९
बगदाद १०५
बदरिकाश्रम१७३
बम्बई १६४
बरजेस १८
बल्लालसेन ६६
बहु सुवर्ण ग्राम १७३
बृजनारायण शर्मा ८९, ९०
बृजेश्वर वर्मा ५७
बृहत्कथा २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३४, ३५, ३६, ४१, ४२, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, १७२, २०६
बृहत्कथामञ्जरी २२, २६, २८, ३३, ३४, ३५, ३६, ३८, ३९, ५०, ५१, ५२, ६१, ६८, ७०, २०९
बृहत्कथा श्लोक संग्रह ३५, ४५; ४६, ४७; ५१, १४७
बृहत् संहिता १२, १६०, १६२, १६३, १७२, १८१
बृहद् धर्मपुराण
बृहद्देवता ३८
बृहद्रथ १९८
बृहन्नीलतंत्र १६३
बृहस्पति ७०, ७२
बृहस्पति स्मृति ८८
बाख्त्री यवन ४
बाल रामायण ४४
ब्लाख० टी० १८५, १८६
बास ५१, २१३,
बाण ७, १२, १८, २७, ३१, १२६, १७३, २०७
बिन्दुसार ७८
बिम्बसार ३८
बिम्बिसार ७८
बिल्हण १२, १९, १५, ९, १०, ८
बी० केनकाय १९१
बी० दीक्षितार १५
बी० पी० मजूमदार १९२, १९५, १८४, १८९
बी० बी० लाल १८२
बील १७१, १७३, १९९
बुद्ध ३८
बुद्ध घोष १६४, १८१
बुद्ध वंश १५५
बुधस्वामी ६५
बुद्ध स्वामी ४५, ४६, ४७
बूलर १०, १७, २०५
बूलर जार्ज १७, १८, २७, ५०
बेनफी २१२
बेनी प्रसाद १९५
बेबीलोन १८४
बेबीलोनिया ३३
बेरुगाजा १७३
बेलवरकर १७
बैशम, ए० एल० ११७, १८४, १८५, १८७, १८८, १९३
बोकेशियो २०८
बोधिसत्वावदानकल्पलता ५२
बौधायनधर्म सूत्र ८३
ब्लूमफील्ड २१०
ब्रह्मवैवर्त पुराण ६४
ब्रह्मपुत्र १६२
ब्रह्मपुराण १६५
ब्रह्माण्ड पुराण ८७, १६५, १६६

भ

भक्तिप्रसाद मजूमदार ६१, ६४, ६९, ८३, ८४; १००, १२२, २०२
भगदत्त १६२
भगवतशरण उपाध्याय १६२
भगवान दास ५५
भड़ोच १७३
भरतसिंह उपाध्याय १५२, १५३, १५५, १५६
भरहुत २१, २५
भविष्य पुराण १५३, १८८
भृगु १७३
भृगुकच्छ १७२
भृगुपुर १७३
भागवत कुमार गोस्वामी ५५
भागवतपुराण १६२, १६३, १६५, १६६, १७४, १७९, १८१

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



भागीरथी गङ्गा १६५
भामह ४३
भारत ३३
भारत मञ्जरी ५२
भास १७७
भिक्षाचार १३
भुवनेश्वर १९१
भोज १४, ३५, ७४
भोजदेव ४४

म

मङ्कणक १५६
मकरान्दिकर १४०
मगध ३८, १६४, १७३
मजूमदार ए० के० १२६
मज्झिम १६३
मतङ्गी १०८
मत्स्य १६७
मत्स्यपुराण ३०, ३७, ५०, ११०, १५८, १६६, १७१
मत्स्येन्द्रनाथ ९०
मथुरा ८, १७०, १७४, १७५
मदनमञ्चुका ४६
मन्दराचल १६९, १७५
मद्रदेश १७४
मद्रास १६३
मध्य एशिया ३३
मध्यम वसुदेव हिण्डी ३५
मधुकरी १७४
मनु ७१, ७७, ८३, ८७, ८८, १०२, १०९, ११०, १३६, १९३
मनुस्मृति १५३
मणिमंखलई १८३
मललसेकर १५६, १६७
मल्ल १६४
महमूद गजनी १९२
महाकात्यायन १५५
महाभारत २५, ३७, ३९, ४३, ५०, ११०, १५२, १५३, १५८, १६१, १६२, १६३, १६५, १६६, १६९, १७३, १७१, १७४, १८१, १८२, २१४
महाभाष्य २२, १५३, १५५, १६५
महावंश १६८, १७७
महावस्तु १७१
महाराष्ट्र १६४
महाक्षत्रप रुद्रदामन ६
महिष्मती १७०
महोदय १६१
महोदया १६१
माकन्दिकर १७५
मार्कण्डेयपुराण १६०, १६५
मार्टिमर ह्वीलर १२४
मानक १७
मानकोवस्की ५१
मानसर १७५
मानसोल्लास १०२
मायादेवी १६९
मालव १७६
मालवा १४४
मालविकाग्निमित्रम् ३१, ६९, १४९
माल्यवान ३९, ४०
मार्शल १२४
मिताक्षरा २००
मिलिन्द ११७
मिलिन्द पण्हो ११७
मिलिन्द पण्हो १६७, १७४
मिराशी ( डॉ० ) ३६, ४०
मिस्र १८४
मुखार ९७
मुक्तापुर १७५
मुक्तावली ५०
मुक्तिपुर द्वीप १७५
मुद्राराक्षस ३१, ३२
मुनिमत-मीमांसा ५२
मुञ्ज ६६
मुरल १७५
मुलीपुर द्वीप १७५
मुश्तान ५७, ५८, १८८
मुहम्मद गोरी १७
मुहम्मद बिन साम ५४
मूलराज १११
मेकडानल १८९
मेक्रिण्डिल १७१
मेघदूत १५७, १७६
मेधातिथि ७७, ८३, ८८, ९१
मेनका १५६
मेरुकच्छ १७३
मेरुतुङ्ग १०८
मेसोपोटामिया ७७
मैके १२४
मोतीचन्द्र ८०, ८२, १२५, १२८, १८५
मोहन लाल महतो १४४

य

यमुना १६७, १७१, १७४, १७६
यवन ४
ख्वान् ख्वाङ्ग ६३, ९१, १५१
यशस्तिलक चम्पू ३५, १०८
यशोवर्मन ७, ८
यज्ञ श्री ३४
यादव वलन १७४
याज्ञवल्क्य ७१, ७२, ७९, ८८, ९१, १०३, १९४, १९६, २००
याकोबी १७, २४

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



युगपुराण ९८, १७०
युधिष्ठिर प्रथम १४
युवराज देव १०८
योगिनी तंत्र १६०, १६२, १६३, १७३
योरोप ३३
यौगन्धरायण २०८

र

रङ्गपुर १६२
रङ्गु १३
रत्नकूट १७६
रत्नवर्मा १६६
रत्नपुर १७६
रत्नाकर १७६
रत्नावली १२२
रघु ६२
रघुवंश १०, १४९, १५०, १५४, १५६, १६३, १६५, १६६, १७०, १७४, १७६, १८३
रमाशङ्कर त्रिपाठी १६२
रमेश चन्द्र मजूमदार २१, ५६, ६१, ७५, ८३
रविकीर्ति ६, ९०
रवि शान्ति ६
रणादित्य १३
रा० कु० मुकर्जी ७, १००
राखाल दास बनर्जी १९५
राइट ५५
राजग्रह ८२
राजतरङ्गिणी ९, ११, १२, १५, १६, १७, २०, २२, ३४, ६१, ६४, ६८, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७६, ८३, ८४, ८५, ९५, ९६, १०२, १०३, १११, ११२, ११३, १२०, १२६, १२७, १३०, २००, २०५, २१३
राजधर्मकाण्ड १०३
राजशेखर १०४, १०८
राजावली ५२
राजावलिपताकर १६
राजेन्द्र कर्णपूर १९
राधा १७६
राबर्ट ब्राउनिंग २०८
रामचरित १९, १३०
रामपाल १९, २०२
राम शरण शर्मा ९०
रामायण ३९, १५४, १६१, १६३, १६६, १७१, १७९, १८०, १८१
रामायण मञ्जरी ५२
रायचौधुरी १५४, १६९, १८३
राहुल सांकृत्यायन १५५
रिज़ले १९९
रीवाँ १९८
रुद्रट ४३
रुद्रसेन ७८
रूपणिका ११९
रे एच० सी० ८४
रैप्सन १५३, १८३
रोम ३३
रोमपाद १५२

ल

लङ्का १७६, १७७, १८०
लघु विष्णु ८७, ९१
ललित रत्नमाला ५२
ललित सुर देव ६
ललितादित्य ७
लक्ष्मणसेन १०८
लक्ष्मीधर ४३, ४४, ६६, ७०, ७५, ८०, ८२, ८८, ८९, १०२, १०३, ११२, २००
लाकोत ३३, ३५, ३६, ४५, ४६, ५०, ५१, २०८
लाट १७७
लाट्यायन श्रोतसूत्र १७६
लाफोतेन २०८
लावाणक १७७
लावण्यवती ५२
लावायन १७७
लास्सन ४३
लाहा, विमल चरण १५३, १५५
लाहा नदी १६२
ली० नेपाल २७
लुडविक स्टर्नबाख १६५
लेवी ३५, ५०
लौह नगर १७७

व

वत्स भट्टि ६
वत्सराज १३३
वररुचि ३९, ४३, ४४
वररुचिकात्यायन २८
वाराह मिहिर १२
वलभी १०४, १७७
वशिष्ट ७१, ७९
वंस १६४
वसन्त सेना ४६, १३८
वस्तुपाल १९
वसुदेव ४८, ५०
वसुदेव हिण्डी ३५, ४७, ४८
वराह दास ९०
वराह पुराण १६९
वरुणा १६३

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



व्यास १५, ३१
व्यास स्मृति ९१
व्यासाष्टकम् ५२
वाक्पतिराज ७, ८
वाग् भट्टालङ्कार ४३, ४४
वज्जि १६४
वाटर्स ६३, ८८, ९१, १५३, १६२, १७०, १७१
वात्स्यायन ११६, १३८, १३९, १४०, १८४
वात्स्यायन सूत्रसार ५२
वायु पुराण ८७
वाराणसी ४, ११, ८२, १०९, १४७, १६३, १७५
वाराहमिहिर १६१
वाल्मीकि १५, ३१
वाल्मीकि ग्राम १७९, १८०
वासवदत्ता २६, २८, ३५, ११४, १३८, १३९, १४९, २०७, २०८
वासिलज्यू २९, ४४
वासुदेव ३४
वासुदेव उपाध्याय ५४, ५५, ५६, ६१, ७३, ७४, ७६, ७७, ८०, ८६, ८९, ९४, ९९, १८५, २००, २०४
वासुदेवशरण अग्रवाल ३७, ४५, ४६, ४७, ४८, ५०, ५१, १०६, १२६, १२८, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४८, १५७, १५८, १५९, १७२, १७४, २०५, २०८, २०९, २१३, २१४, २१५, २१६
वाह्लीक ४४
वि० च० लाहा ३८, १६१, १६३, १६४, १६५, १६६, १७४, १७६, १८२, १८३
वि० श० पाठक ६, ७, १९, २०
विक्रमचन्द्र १७८
विक्रमतुङ्ग १७९
विक्रमपुर १७९
विक्रमशिला १००, १०४
विक्रमाङ्कदेवचरित ८, ९, १२, १९, २०, २२, १२६, १३३, १३४, १५४, १७२
विक्रमादित्य ८, ९,
विक्रमोर्वशीयम् १४६
विग्रहराज ७४
विजयसेन १९०
विडेपस १७९
वितस्ता १७९
विद्धशालभञ्जिका १०८
विन्ध्यारण्य १७९
विद्युन्माला १६७
विनयतोष भट्टाचार्य १०
विनय पिटक ३८, १५३, १६२, १६७
विनयवल्ली ५२
विनयादित्य ७४
विन्टरनित्स १२, १३, १६, २१, २३, २४, २५, ३६, ३७, ४२, ४५, ४६, ५०, ५१, १३२, २०५, २०७, २१०, २११, २१२, २१३, २१४
विन्ध्यपर्वत १६५, १६७
विन्ध्यक्षेत्र ३१
विन्ध्याचल २९
विभीषण १७६, १७७
विन्सेन्ट स्मिथ २७–३०, १५३
विविधतीर्थकल्प १५४
वियोगपुर १७९
विश्वरूप १
विश्वामित्र १५६
विशाखदत्त ३२
विशिष्ट धर्म सूत्र ९५
विष्णुदत्त १०३, १०४, १७८
विष्णु धर्म सूत्र १९४
विष्णुदास ९१
विष्णुधर्मोत्तरपुराण १७१
विष्णुपुराण ३८, ९०, १६४, १८२
वि० ए० स्मिथ ६, ७
वीर सेन ६
वेर्गोसा १७३
वेदकुम्भ १०१
वेदव्यास ९५
वेणवा १६४
वतालपञ्चविंशति २६, २८, ११४
वैद्यनाथ १८१
वैरीगाजा १७३
वैशाली ८२

श

शक ४
शतपथ ब्राह्मण ३८, १६५
शर्ववर्मा २९
शशिवंश महाकाव्यम् ५२
शक्तितन्त्र १५२
शाकल ८१, १७४
शाक्यसिंह २१
शाकुन्तलम् १२१, १३३
शिप्रा १५७, १८२, १८३
शिलप्पधिकारं ४९
शिव ५०

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



शिशुपालवध १६९
शिसुक २८
शीतोदा १८०
शिलादित्य १९९
शुक्रनीतिसार ७०, ९१, १०३, ११२, ११३
शुङ्ग २८
शूद्रक ४६
शूरपारक ५०
श्वेतद्वीप ८१; २१४
शैलपुर १८०
शौरसेन ४३
श्रावस्ती १५५; १६४, १८१
श्रीकण्ठ १८१
श्रीकण्ठ विजय १७
श्रीनगर १७१
श्रीपुलमावी ६
श्री सेन १३४
श्री हर्ष १९७
श्रुतसेन १६५

स

सङ्घदास गणि ३५, ४७, ४८; ४९
सङ्घमित्रा १६७
संयुक्त निकाय ३८, १५४
स्कन्दगुप्त ६, ५८, १५४, १६३, १६९, १७१, १७२, १७३, १८३, १९६
स्मृतिचन्द्रिका १०३
सतसई २१
सन्ध्याकर नन्दिन् १९
सप्तशतक २७
सप्तशती ३५
समन्तपासादिका १६४
समयमातृका ५२; ७०, ९३, ११३; १९२
समुद्रकूप ३७
समुद्रगुप्त ६; १५४, १८०
सरगृह द्वितीय ७८
सरस्वतीकण्ठाभरण ३५, ४३
सहस्रनीक १३०
सरयू १५४
स्वप्नेश्वर १९०
स्पेयर, जे० एस० ३६
सांख्यायन श्रौतसूत्र १७६
साचो ५३, ५६, ६५; ७१, ७२, ७५, ८३, ८९, ९१, ९५, ९९, १००, ११०, १९१
सातवाहन ४१, ४२
सामन्तसेन ६६
साहित्य दर्पण ४३
सावत्थि १६४, १८१
सासन वंश १५६
सी० कैपलर ३१
सीता १८०
सीताराम १५४
सिद्धेश्वरी नारायण राय ७७
सिन्धु १७२
सिन्धुक २८
सिमुक २८
सीरिया ३३
सिलवाँ लेवी २७, ३१
सिंहदेव गणिन् ४३
सिंहल १६८
सिंहल द्वीप ८१, १८०
सुकुमार सेन ५९
सुकृतस्मृतिकथा १९
सुतनुक १८६
सुत्तनिपात १६६
सुधाकर पटनायक १८९
सुनील चन्द्र रे ११२; १९२, १९८
सुन्दरपुर १८१
सुन्दरक १४४
सुबन्धु ३४, ३५, २०७
सुरतोत्सव १८
सुरोह १६६
सुल्तान जैनुल आब्दीन १६
सुलेमान १०९; १४२
सुवर्णद्वीप ८०, ८१, १८०
सुवृत्ततिलकम् ५२
सुशर्मा काण्वायन २८
सुशील कुमार डे २०९
सुसन्धि जातक १७३
सुसल १३, १५, १७
सूर्यमती १४, १५, १३२, २०५
सूरसेन १७४
सूर्यप्रभ १६६
सेठ एच० सी० ७७
सेनार्ट ४४
स्ट्रैबो ६१, १२०
सोढल १९७, १९९
सोमदेव ६, ३३-३९; ५१, ७०, ८१, १०२, १०६, १११, ११४, ११५-११९, १२१, १२४, १२८-१३७, १४०, १४२, १४४, १४६, १५०, १५१, १५४, १५६, १६१, १६४, १६५, १६६-१८१, १९२, २०५-२१४
सोमदेव सूरि ३५, १०८
सोमनाथ १९२
सोमपाल १७
सोमपाल विलास १७
सोमेश्वर देव १८
सौरपुराण १६३

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)



सौराष्ट्र १८१

ह

हंस-प्रपत्तन ३७
हजारी प्रसाद द्विवेदी १३७
हर्टेल २०९
हस्तिन् १८२
हस्तिनापुर ८२, १८२
हम्मीर महाकाव्य १२६
हर प्रसाद शास्त्री १९, ४५
हरचरित चिन्तामणि ३९
हर विलास सरद १७
हरादेश १८२
हरिद्वार १८१
हरिवर्मन ७८
हरिवंशपुराण १६३, १६५, १६९, १८३
हरिस्वामी २१५
हरिसेण ६, १६१
हर्ष ११, १३, १५, १६
हर्षदेव ९, १९
हर्षचरित ९, १२, २०, २७, २९, ३५, १२५, १७०, १७१, २१४
हर्षपुर १८२
हर्षवर्मा १८२
हाइड्रातिस १५६
हाइड्रेस १७१
हार्नले ४४
हाल २९, ३५
हिमांचल १८२
हिमालय १०, ३७
हिरण्यगुप्त ११३
ह्वेनसाङ्ग १९९
हेनी हेराल्ड हेन्सन १२६
हेमचन्द्र १७, ३५, ४३, ४४, १३६
हेमपुर १८२
हेमाद्रि ८३
हेरोडोतुस ३३
हेस्टिंग्स ११७, १८४
हुएनसाङ्ग ८८
हुत्समन २१
हुविष्क ३४
होमर २०६. २१५

क्ष

क्षिप्रा १८२
क्षीर सागर १८२
क्षेमेन्द्र ११, २६, ३२–३९, ५०, ५१, ६८, ९३, १०१, १०३, १११, ११२, ११९, १९६, १९८, २०२, २०५, २०९

त्र

त्रिकूट पताका १८०
त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित ३८, १३०
त्रिभुवन स्वामी ९६
त्रिभुवन पुर १८३
त्रिरुविपमदूर १८३
त्रिविक्रम भट्ट ३५
त्रैलोक्य वर्मन ७९

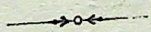

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

# शुद्धि-पत्र

| पृष्ठ | पङ्क्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ३५ | पा. टि. ४ | बृहत्कथालम्बेसरिव | बृहत्कथालम्बेरिव |
| ३८ | पा. टि. ४ | नाम्रा | नाम्रा |
| ४६ | पा. टि. ३ | बृहुत्कथा | बृहत्कथा |
| ५० | पा. टि. २ | वाण | बाण |
| ५३ | प्रथम | ५ | ४ |
| ६१ | पा. टि. २ | वासुदव | वासुदेव |
| ६३ | प्रथम | ६ | ५ |
| ६६ | पा. टि. ७ | ए०, इ०, | ए०. इ०. |
| ६६ | पा. टि. ९ | ज० ए० सौ० ब० | ज० ए० सो० बं० |
| १०६ | प्रथम | ६ | ७ |
| १०७ | पा. टि. ३ | कस्मादयित्रोबतेदृशः | कस्मादार्यपुत्रो बतेदृशः |
| ११२ | पा. टि. ६ | हिस्टी | हिस्ट्री |
| १३२ | पा. टि. १० | दशमकुमारचरित | दशकुमारचरित |
| १६२ | पा. टि. २ | त्रिपाठी-हिस्ट्री | त्रिपाठी, हिस्ट्री |
| १७२ | २२ | लीजेण्ट | लीजेण्ड |
| १७५ | पा. टि. १ | दूरादें कं | दूरादेकं |
| १७६ | पा. टि. ६ | सांस्थायन | सांख्यायन |
| १८६ | ३ | व्लाख | ब्लाख |
| १८८ | पा. टि. ३ | वार्नेट | बार्नेट |
| १९१ | पा. टि. ५ | हम्पायर | इम्पायर |
| २०० | पा. टि. १ | अकवरी | अकबरी |
| २२१ | ३० | अ० सं० | अं० स० |
| २२३ | १८ | वाङ्मय | वाङ्मय एक |
| २२३ | २७ | अण्डर बैट | वण्डर दैट |

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America..HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

## शोधपरक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१ रीतिकालीन लक्षण-ग्रन्थों में भाषाभूषण का स्थान। ले०—डॉ० सावित्री श्रीवास्तव, संस्कृत काव्य-शास्त्र की पृष्ठभूमि को सामने रखते हुए महाराज जसवन्त सिंह के भाषा-भूषण का हिन्दी लक्षणग्रन्थों में क्या स्थान है, इसका समुचित विश्लेषण इसमें किया गया है। नायक-नायिका-भेद और अलङ्कार के विषय में जसवन्त सिंह की परिकल्पनाओं का तुलनात्मक अध्ययन विद्वत्तापूर्ण शैली में प्रस्तुत है। अतः हिन्दी के शोध में उपादेय है। ३०-००

२ रीतिकालीन काव्यशास्त्र और पदुमन दास। ले०—डॉ० कुबेर राय, इसमें पदुमनदास और उनकी काव्यमञ्जरी पर आधारित समीक्षात्मक और शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मध्ययुगीन हिन्दी-लक्षणग्रन्थकारों के बीच यह अध्ययन महत्त्वपूर्ण कड़ी जोड़ता है। ३५-००

३ भारतीय दर्शन। आचार्य बलदेव उपाध्याय, यह ग्रन्थ भारतीय तत्त्वज्ञान के विषय में एक अत्यन्त मूल्यवान् क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत करता है। ४०-००

४ भारतीय धर्म और दर्शन। आचार्य बलदेव उपाध्याय, प्रस्तुत ग्रन्थ में धर्म और दर्शन का घना सम्बन्ध बताते हुए भारतीय संस्कृति के अनेक अङ्ग-प्रत्यङ्गों का मनोहारी विवेचन किया गया है। ३५-००

५ सूरदास की प्रतिभा। ले०—डॉ० भगवती प्रसाद राय, प्रस्तुत ग्रन्थ सूरदास जी की प्रतिभा एवं कृतित्व पर अभिनव प्रकाश डालता है। सूर साहित्य पर शोधार्थी के लिए पथ प्रदर्शक है। ३५-००

६ श्री युगलशतदलम्। श्री सत्यव्रत शर्मा 'सुजन' शास्त्री: इस गीति-काव्य में श्रीराधा-कृष्ण के युगलभाव को काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। संस्कृत पदों के साथ हिन्दी छायानुवाद रसग्राही है। ४०-००

७ कथासरित्सागर-एक सांस्कृतिक अध्ययन। लेखक—डॉ० वाचस्पति द्विवेदी। प्राक्कथन-करुणापति त्रिपाठी ३५-००

८ मणिपुरी नर्तन। लेखिका दर्शना झवेरी कमलावती देवी प्रास्ताविक डॉ० हरेकृष्ण मुखोपाध्याय भूमिका डॉ० कपिल वात्स्यायन १५-००

९ वैष्णव धर्म। लेखक—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी १५-००

१० मृगया। लेखक—श्रीनन्दन शाह, भूमिका-श्री रायकृष्ण दास जी, प्रस्तावना-डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी, यह आखेट-विषयक कृति है ४०-००

११ संगीत का विकाश और विभूतियाँ। ले०-श्रीपद बन्द्योपाध्याय ६-००

१२ नारी के विविध रूप। डॉ० जगदीश चन्द्र जैन ३-००

१३ मृत्युरहस्य। श्री वेणीराम शर्मा गौड ८-००

---

प्राप्तिस्थान—चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी-२२१००१
शाखा—बंगलो रोड, ९ यू. बी. जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७